

प्रवीण प्रकाशन
महरौली, नई दिल्ली-110030

राजभाषा हिन्दी

विकास के विविध आयाम

डॉ० मलिक मोहम्मद

मूल्य : साठ रुपये / संस्करण : 1986, / प्रकाशक : प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली-110030/आवरण : हरिप्रकाश त्यागी / मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

RAJBHASHA HINDI VIKAS KE VIVIDH AAYAM
(Criticism) by Dr. Malik Mohammad Rs. 60.00

क्रम

आमुख

आज हिन्दी भारत की राजभाषा है। हिन्दी को एक प्रादेशिक भाषा की हैसियत से लेकर राष्ट्रभाषा के रूप मे सर्वमान्य और लोकप्रिय भाषा बनने में और फिर भारत की राजभाषा बनने मे कई शताब्दियां लगी है। उसको विकास की कई अवस्थाओं में से गुजरना पड़ा है। उसके लिए समय-समय पर कई आंदोलन भी हुए। जनभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क-भाषा और राजभाषा के विविध सोपानो मे हिन्दी के विकास के विविध आयाम हैं। हिन्दी को इन विविध सोपानों में विकसित होने के लिए बहुत-से तथ्यों का योगदान रहा है। हिन्दी के इस ऐतिहासिक विकास का अनुशीलन अपने में एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

आज के सामान्य हिन्दी पाठक और हिन्दी के विद्यार्थी हिन्दी के इस विकास-क्रम से अपरिचित है। यहा तक कि बहुत से हिन्दी-भाषी भी हिन्दी के सार्वदेशिक स्वरूप से और हिन्दी को राजभाषा बनाने वाली उन परिस्थितियों से भी अनभिज्ञ हैं। हिन्दी के स्वाभाविक विकास के विविध सोपानों के सही ज्ञान के अभाव में हिन्दी के विरोध में या हिन्दी के पक्ष में कभी-कभी राजनीतिक नेता भी बहुत कुछ भ्रामक बातें बोल देते है, जिसका जनमानस पर बुरा असर पड़ता है। अगर हिन्दी आज राजभाषा बनी है तो उसके पीछे बहुत से तथ्य हैं, संघर्ष और त्याग का इतिहास है। इन तथ्यों पर प्रकाश डालकर राजभाषा हिन्दी के विकास के विविध आयामो का उद्घाटन करने का प्रयास प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है।

हिन्दी भाषा के स्वरूप और विकास पर भाषा वैज्ञानिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोणों से अनेक पुस्तकें प्रकाशिक हो चुकी है। परन्तु दिल्ली के आसपास की मेरठ जनपदीय बोली हिन्दवी-हिन्दी, किन सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों और प्रेरक तत्त्वों से प्रभावित और विकसित होकर भारत की राजभाषा बनी, इसका संपूर्ण परन्तु सक्षिप्त अध्ययन आज के हिन्दी के सामान्य पाठक और विद्यार्थी के लिए हिन्दी की ऐतिहासिक परम्परा को सही रूप में जानने के निमित्त आवश्यक हो गया है। इस आवश्यकता की पूर्ति करना ही प्रस्तुत ग्रंथ का उद्देश्य है।

प्रथम अध्याय में 'हिन्दी' नामकरण के संबंध मे विभिन्न मतो का परिचय देते हुए खड़ी बोली हिन्दी के उद्भव और विकास पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय में हिन्दी के सार्वदेशिक स्वरूप का विश्लेषण करके हिन्दी के अखिल

भारतीय सपर्क-माध्यम के रूप मे विकसित होने मे प्रेरक तत्वों पर भी प्रकाश डाला गया है। तृतीय अध्याय, राष्ट्रीय सग्राम के संदर्भ मे अग्रेजों की भाषानीति और उनके कुचक्रों का परिचय देकर राष्ट्रीय नेताओं के द्वारा हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप मे लोकप्रिय बनाने के लिए किए गये संघर्षों का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करता है।

सपूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने की सशक्त कड़ी के रूप मे हिन्दी को मानकर जनमानस मे हिन्दी के प्रति आस्था पैदा करके गांधीजी ने हिन्दी-आंदोलन का नेतृत्व किया था। हिन्दी के सम्बन्ध मे गांधीजी के विचार और हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के लिए गाधीजी के द्वारा किए गये प्रयासो का विवरण 'हिन्दी आदोलन और गाधीजी का नेतृत्व' शीर्षक अध्याय में किया गया है। बड़े पैमाने पर हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने में विविध संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन विविध संस्थाओं की सेवाओ का भी मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद सविधान में राजभाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता प्रदान करने के लिए उपस्थित अनुकूल परिस्थितियों, हिन्दी की सावैधानिक स्थिति, सविधान मे राजभाषा सम्बन्धी अनुच्छेदों की विशद व्याख्या और हिन्दी की वर्तमान सावैधानिक स्थिति का विवरण छठे अध्याय मे दिया गया है। इस तरह 'जनभाषा', 'राष्ट्रभाषा', 'संपर्क-भाषा' और 'राजभाषा' के रूप मे विकसित होने वाली हिन्दी की ऐतिहासिक यात्रा का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है।

भारतीय सविधान के अनुच्छेद-343 (1) के अनुसार देवनागरी में लिखी हिन्दी भारतीय संघ की राजभाषा घोषित की गई है। अनुच्छेद-343 (2) के अनुसार इसे भारतीय संविधान लागू होने की तारीख अर्थात् 26 जनवरी, 1950 से लागू नहीं किया जा सकता था। इसे लागू करने के लिए संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद की अवधि रखी तो गई, परन्तु फिर अनुच्छेद-343 (3) के अनुसार सरकार ने यह शक्ति प्राप्त कर ली कि वह इस 15 वर्ष की अवधि के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग जारी रख सकती है। बाद में राजभाषा अधिनियम, 1963 ने सरकार के इस उद्देश्य को साफ कर दिया कि अंग्रेजी की हुकूमत देश पर अनादि-काल तक बनी रहेगी। यह एक बहुत बड़ी विडम्बना है कि विश्व के सबसे बड़े प्रजातत्र मे शासन और जनता की भाषा अपने देश की भाषा न हो बल्कि सात समुद्र पार विदेशियों की भाषा हो ताकि देशवासी मानसिक दासता भोगते रहें। आज भारतीय जनमानस मे अंग्रेजी-संस्कृति से पल्लवित व पोषित 2 प्रतिशत लोगों ने हिन्दी के प्रति द्वेष-भावना पैदा कर दी है, स्वभाषा के प्रति प्रेम को दकियानूसी व पिछड़ेपन का द्योतक करार दिया जाता है। आम भारतीय के मन मे यह भावना भर दी गई है कि जीवन मे प्रगति और विकास की सीढ़ी अंग्रेजी

की शिक्षा है। अंग्रेजी शासक वर्ग की भाषा रही है इसलिए सभ्यता और प्रगतिशील विचारों की प्रतीक है और हिन्दी हमेशा गुलामों की भाषा रही है। वस्तुतः स्वतंत्रता-संग्राम काल में हिन्दी देश में राष्ट्रीय चेतना की प्रतीक थी, स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद संविधान-निर्माणकाल में यह राजभाषा बनी और राजभाषा अधिनियम के बाद यह केवल संपर्क-भाषा नाम से जानी जाने लगी। इस प्रकार स्वतंत्रता-संग्रामकाल से संविधान-निर्माण के प्रारंभिक काल तक हिन्दी की यात्रा ऊर्ध्वगामी रही और उसके बाद लगभग अधोगामी यात्रा ही रही है।

ऐसा लगता है कि भारतीय समाज के उच्च वर्ग ने अपनी लोकप्रियता-प्राप्ति के निमित्त जनसाधारण को बहकाने के लिए उनके साथ बोलचाल के लिए हिन्दी को अस्त्र के रूप में अपनाया, परन्तु हृदय से उसने इसे कभी नहीं स्वीकार किया। इसके पीछे उनके अंतर्मन में अंग्रेजी के मोह की गहरी जड़ें जमी हुई थी और ये जड़ें अब इतनी सबल हो गई हैं जिन्हें समूल उखाड़ना असंभव-सा प्रतीत होता है। इसका भी मुख्य कारण यह है कि साधन-सम्पन्न भारतीय वर्ग की शिक्षा पीढ़ी दर पीढ़ी अंग्रेजी भाषा में होती आई है, उनका वैचारिक, पारिवारिक और बौद्धिक भवन अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजियत तमीज, तहज़ीब पर खड़ा है। इसलिए उस वर्ग में जन्म लेने वाला प्राणी जन्म से अपने को सामान्य भारतीय से विशिष्ट, उच्च और अधिक सभ्य व शिष्ट कोटि का समझता है। चूंकि शासनतंत्र में इसी वर्ग का वर्चस्व रहा है और भविष्य में बनाये रखने का पूरा कुचक्र भी हुआ है, इसलिए ऐसा लगता है कि भारतीय भाषा अर्थात् शताब्दियों से चली आ रही शासितों की भाषा देश के शासन की भाषा कभी नहीं बन पायेगी। संविधान में की गई व्यवस्था 343 (1) को वरदान समझा गया है। परन्तु 343 (2) और 343 (3) की व्यवस्थाओं ने इस वरदान को अभिशाप में परिवर्तित कर दिया। इस व्यवस्था के पीछे भी इन्हीं भावनाओं ने सक्रिय रूप से कार्य किया, क्योंकि संविधान-निर्माणकाल में देश के राष्ट्रीय मंच पर अधिकतर उन लोगों का प्रभुत्व था जिनकी शिक्षा बचपन से ही अंग्रेजी में और अंग्रेजी वातावरण में विलायत में हुई थी। इस काल में जनसाधारण की भावना के प्रतिकूल व्यवस्था करने का उनमें साहस न था, इसलिए 343 (1) की व्यवस्था की गई। परन्तु अंग्रेजियत का वर्चस्व बनाए रखने के लिए 343 (2) और (3) से उसे प्रभावहीन कर देश पर मानसिक गुलामी लाद दी गई। इतना ही नहीं, भाषा के आधार पर देश की भावनाओं को विभाजित कर, 'फूट डालो और शासन करो' ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया गया। केन्द्र सरकार की सेवाओं में और प्रदेश में अंग्रेजी की अनिवार्यता रखकर हिन्दी-माध्यम से शिक्षित पीढ़ियों को निष्कासित कर अपने षड्यंत्र पर कानूनी मोहर लगा दी गई।

इस पुस्तक में उन सभी परिस्थितियों का अंकन करने का प्रयास किया गया।

है जिनसे हिन्दी लोक-स्तर से हमारे राष्ट्रीय स्तर तक पहुँची और पुनः राष्ट्रीय स्तर से संकुचित क्षेत्रीयता के दायरे में घिर गई। आज यह स्थिति उत्पन्न की गई है कि हिन्दी के प्रयोग, हिन्दी की शिक्षा को संकुचित दृष्टिकोण, देश की विघटनता का प्रतीक माना जाने लगा है।

आज हिन्दी के विकास में गतिरोध डालने वाली बहुत-सी बातें हैं। कुछ गलतफहमियों के कारण भी हिन्दी के प्रति विरोध का स्वर उठाया जाता है। आज दक्षिण में, तमिलनाडु को छोड़कर, अन्य प्रांतों में राजनीतिक दृष्टि से भी हिन्दी का कोई विरोध नहीं। इन प्रांतों में हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण है और नई पीढ़ी के लोग हिन्दी का स्वागत कर चुके हैं। तमिलनाडु में भी हिन्दी-विरोध राजनीतिक नेताओं का एक खिलवाड़ मात्र है। जनसाधारण हिन्दी पढ़ने में रुचि रखते है। हिन्दी-प्रचार सभा की परीक्षाओं में जिस तादाद में विद्यार्थी बैठते हैं, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी पढ़ने की आवश्यकता को लोगों ने महसूस किया है। किन्तु, फिर भी समस्त अहिन्दी प्रदेशों के लोगों के मन में राजभाषा हिन्दी के सम्बन्ध में यह आशंका घर कर गई है कि हिन्दी के राजभाषा होने से अहिन्दी-भाषियों के मुकाबले में हिन्दी-भाषी अनुचित लाभ उठा रहे हैं। अपनी भाषा के अतिरिक्त राजभाषा हिन्दी के पर्याप्त ज्ञान को प्राप्त करने पर भी अहिन्दी-भाषियों को केन्द्र सरकार की विभिन्न नौकरियों और प्रतियोगिताओं में हिन्दी-भाषियों के बराबर का न्याय प्राप्त नहीं हो रहा है। इस आशंका के कारण भी बहुत-से हिन्दी-प्रेमी भी निराश हुए हैं। जब तक सरकार की राजभाषा-नीति के कार्यान्वयन के क्षेत्र में भी अहिन्दी-भाषियों को दूर करके उनके मन में विश्वास पैदा करने लायक कदम नहीं उठाए जायेंगे तब तक राजभाषा हिन्दी के व्यापक प्रयोग की दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं होगी।

जब कभी हिन्दी के पक्ष को लेकर हिन्दी-भाषी नेता हिन्दी का समर्थन करते हैं तो उसकी तीव्र प्रतिक्रिया अहिन्दी प्रदेशों में होती है। इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में रुकावटें पैदा होती हैं। हिन्दी-भाषियों के द्वारा हिन्दी का समर्थन करना हिन्दी वालों का स्वार्थपरक या 'साम्राज्यवादी' दृष्टिकोण का परिचायक ही अहिन्दी प्रदेशों में समझा जाता है। राष्ट्रभाषा हिन्दी का विद्यार्थी यह अच्छी तरह जानता है कि हिन्दी-भाषियों के समर्थन से नहीं, बल्कि अहिन्दी-भाषियों के समर्थन से ही हिन्दी राजभाषा बन सकी है। आवश्यकता इस बात की है कि अहिन्दी-भाषियों के द्वारा हिन्दी का समर्थन हो और हिन्दी प्रचार-प्रसार का कार्य उनके हाथों में ही हो, क्योंकि यह समस्या हिन्दी-भाषी क्षेत्र की जनता की नहीं है, अहिन्दी-भाषी क्षेत्र की है और उनकी समस्या को अहिन्दी-भाषी ही समझ सकते हैं और निराकरण के उपाय सुझा सकते हैं। इससे ही अहिन्दी प्रदेशों के जनमानस में हिन्दी के पक्ष में विश्वास पैदा हो सकता है और हिन्दी देश

की वास्तविक और व्यवहार में सर्वमान्य राजभाषा हो सकती है।

स्वतंत्रता-संग्राम के संदर्भ में राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से देश के सभी लोगों ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का समर्थन किया था। हिन्दी का सशक्त समर्थन करने वालों में अहिन्दी-भाषी राष्ट्रीय नेता ही प्रमुख थे। हिन्दी को संविधान में मान्यता प्रदान करने में भी अहिन्दी-भाषी नेताओं का ही बड़ा हाथ रहा। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अहिन्दी-भाषी लोगों ने नेतृत्व लिया। यहां तक कि उस समय के तमिलनाडु के मुख्यमंत्री श्री राजगोपालाचारी ने तमिलनाडु में हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य कर दिया और यह कहा कि "भारत के राष्ट्रीय जीवन में अधिकृत स्थान प्राप्त करने के हेतु हमारे प्रान्त के लिए यह जरूरी है कि हमारे शिक्षित युवक भारत की सर्वाधिक व्यापक भाषा हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करें।" परन्तु कुछ सालों के बाद श्री राजगोपालाचारी ने हिन्दी का विरोध करना शुरू किया। इस तरह राष्ट्रीय संग्राम के समय में हिन्दी के समर्थक कुछ और राष्ट्रीय नेता भी अपना स्वर बदलने लगे। कुछ हिन्दी विद्वानों ने इनका बड़ा खंडन किया है। परन्तु, इन लोगों ने बाद में हिन्दी का विरोध करने का जो तर्क दिया है, वह दृष्टव्य है। श्री राजगोपालाचारी ने बाद में हिन्दी का विरोध करते हुए अपने तर्क की सफाई इस प्रकार दी—"मैं कभी भी हिन्दी का विरोधी नहीं हूं। मैं उन हिन्दी वालों का विरोध करता हूं जो वस्तुस्थिति को नहीं समझकर अपने स्वार्थ के कारण हिन्दी को लादने की बातें सोचते हैं।" श्री राजगोपालाचारी के इस कथन में हिन्दी के राजभाषा होने से हिन्दी-भाषियों के द्वारा अनुचित लाभ उठाए जाने की स्थिति की आशंका ही ध्वनित है। इस व्यापक आशंका को व्यावहारिक रूप से दूर करने की दिशा में कुछ ठोस कदम उठाए बिना अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी के प्रति आस्था पैदा करना कठिन है।

राजभाषा हिन्दी के विकास में रोड़ा अटकाने वाली बात यह भी है कि राजभाषा हिन्दी के स्वरूप को लेकर एक तरह का भ्रम पैदा हुआ है। कभी-कभी बहुत से लोगों से सुनने को मिलता है कि "ये हिन्दी वाले भी किस भाषा का प्रयोग करते हैं ?" हिन्दी को संस्कृत के जटिल शब्दों से बोझिल बनाकर बहुत से पंडित सामान्य हिन्दी-प्रेमियों के मन में दो प्रकार की गलतफहमियां पैदा करते हैं। कुछ लोगों को यह कहने के लिए मौका मिल जाता है कि हिन्दी के ऊपर हिन्दू धर्म का आवरण डाला जा चुका है। दूसरी गलतफहमी यह है कि हिन्दी पंडित हिन्दी को जनभाषा से दूर ले जाकर उसको दुरूह बनाना चाहते हैं। वास्तव में सरल बोलचाल की हिन्दी भाषा ही पूरे देश में व्यवहार में है। सच्चाई तो यह है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी ने कुछ ऐतिहासिक कारणों से अखिल भारतीय संपर्क-भाषा के रूप में जो सरल और सर्वमान्य रूप अपनाया है, उसकी अवहेलना करके हिन्दी के ऊपर उसके प्रादेशिक स्वरूप को लादना संपर्क-भाषा हिन्दी के प्रति भी अन्याय

है। हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के लिए उसकी सरल और आमफहम शैली को ही प्रचलित करना होगा जिसके आधार पर वह संपूर्ण देश में स्वीकार्य हो सकती है।

बहुत से लोग इस बात को भूल जाते हैं कि हिन्दी भाषा को संपन्न और समृद्ध बनाने में सभी धर्मों के अनुयायियों का योगदान रहा है और वह एक विशिष्ट धर्म या जाति की भाषा कभी भी नही रही है। धर्म-निरपेक्षता और सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति की वाहिका के रूप में हिन्दी को विकसित करने की जो परिकल्पना संविधान में है, उस दिशा में हिन्दी को लक्ष्य करने के लिए प्रयत्न होना चाहिए।

हिन्दी को हम संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्थान दिलाने के लिए उतावले हैं और एक विश्व-भाषा के रूप में उसको मान्यता प्रदान करना चाहते है, परन्तु देश के राजकाज में इस भाषा को अपनाने में हिचक रहे हैं। हिन्दी संविधान में तो राज-भाषा बन गई है, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि सरकारी कामकाज में हिन्दी को अंग्रेजी की जगह पर प्रयोग में लाने में हिन्दी प्रदेशों में भी निराशाजनक स्थिति है। हिन्दी-भाषी प्रदेश भी पूर्ण रूप से राजभाषा के रूप में हिन्दी को अपना नहीं सके है। संविधान में राजभाषा घोषित होने के बाद हिन्दी-प्रेमी विद्वानों ने यह विश्वास कर लिया कि बस, लक्ष्य की पूर्ति हो गयी है और उन्होंने आराम की नींद ली। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी को राजभाषा बनाने की दिशा में जिस तेजी से कार्य होना था, उस तेजी से काम नही हो सका। इसके कारण राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन मे कोई विशेष प्रगति नही हो सकी है। हिन्दी-प्रेमी विद्वानो का इस दिशा मे गंभीरतापूर्वक ध्यान नही जाना ही इसका कारण है।

इधर कुछ दिनों से हिन्दी क्षेत्र के कुछ विद्वान यह दावा पेश करने लगे है कि राजभाषा खडी बोली हिन्दी उनके लिए भी एक 'अतिरिक्त और अर्जित भाषा' है और उनकी मातृभाषा 'मैथिली' या 'भोजपुरी' है (और हिन्दी नही)। 'भोजपुरी', 'मैथिली' या 'राजस्थानी' को हिन्दी से अलग स्वतन्त्र भाषाएं मानने के लिए इने-गिने हिन्दी-भाषियों की ओर से जो प्रयास हो रहा है वह हिन्दी के लिए बड़ा ही घातक है। इससे हिन्दी के विरोधियो को भी यह कहने के लिए मौका मिल सकता है कि हिन्दी एक विशाल जनसमूह की भाषा नही होकर एक संकुचित प्रदेश की 'अल्पसंख्यक' भाषा है। वास्तव मे हिन्दी का जो अखिल भारतीय स्वरूप विकसित हुआ है, उसके भीतर उसकी उपबोलियों का भी समावेश है। अतः मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी आदि को अलग स्वतंत्र भाषा मानने की दिशा मे जो मांग है, उसमें निहित स्वार्थपरक दृष्टिकोण का भंडाफोड़ होना ही चाहिए।

अब भी हमारे देश में अंग्रेजी का प्रभाव ज्यों का त्यों बना रहा है। अंग्रेजी के प्रति जब तक लोगो का मोह छूटेगा नही तब तक हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का पूर्ण विकास होना संभव नही है। हिन्दी का मुकाबला अंग्रेजी से है,

न कि भारतीय भाषाओं से। सरकारी कामकाज में हिन्दी के व्यापक प्रयोग में उच्च अधिकारियों का अंग्रेजी मोह बाधक बना है। शुरू से हिन्दी सामान्य जनता की भाषा रही है। एक विकासशील जनतंत्रात्मक राष्ट्र के लिए जन सामान्य की भाषा को ही राजभाषा का दर्जा प्राप्त हो सकता है। राजभाषा के रूप में अंग्रेजी को चिरकाल के लिए बनाए रखने का स्वप्न देखने वाला 'अंग्रेजी भक्त' वर्ग अपने निजी स्वार्थ के कारण राष्ट्रीय चेतना और जन-मानस की भावना को ठेस पहुंचाता रहता है। इस वर्ग के षड्यंत्र के प्रति लोगों को सावधान करना होगा।

आज राजभाषा हिन्दी के विकास में और उसके प्रगामी प्रयोग में जो निराशा-जनक स्थिति है और देश में जो भाषायी अवरोध और कलुषित वातावरण है, उसके मेरे विचार में मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

1. शासक वर्ग का अंग्रेजी के प्रति मोह और शासनतंत्र में अंग्रेजियत के विशिष्ट वर्ग के द्वारा अपने वर्चस्व को बनाए रखने की भावना।
2. संविधान-निर्माणकाल में हिन्दी के प्रति उपेक्षा-भाव और तदनुसार अवरोधात्मक संवैधानिक उपबंधों की व्यवस्था।
3. दोषपूर्ण शिक्षानीति और त्रिभाषा फार्मूला के प्रति उदासीनता।
4. हिन्दी के तथाकथित समर्थकों की अदूरदर्शिता।
5. राजभाषा-नीति के नियमन व प्रवर्तन में अहिन्दी-भाषी क्षेत्र के हिन्दी के प्रबल समर्थकों के प्रति उपेक्षा-भाव।
6. देश की एकता के लिए हिन्दी को सीमेंट के रूप में अपनाने के बदले संकुचित भावना उभारने के लिए इसे हथौड़े के रूप में प्रयोग।
7. भाषा-समस्या को राष्ट्रीय समस्या के बदले राजनीतिक समस्या के रूप में ग्रहण।

आज हिन्दी की स्थिति को देखकर हिन्दी के प्रति वास्तविक आस्था रखने वालों के सामने यह प्रश्नचिह्न उपस्थित हुआ है कि कभी हिन्दी पूरे देश की राज-भाषा बनेगी और महात्मा गांधीजी का स्वप्न साकार होगा? फिर भी, देश की अखंडता और भावात्मक एकता को बनाए रखने की चेतना रखने वालों को इस दिशा में सक्रिय रूप से सोचना चाहिए।

पिछले कुछ वर्षों में केन्द्र सरकार की ओर से राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने की दिशा में थोड़ा प्रयास हुआ है और किसी मात्रा तक आवश्यक कदम भी उठाए गए हैं। देश की बदली हुई परिस्थितियों में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन के विषय में हमेशा एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाने की और उसके लिए अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रति सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाए रखने की आवश्यकता आ पड़ी है। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधीजी ने राज-भाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग में विशेष रुचि दिखाने के साथ ही सन्तुलित दृष्टि-

कोण रखा है। धर्म-निरपेक्षता, सामाजिक संस्कृति और भाषायी एकता का सशक्त समर्थन करने के साथ राजभाषा हिन्दी के विषय में उन्होंने जो भाषानीति अपनाई है, उसको पूर्ण जन-स्वीकृति प्राप्त है। अब हिन्दी के साथ राजनीतिक पहलू के जुड़ जाने के कारण कुछ हिन्दी-भाषी क्षेत्रों के 'अति-उत्साह' और कुछ अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों के राजनीति-प्रेरित हिंदी-विरोध के बीच सतर्कतापूर्ण एवं संतुलित दृष्टिकोण रखना आवश्यक हो गया है। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने केन्द्र सरकार में राजभाषा विभाग की स्थापना करके राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन की दिशा में एक नई स्फूर्ति प्रदान की है। केन्द्र सरकार की ओर से राजभाषा विभाग का कायम होना राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण और मजबूत कदम है। आशा है, हिन्दी के विषय में एक सतुलित और आशावादी क्रियाशील दृष्टिकोण रखने से पूरे देश में हिन्दी के लिए सौहार्दपूर्ण वातावरण फिर से बनेगा और राष्ट्रीय और भावात्मक एकता की कड़ी के रूप में राजभाषा हिन्दी के उत्तरोत्तर विकास में सबका योगदान होगा।

इस पुस्तक को तैयार करने में जिन विद्वानों और विचारकों के ग्रन्थों से और मित्रों से सहायता मिली है, प्रस्तुत लेखक उन सबका आभारी है।

—मालिक मोहम्मद

1

हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास

'हिन्दी' शब्द का अर्थ और उसका व्यवहार-क्षेत्र

प्राचीन अर्थ से अपने नवीन प्रचलित अर्थ को ग्रहण करने में 'हिन्दी' शब्द को कई शताब्दियों की सुदीर्घ अवधि लगी है। वाच्यार्थ की दृष्टि से हिन्दी, हिन्दवी और हिन्दुई शब्द का प्रयोग हिन्दी या भारत से सम्बन्धित किसी भी व्यक्ति, वस्तु तथा भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य, द्रविड़ तथा अन्य कुल की भारतीय भाषाओं के लिए हो सकता है, किन्तु इस प्राचीन व्यापक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रचलित नहीं है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि "वर्तमान भारतीय साहित्य में यह शब्द 'हिन्दी' भारतीय संघ की राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा का द्योतक है। उत्तरप्रदेश, बिहार, दिल्ली, राजस्थान, पंजाब, भाषा-क्षेत्र को छोड़कर पंजाब, हिमाचल की प्रधान साहित्यिक भाषा और राजभाषा के अर्थ में मुख्यतया इसी भूभाग की बोलियों और उनसे सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन साहित्यिक रूपों के अर्थ में यह नाम साधारणतया प्रयुक्त होता है।"[1]

'हिन्दी शब्द हिन्दी भाषा का या खड़ी बोली का नहीं है। इसकी उत्पत्ति सिन्धु→सिन्ध→हिन्द से हुई है। 'सिन्धु' पुराने भारत की (उस भाग की जो अब पाकिस्तान कहलाता है) एक प्रमुख नदी का नाम है। फारसी में 'सिन्धु' को 'हिन्दु' उच्चारण करते हैं। 'सिन्धु' (हिन्दु) नदी का देश 'हिन्द' या 'हिन्दुस्तान' कहलाया। फारसी भाषा के अनुसार 'हिन्द' देश के निवासी 'हिन्दी' कहलाए। ("हिन्दी हैं हम, वतन है हिंदोस्ताँ हमारा"—इकबाल का विख्यात तराना) अमीर खुसरो ने भी लिखा है—"बादशाह ने हिन्दुओं को तो हाथी से कुचलवा डाला, किन्तु मुसलमान जो हिन्दी थे, सुरक्षित रहे।" इस प्रकार हिन्दी शब्द की उत्पत्ति 'हिन्द देश के वासियों' के अर्थ में हुई। आगे चलकर यह शब्द 'हिन्द की भाषा' के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। एक स्थान पर हिन्दी की चर्चा करते हुए अमीर खुसरो लिखते हैं—"यह हिंद की भाषा है।"[2] अमीर खुसरो की 'खालिकबारी' में 12 बार 'हिन्दी' और 55 बार 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग हुआ है। हिन्दी का अर्थ है 'हिन्द की भाषा'। मूल फारसी शब्द 'हिन्दी' जिसकी

1. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० 60
2. प्रियदर्शन : हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, खण्ड-1, भाग-1, पृ० 2

उत्पत्ति 'हिन्द + ई' = हिन्दी के रूप में मूल शब्द 'हिन्द' में निसबत का प्रत्यय 'ई' जोड़कर हुई है, आरंभ में दो सामान्य अर्थों में प्रचलित रहा है—पहला, हिन्द देश के निवासी और दूसरा, हिन्द की भाषा। किन्तु अब यह शब्द इन दोनों के आरंभिक अर्थों से पृथक् हो गया है। इस देश के निवासियों को अब कोई 'हिन्दी' नहीं कहता। यहां के नागरिक अब भारतवासी, भारतीय, हिन्दुस्तानी लोग कहलाते है। इस देश की व्यापक भाषा के अर्थ में भी अब 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग नहीं होता, क्योंकि भारत में अनेक भाषाएं तथा बोलियां है, जो सब 'हिन्दी' नहीं कहलाती। वे सभी हिन्द की भाषाएं हैं, लेकिन 'हिन्दी' नहीं है। उन्हें हम पंजाबी, बंगाली, असमी, उड़िया, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु आदि नामों से पुकारते हैं। इसलिए भारत की इन सब भाषाओं के लिए 'हिन्दी' शब्द 'हिन्द की भाषा' के व्यापक अर्थ में प्रयोग नहीं किया जा सकता। इन्हें हिन्दी के बजाय 'भारतीय या भारत की भाषाएं' कहा है।

भाषा के संदर्भ में 'हिन्दी' शब्द पर विचार करने के पूर्व यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में 'हिन्दी' शब्द कहीं नहीं मिलता। मुसलमानों के आगमन के पूर्व हमारी भाषा को सामान्यतया 'भाषा' अथवा 'भाखा' ही कहा जाता था। यह नामकरण भारतीयों द्वारा प्रयुक्त प्राचीनतम नाम प्रतीत होता है। संस्कृत के अनेक ग्रन्थों की हिन्दी टीकाओं को 'भाषा टीका' के नाम से अभिहित किया जाता रहा है। हिन्दी के अनेक कवियों—कबीर, तुलसी तथा केशव आदि ने हमारी 'देशी भाषा' को केवल 'भाषा' की ही संज्ञा दी। उदाहरणार्थ—

'संस्कृत कविरा कूप जल, भाषा बहता नीर' (कबीर)

'का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए सांच' (तुलसी)

'भाषा बोलि न जान ही, जिनके कुल के दास' (केशवदास)

प्राचीन कवियों ने तो 'भाषा' शब्द का प्रयोग हिन्दी के लिए किया ही, परन्तु उन्नीसवीं शती के प्रारंभ तक भी इसका प्रयोग होता रहा है। फोर्ट विलियम कॉलेज में नियुक्त 'हिन्दी अध्यापकों' को 'भाषा मुंशी' अथवा 'भाखा मुंशी' के नाम से अभिहित करना इसी बात का सूचक है। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सामान्य भाषा के अर्थ में प्रयुक्त भाषा शब्द 'हिन्दी' के विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने लगा था और मुसलमानों के आगमन के बाद क्रमशः 'भाषा' के साथ-साथ 'हिन्दी' शब्द भी प्रयुक्त होने लगा। मुसलमानों का विशेष सम्पर्क, सम्बन्ध एवं निवास देश के मुख्य भाग 'मध्यदेश' में रहा, इसलिए उन्होंने वहां की बोली के लिए 'जबाने हिन्दी' अथवा 'हिन्दी' का प्रयोग किया।

जिस भाषा को हमारे प्राचीन कवि या साहित्यकार 'भाषा' अथवा 'भाखा'

शब्द से अभिहित करते रहे, उसीके लिए तुर्क, अरब तथा फारसी आदि 'हिन्दी' का प्रयोग करते रहे। प्रारंभ में भी काव्य-साहित्य की भाषा को 'भाषा' तथा साधारण बोलचाल की भाषा को 'हिन्दी' नाम से अभिहित किया गया हो—यह भी संभावना है। ईरान आदि देशों के निवासी यहां आने के पूर्व भी यहां की भाषा को 'हिन्दी' नाम से पुकारते थे। परन्तु मुख्यतया भारत में सत्ता स्थापित होने तथा दिल्ली के हिन्द की राजधानी बनने के बाद ही हिन्द की भाषा के लिए 'हिन्दी' शब्द बहुप्रचलित हुआ।

'हिन्द की भाषा' के अर्थ में प्रयुक्त 'हिन्दी' शब्द व्याकरण के अनुसार एक रूढ़िगत प्रयोग है। इस प्रकार का प्रयोग संसार की दूसरी भाषाओं—जैसे चीन की भाषा चीनी तथा जापान की भाषा जापानी आदि के लिए भी किया जाता है। दुर्भाग्य से कुछ लोग हिन्दी की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में हिन्दी का साम्प्रदायिक आधार भी मानते हैं और उसे 'हिन्दुओं की भाषा' की संज्ञा प्रदान की गई है। किन्तु किसी भाषा का सांप्रदायिक या धार्मिक आधार नहीं होता, उसका केवल जातीय आधार होता है। अंग्रेज़ी अंग्रेज जाति की भाषा है, ईसाई धर्म या सम्प्रदाय की भाषा नहीं है। यदि ऐसा होता तो संसार के गैर ईसाई लोग उसका प्रयोग क्यों करते? इसी प्रकार फ्रेंच, जर्मन, डच, पोर्चुगीज़, इतालवी, रूसी आदि सभी भाषाएं जातियों की हैं, उन जातियों के धर्म या सम्प्रदायों की नहीं हैं। यूरोप की सभी जातियों का सामान्य धर्म प्रायः ईसाई धर्म है, किन्तु उनकी भाषाएं अलग-अलग हैं। इसी प्रकार सभी अरब, तुर्की, ईरान, इराक आदि देशों का धर्म इस्लाम है, किन्तु उनकी जातीय भाषाएं अरबी, फारसी, तुर्की आदि अलग-अलग हैं। इस प्रकार 'हिन्दी' भी हिन्दीभाषी जाति की भाषा है। 'हिन्दुओं की भाषा' कदापि नहीं है। हिन्दी अपने मूल खड़ी बोली रूप में मेरठ, मुज़फ्फरनगर, सहारनपुर, गाज़ियाबाद, बुलंदशहर आदि ज़िलों के सभी भागों में, घरों में, देहातों में हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा समान रूप से जनबोली के रूप में प्रयोग की जाती है। आज यही खड़ी बोली अपने हिन्दी रूप में ही समस्त हिन्दीभाषी प्रदेशों पर छाई हुई है और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों सम्प्रदायों की, जो हिन्दीभाषी जाति के ही समान अंग हैं, समान रूप से सेवा कर रही है।

'हिन्दी' का कोई साम्प्रदायिक आधार नहीं है, इसका एक प्रमाण यह भी है कि आरंभ में मुसलमानों ने ही खड़ी बोली को 'हिन्दी' नाम प्रदान किया था और आज खड़ी बोली के जिस रूप को 'उर्दू' कहा जाता है और जिसे भ्रमवश मुस्लिम सम्प्रदाय की भाषा माना जाता है, उसे आरंभिक मुसलमान विद्वान एवं लेखक 'हिन्दी' के नाम से ही सम्बोधित करते थे। उसका 'उर्दू' नाम बहुत समय बाद पड़ा। इस प्रकार यही 'हिन्दी' मुसलमानों की भाषा थी और आज

भी है। पं० पद्मसिंह शर्मा ने स्पष्ट लिखा है—"हिन्दी उर्दू की अपेक्षा बहुत ही पुराना और सर्वमान्य नाम है। जिस भाषा का नाम आजकल 'उर्दू' प्रचलित है इसके लिए उर्दू के पुराने लेखकों और कवियों ने हिन्दी शब्द का ही अपने ग्रन्थों में सर्वत्र व्यवहार किया है।"[1]

पं० चन्द्रकांत बाली ने लिखा है—"मुसलमानों ने सदा से अपनी कलम को हिन्दी या हिन्दवी कहा है। यदि हिन्दी सचमुच हिन्दुओं की भाषा होती तो वे इसे कम से कम हिन्दी न कहते।"[2]

हिन्दी के विभिन्न नाम

हिन्दी को अपनी विकास-अवस्था तक पहुंचने में अनेक रूप धारण करने पड़े हैं। हिन्दी का यह विकास पिछले लगभग एक सहस्र वर्ष में हुआ और उसके विभिन्न रूपों की दृष्टि से जो विभिन्न नाम प्रचलित हुए हैं, उनमें से कुछ एक के सम्बन्ध में बहुत अधिक मतभेद भी हैं। हिन्दी के कई अन्य नाम, जो समय-समय पर प्रचलित हुए हैं, उनमें हिन्दवी, रेख्ता, रेख्ती, दक्खिनी, गूजरी, खड़ी बोली, हिन्दुस्तानी, आर्यभाषा और राष्ट्रभाषा आदि ऐसे नाम हैं, जिनका प्रयोग हिन्दी के अर्थ में, उसकी विशिष्ट शैली या बोली के रूप में या उसके मिले-जुले रूप में यदा-कदा किया गया है। उर्दू को भी कुछ विद्वान (खड़ी बोली) हिन्दी की अरबी, फारसी से प्रभावित भाषा मानते हैं और उसे हिन्दी के अन्तर्गत रखते हैं। ऐसे विद्वानों की मान्यता है कि प्रारंभ में हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा थी। कालांतर में उनका पृथक् रूप से विकास हुआ। यहां पर हम विविध समयों पर प्रचलित हिन्दी नामों की चर्चा करेंगे।

हिन्दवी-हिन्दुई

हिन्दी के अन्य नामों में हिन्दवी नाम अति प्राचीन है। यह शब्द भी मुसलमानों द्वारा ही दिया गया है। व्याकरण की प्रक्रिया के अनुसार 'हिन्दुई' शब्द से 'हिन्दुओं की भाषा' तथा 'हिन्दवी' शब्द से 'हिन्द की भाषा' का ज्ञान होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि मध्यकाल में दिल्ली के आसपास की बोली, जिसका व्यवहार हिन्दू लोग करते थे तथा जिसमें फारसी-अरबी के शब्दों का अभाव था, उसे हिन्दुई-हिन्दवी तथा हिन्दुवी कहा जाता था। प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासकार गार्सा द तासी ने हिन्दवी के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—"उत्तर और पश्चिम प्रांत में जिस भाषा का विकास हुआ, जो केवल भाषा या भाखा (सामान्य भाषा) नाम से पुकारी जाती है, वह हिन्दुई (हिन्दुओं की भाषा)

1. पद्मसिंह शर्मा : हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, पृ० 15
2. चन्द्रकांत बाली : पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 26

या 'हिन्दवी' (भारतीय भाषा) के विशेष नाम से प्रचलित है।"[1]

मध्यदेश में विकसित जिस भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का अभाव था, उसे 'हिन्दवी' अथवा 'हिन्दुई' की संज्ञा दी गई। प्रारंभ में उसका प्रयोग मुख्य रूप से हिन्दुओं ने किया, परन्तु कालक्रम से उसका प्रयोग मुसलमानों ने भी किया था। इस प्रक्रिया में उसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी होने लगा। प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के अनुसार हिन्दुवी अथवा हिन्दवी पश्चिमी हिन्दी की बोलियों से विकसित है तथा मुसलमानों की पंजाबी भाषा से प्रभावित एक अदृष्ट रूप से निर्मित हुई भाषा है। इसका व्यवहार दिल्ली के बाजारों में स्वभावतः होता था।[2]

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'हिन्दवी' का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ तथा उसका प्रयोग मध्यदेश में सहज रूप से होता गया। दिल्ली के आसपास विकसित होने वाली इसी हिन्दवी को स्पष्ट रूप से बताने के लिए देहलवी (दिल्ली की भाषा) भी कहा जाता था।

ईसा की तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो सर्वप्रथम मध्यदेश की भाषा के लिए 'हिन्दवी', 'हिन्दी' या 'हिन्दुई' शब्द का प्रयोग करते हैं। अबुल हसन या अमीर खुसरो का नाम देशी भाषा को हिंदी, हिन्दवी एवं हिन्दुई कहने में बहुत महत्त्व का माना जाता है। अमीर खुसरो अपने युग के सबसे बड़े फारसी भाषा के भारतीय कवि और कलाकार थे। वे अरबी तथा फारसी के तो पूर्ण पंडित थे ही, साथ ही साथ देशी भाषा अर्थात् हिन्दी और हिन्दवी के भी अच्छे जानकार थे। इसीलिए गयासुद्दीन तुगलक के लड़के को हिन्दी पढ़ाने के लिए उन्हें शिक्षक के रूप में रखा गया था। अपनी देशी भाषा की जानकारी को वे स्वयं स्वीकारते भी हैं। देशी भाषा हिन्दी, हिन्दवी का हिन्दुई के प्रचार-प्रसार के लिए ही उन्होंने एक फारसी-हिन्दी कोश 'खालिकबारी' की रचना की थी, जिसमें 'हिन्दवी' शब्द तीस बार, 'हिंदी' शब्द पांच बार देशी भाषा के लिए प्रयुक्त हुआ था। उनका यह 'खालिकबारी' ग्रन्थ बड़ा लोकप्रिय हुआ कि उनका प्रचार घर-घर में हो गया।

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में जायसी ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य पद्मावत में 'हिन्दवी' भाषा का उल्लेख किया है जो देशी भाषा के समर्थन में है। (तुर्की अरबी हिंदवी, भाषा जेती आहि, जाने मारग प्रेम का, सबै सरा है ताहि)

रेख्ता और रेख्ती

रेख्ता शब्द का प्रयोग 'हिन्दवी' के बाद हिन्दी की एक विशेष शैलीगत भाषा

1. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, पृ० 5६
2. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० 205

के अर्थ में हुआ है। मूलतः यह शब्द फारसी का है। इसका शब्दार्थ है—गिरी-पड़ी अथवा मिली-जुली। जब हिन्दी में फारसी भाषा के शब्दों का अधिक मिश्रण हुआ तो यह 'रेख्ता' कहलाई।

इस शब्द का प्रयोग कबीर के एक ग्रन्थ में भी हुआ है। वहां इसका अर्थ भाषा-विशेष न होकर अपितु एक प्रकार का छन्द है। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि भाषा में फारसी-अरबी शब्द मिलाकर जो फारसी छंद रचे गए, उनका नाम 'रेख्ता' रखा गया तथा पीछे से यह शब्द मुसलमानों की फारसी-रंजित कविता के लिए प्रयुक्त होने लगा। फ्रांसीसी इतिहासकार गार्सां द तासी ने रेख्ता को हिन्दुस्तानी का पर्याय माना है।[1] सर्वमान्य मत यह है कि 'रेख्ता' का प्रयोग पद्य की भाषा के लिए ही होता था। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है—"आधुनिक उर्दू-हिन्दुस्तानी पद्य की भाषा का आद्य रूप 'रेख्ता' कहलाता था।"[2]

प्रायः सभी विद्वानों ने उर्दू के पद्य रूप की आम भाषा को रेख्ता माना है। इस आधार पर 'रेख्ता' शब्द का अस्तित्व उर्दू से पहले माना जाता है। डा० उदयनारायण तिवारी के मत में रेख्ता को उर्दू का पर्यायवाची मानना अशुद्ध है। डा० तिवारी उर्दू को रेख्ता की एक विशिष्ट शैली मानते हैं। 'रेख्ता' में अरबी-फारसी भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त तत्कालीन अन्य भाषाओं के शब्दों का मिश्रण भी रहता था। प्रसिद्ध कोशकार बाटे ने इसी मिश्रित भाषा को रेख्ता की संज्ञा दी है।[3]

'रेख्ता' शब्द के साथ-साथ 'रेख्ती' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। वस्तुतः 'रेख्ता' शब्द पुरुषों की भाषा के लिए प्रयुक्त होता था तथा स्त्रियों की भाषा के लिए 'रेख्ती' शब्द का प्रयोग किया जाता था। 'रेख्ती' में विशेषतः उन्हीं मुहावरों, रूपों तथा प्रयोगों को स्थान दिया जाता था, जो मुसलमान औरतों में प्रचलित थे। श्री जार्ज ग्रियर्सन का निम्न कथन इस बात की पुष्टि करता है—

"यह नाम रचना की उस शैली से ग्रहण किया गया है, जिसमें फारसी शब्द बिखरे रूप में प्रयुक्त होते हैं। जब उस बोली में कविता की रचना की जाती है, जो स्त्रियों में प्रचलित हुई है तथा जिसका शब्द-समूह भी इन्हींका होता है, तो उसे 'रेख्ती' नाम से अभिहित किया जाता है।[4]

1. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, पृ० 31
2. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० 214
3 The Hindustani Language (being mixed one) is called Rekhta.
4. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, खण्ड 1, पृ० 304

कहा जाता है कि 'रेख्ता' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सादी दक्खिनी के कलाम में मिलता है, जो वली से पूर्व आदिलशाह अब्बल के समय सन् 1586 ई० में हुए थे। बाद में मीर, सौदा, गालिब, जुरअत आदि कवियों ने अपनी कविता की भाषा को 'रेख्ता' कहा था, कालान्तर में उससे मिलती-जुलती भाषा को 'उर्दू' कहा जाने लगा। अठारहवीं शती के अन्त में मुहम्मद अताहुसैन खान तहसीन ने चहार दरवेश का तर्जुमा 'नौतर्जे मुरस्सह' के नाम से किया था। उसमें उन्होंने अपनी भाषा के लिए रेख्ता, हिन्दी तथा ज़बान 'उर्दू-ए-मुअल्ला' तीनों नाम एक ही पृष्ठ पर साथ-साथ दिए हैं।

सारांश यह है कि अरबी-फारसी शब्दों से मिश्रित कविता की भाषा को लगभग अठारहवीं शती तक 'रेख्ता' 'रेख्ती', नाम से अभिहित किया जाता रहा।

दक्खिनी

'दक्खिनी' शब्द का प्रयोग हिन्दी शब्द के समान दो विभिन्न अर्थों—दक्षिण का निवासी तथा दक्षिण की भाषा—में किया जा सकता है। हमारे प्राचीन साहित्य में 'दक्षिण' तथा 'दक्षिणापथ' शब्दों का प्रयोग मिलता है। मुसलमानों के आने के बाद 'दक्खिन' शब्द का प्रयोग उस भूभाग के लिए किया जाने लगा, जो किसी समय 'दक्षिण पथ' कहा जाता था। उस काल में गोदावरी तथा कृष्णा नदी के मध्य के प्रदेश को दक्खिन तथा उस प्रदेश की भाषा को दक्खिनी कहा गया। मूलतः यह कोई नई भाषा अथवा उपभाषा न होकर दिल्ली के आस-पास विकसित होने वाली 14वीं-15वीं शती की खड़ी बोली (हिन्दी) थी। बोलचाल तथा साहित्य की भाषा के रूप में दक्षिण में इसका विकास हुआ, इसलिए यह 'दक्खिनी' कहलाई। प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासकार गार्सां द तासी ने हिन्दू-मुसलमानों की मिश्रित भाषा को दक्षिण में प्रयुक्त 'दक्खिनी' (दक्षिण की) माना है। वे इसे हिन्दी का अन्य नाम ही स्वीकार करते हैं।[1] डॉ. ग्रियर्सन भी दक्खिनी को 'हिन्दुस्तानी' का एक रूप मानते हैं। उनके मत में इसका प्रयोग दक्षिण में रहने वाले मुसलमान (मुख्य रूप में) करते हैं।

'दक्खिनी' या 'दकनी' कहलाई।[1]

उत्तर भारत के शासक अथवा सैनिक जब दक्षिण में जाकर बसे, तब उस प्रदेश में भारतीय आर्यभाषा मराठी तथा अन्य द्रविड़ भाषाएं बोली जाती थीं, किन्तु वे उत्तर भारत से ले जाई गई भाषा का ही प्रयोग करते रहे तथा वही उनकी बोलचाल की भाषा मे और उनके साहित्य में प्रयुक्त होने के कारण 'दक्खिनी' कहलाई। डा० रामविलास शर्मा ने भी उपर्युक्त मत का समर्थन किया है तथा दक्खिनी को 'उत्तरी' हिन्दी या 'खड़ी बोली' का ही विशिष्ट रूप स्वीकार किया है।[2] इसी प्रकार डा० बाबूराम सक्सेना भी दक्खिनी को खड़ी बोली की एक परम्परा मानते हैं।[3]

तात्पर्य यह है कि 'दक्खिनी' दक्षिण की कोई नई भाषा न होकर उत्तर भारत की ही बोली थी। शब्द-भण्डार की दृष्टि से भी इसका उत्तर भारत की बोलियों से निकट का सम्बन्ध था। उस पर दक्षिण की भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा। व्याकरण के अनुसार 'दक्खिनी' शब्द भाषा के अर्थ मे एक रूढिगत प्रयोग है।[4]

दक्खिनी का साहित्य हिन्दी की अमूल्य निधि है। इसके प्रथम ग्रन्थकार ख्वाजा बन्देनवाज (1318-1432 ई०) माने जाते हैं। इनका ग्रंथ 'मिराजुल आशिकीन' दक्खिनी (खड़ी बोली) गद्य का प्राचीनतम नमूना है। दक्खिनी का पहला कवि निजामी (पन्द्रहवी शती) माना जाता है। अन्य कवियों मे अब्दुल वजही गवासी, गुलाम अली तथा वेलूरी आदि प्रमुख हैं। उसके अन्तिम कवि वली औरंगाबादी हैं। दक्षिण मे बहमनी राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के बाद पन्द्रहवी शती के अन्त मे बीजापुर मे आदिलशाही, गोलकुण्डा में कुतुबशाही, बीदर मे बरीदशाही, बरार मे इमादशाही तथा अहमदनगर मे निजामशाही की स्थापना हुई। 'दक्खिनी' के सभी कवि मुसलमान थे तथा उनकी लिपि फारसी थी। शब्द-भण्डार की दृष्टि से 'दक्खिनी मे संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द तथा अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग अधिकता से किया गया। उर्दू वाले आज भी दक्खिनी के साहित्य को उर्दू का साहित्य मानकर उसे 'दक्खिनी उर्दू' की संज्ञा से अभिहित करते हैं। वस्तुतः दक्खिनी की शब्दावली, परम्परा तथा उसका सामान्य आधार खड़ी बोली (हिन्दी) है। इस प्रकार 'दक्खिनी' को हिन्दी का एक 'दक्षिण रूप' कहना ही उचित होगा।

1. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० 292-293
2. भाषा और समाज, पृ० 204
3 दक्खिनी हिन्दी, पृ० 33
4. वही, पृ० [illegible]

गूजरी

'दक्खिनी' के प्रसंग में यह पहले ही बताया जा चुका है कि वह मूलतः उत्तर भारत की बोली थी तथा दक्षिण में प्रयोग एवं व्यवहार के कारण यह 'दक्खिनी' कहलाई। दिल्ली के आसपास की यह बोली जब गुजरात में प्रयोग में लाई गई तो इसे 'गूजरी' कहा गया। इसमें अरबी-फारसी के शब्दों के अतिरिक्त गुजराती भाषा के शब्दों का भी मिश्रण था। गुजरात में यह मिली-जुली भाषा 'गूजरी' नाम से वहां के बादशाहों और सूबेदारों की छत्रछाया में फली-फूली। इस गूजरी का प्रयोग केवल बोलचाल तक ही सीमित न रहा, अपितु अनेक सूफी कवियों ने इस भाषा में काव्य भी लिखे। शेख अहमद खट्टू बुरहानुद्दीन कुत्बे आलम बुखारी 'गूजरी' के प्रारंभिक कवि माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त हज़रत काज़ी महमूद दरियाई पीर, मियां खूब मुहम्मद चिश्ती तथा सैयद पीर मोहम्मद शाह कादरी आदि अनेक कवियों ने गूजरी में रचनाएं कीं। कुछ विद्वानों का मत है कि यही गूजरी भाषा कालान्तर में 'रेख्ता' नाम से प्रचलित हुई।

खड़ी बोली

'हिन्दी' का तात्पर्य खड़ी बोली के उस परिनिष्ठित रूप से है, जिसका प्रयोग आज संपूर्ण हिन्दीभाषी क्षेत्र में हो रहा है। साधारण रूप से हम 'खड़ी बोली' किसी भी ऐसी बोली या भाषा को कह सकते हैं, जो खड़ी हो अर्थात् जो जीवित हो, पौरुषयुक्त हो और जिसमें गौरव और श्री सौन्दर्य हो। इस व्यापक अर्थ में संसार की सभी वर्तमान भाषाएं खड़ी बोली कही जा सकती हैं। किन्तु हिन्दी में 'खड़ी बोली' शब्द विशिष्ट और रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त होता है। वस्तुतः खड़ी बोली का तात्पर्य उस भाषा से है जो मूल रूप में उत्तर भारत के दिल्ली-मेरठ जनपद की पुरानी विभाषा या वर्तमान जनभाषा या लोकवाणी है। खड़ी बोली वह आधारभूत भाषा है जो मुख्य रूप से हिन्दीभाषी प्रदेश में साहित्य के क्षेत्र में, हिन्दी (शुद्ध हिन्दी), उर्दू और हिन्दुस्तानी तीन शैलियों में एवं देवनागरी और फारसी दो लिपियों में लिखी जाती है और आम बोलचाल की सरल भाषा के रूप में सर्व प्रचलित है। इस प्रकार खड़ी बोली के तीन भेद निकलते हैं—हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी।

आज 'हिन्दी' शब्द का तात्पर्य खड़ी बोली में उस परिनिष्ठित रूप से है, जिसका प्रयोग निम्नलिखित तीन अर्थों में किया जाता है—

(1) भाषा-शास्त्रीय
(2) सामान्य अर्थ
(3) कानूनी अर्थ

भाषा-शास्त्रीय अर्थ

भाषा-शास्त्रीय आधार पर 'हिन्दी' का तात्पर्य खड़ी बोली से है। वास्तव में हिन्दी खड़ी बोली का वही रूप है जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और जो अपने बृहद् शब्द-भण्डार (समूह) का निर्माण प्रमुख रूप से संस्कृत के तत्सम, अर्द्धतत्सम और तद्भव शब्दों से करती है। इस तरह संस्कृत पर आश्रित खड़ी बोली का रूप ही हिन्दी कहलाता है। इसको विभिन्न भाषा-वैज्ञानिक ने शुद्ध हिन्दी, साधु हिन्दी, उच्च हिन्दी, नागरी हिन्दी, हिन्दुस्तानी और आर्यभाषा भी कहा है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने 'हिन्दी' को उत्तर भारत के मध्य भाग के हिन्दुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के अर्थ में मुख्यतया मानते हुए उसकी निम्नलिखित भाषा-शास्त्रीय परिभाषा दी है, "संसार के भाषा-समूहों में भारत-यूरोपीय कुल के भारत-ईरानी उपकुल में भारतीय आर्य-शाखा की आधुनिक भाषाओं में से एक मुख्य भाषा हिन्दी है।"[1]

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है—"जहां कहीं भी 'हिन्दी' का 'देव-नागरी लिपि में लिखित संस्कृतबहुल शैली वाली उत्तर भारतीय हिन्दुओं की साहित्यिक भाषा' इस अर्थ में प्रयोग किया गया है वहा लेखक ने आंग्ल-भारतीय नाम—'हाई हिन्दी' (High Hindi) अथवा 'हिन्दी' नाम—'नागरी हिन्दी'—का प्रयोग किया है।"[2]

उच्च हिन्दी वह हिन्दी है, जिसमें अनावश्यक रूप से संस्कृत शब्दों की भरमार हो तथा इस दृष्टि से वह शुद्ध हिन्दी का ही पर्यायवाची है। कभी-कभी अन्य प्रादेशिक भाषाओं से 'हिन्दी' का भेद बताने के लिए भी इसे 'उच्च हिन्दी' के नाम से कहा जाता है। अंग्रेज लोग इसे ही 'हाई हिन्दी' कहने लगे। इसको 'साधु हिन्दी' अथवा 'नागरी हिन्दी' भी कहा जाता है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के अनुसार—"यह 'साधु हिन्दी' अथवा 'नागरी हिन्दी' सारे बिहार एवं उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान के हिन्दुओं के सार्वजनिक जीवन, शिक्षण, साहित्यिक प्रगति तथा पत्रकारिता की एकमात्र भाषा है।"[3]

इसके अतिरिक्त डा० चाटुर्ज्या ने हिन्दी के विस्तृत विवेचन में बाजारू हिन्दी का भी उल्लेख किया है। हिन्दी-संसार की साधारण जनता तथा हिन्दी-प्रदेश के आसपास के लोग तथा जिन्होंने हिन्दी का अध्ययन नहीं किया, ऐसे लोगों की साधारण बोली को 'बाजारू हिन्दी' कहा जाता है।[4] यह 'बाजारू

1. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० 11
2. डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषाएं और हिन्दी, पृ० 144
3. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० 176
4. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० 164

हिन्दी' ही सीखकर अंग्रेज लोग अपना काम चला लेते थे तथा इस प्रकार की हिन्दी प्रादेशिक भाषाओं के प्रभाव से थोड़े-बहुत भेद के साथ आज भी कहीं-कहीं बोली जाती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'हिन्दी' का वह रूप जो बाजारों में 'क्रय-विक्रय' आदि के लिए विभिन्न भाषा-भाषियों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है, वह 'बाजारू हिन्दी' कहा जा सकता है।

खड़ी बोली को 'हिन्दुस्तानी' कहते हुए सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने लिखा है—"हिन्दी को हिन्दुस्तानी के उस रूप के अंतर्गत सीमित किया जा सकता है जिसमें संस्कृत शब्दों की प्रचुरता रहती है और इसी कारण वह तभी बोधगम्य होती है जब वह नागरी लिपि में लिखी जाती है।"

प्रसिद्ध भाषाविद् डा० उदयनारायण तिवारी और पं० रामबहोरी शुक्ल हिन्दी को नागरी हिन्दी (खड़ी बोली) कहते हुए उसके 3 रूप मानते हैं—उनके अनुसार, एक रूप वह है जिसमें विचार और भाव के प्रकाशन के लिए आवश्यकता पड़ने पर संस्कृत के शब्दों को ग्रहण करने में संकोच नहीं किया जाता, उसे ही 'खड़ी बोली', 'नागरी हिन्दी' या 'हिन्दी' कहा जाता है। इसी को पुराने समय में हिन्दवी-हिन्दुई या हिन्दी कहा जाता था।

इस प्रकार भाषाशास्त्र के अनुसार 'हिन्दी' का तात्पर्य देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृतबहुल खड़ी बोली के रूप में ही होता है।

सामान्य अर्थ

सामान्य अर्थ में हिन्दी का तात्पर्य उस भाषा से है जो संपूर्ण हिन्दीभाषी क्षेत्र की परिनिष्ठित भाषा है। यह हिन्दीभाषी क्षेत्र हरियाणा, राजस्थान, मध्य-प्रदेश, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार और हिमाचलप्रदेश में फैला हुआ है। इस विशाल क्षेत्र में बसे हुए लोगों की सामान्य भाषा हिन्दी है जो खड़ी बोली का ही परिनिष्ठित रूप है और जिसके साथ-साथ अनेक लघु भाषाएं हैं जो मातृ बोलियों, घरेलू बोलियों या ग्रामीण बोलियों के रूप में आज प्रचलित हैं। हिन्दी-भाषी समुदाय के विकास के साथ-साथ वह खड़ी बोली ही परिनिष्ठित रूप धारण कर आज सामान्य अर्थ में हिन्दी भाषा बनी हुई है। जो दिल्ली-मेरठ की मूल बोली थी, वह दिल्ली के शासन-केन्द्र बनने पर व्यापार-बाजार और पूंजी-वादी सम्बन्धों के प्रसार के साथ धीरे-धीरे संपूर्ण हिन्दीभाषी प्रदेश पर वहां की लघु भाषाओं को दबाकर और उन्हें केवल बोलियों का दर्जा प्रदान कर एक प्रमुख भाषा के रूप में आज फैल गई है। मूलतः यह भाषा खड़ी बोली है। यही हिन्दी आज हिन्दीभाषी क्षेत्र की शासन, शिक्षा, साहित्य, व्यापार आदि की सामान्य भाषा है।

सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने 'हिन्दी' के इस सामान्य अर्थ को स्पष्ट करते

हुए लिखा है—"इस प्रकार यह कहा जाता है और सामान्य रूप से लोगों का विश्वास भी यही है कि गंगा की समस्त घाटी में, बंगाल और पंजाब के बीच, अपनी अनेक स्थानीय बोलियों सहित, केवल एकमात्र प्रचलित भाषा हिन्दी है। सर्वत्र हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी शासन की भाषा है और ग्रामीण स्कूलों में यही शिक्षा का माध्यम भी है।"[1]

इस तरह आज सामान्य अर्थ में हिन्दी का तात्पर्य समूचे हिन्दी क्षेत्र की देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली संस्कृतबहुल खड़ी बोली के परिनिष्ठित रूप से ही है।

कानूनी अर्थ

हिन्दी का एक संवैधानिक अर्थ भी है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद एक नवीन संविधान की रचना हुई। इस नवीन संविधान के अन्तर्गत भारत राष्ट्र को एक पूर्ण स्वतन्त्र प्रभुसत्तासपन्न एकतंत्रीय सघीय गणराज्य माना गया है। इसी संविधान में हिन्दी को भारतीय संघ की 'अधिकृत भाषा' या 'राजकाज की भाषा' घोषित किया गया है।

इस तरह हिन्दी को समूचे भारत के संघीय शासन की एक भाषा का दर्जा प्रदान किया गया है। संविधान मे संघ की भाषा की व्याख्या में धारा 343 (1) मे कहा गया है—"संघ की सरकारी भाषा देवनागरी में लिखी हिन्दी होगी। वास्तव में भारतीय संविधान मे 'सघ' के सरकारी भाषा से तात्पर्य खड़ी बोली के परिनिष्ठित रूप वाली उसी भाषा से है जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और जो संस्कृत के शब्दों से अपने शब्द-भण्डार को संपन्न बनाती है।"

हिन्दी का एक दूसरा कानूनी अर्थ यह भी है कि वह उन राज्यों के प्रशासन की भाषा है, जो राज्य (उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा और हिमाचलप्रदेश) अपने यहां हिन्दी को सरकारी कामकाज की 'राज्यभाषा' (स्टेट लैंगुएज) घोषित कर चुके हैं। इन राज्यों के अतिरिक्त पंजाब, महाराष्ट्र और गुजरात राज्य अपने शासन मे क्रमशः पंजाबी, मराठी और गुजराती भाषा के साथ 'हिन्दी' को सहभाषा के रूप मे घोषित कर चुके हैं। इस प्रकार यहां भी हिन्दी से तात्पर्य संस्कृतबहुल देवनागरी लिपि मे लिखित खड़ी बोली के परिनिष्ठित रूप वाली भाषा से है। यही हिन्दी आज मुख्य रूप से उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा और हिमाचलप्रदेश की राज्य सरकारों के प्रशासन की भाषा है या 'राज्यभाषा' है। इस प्रकार संविधान के अनुसार हिन्दी भारतीय संघ की भाषा और अनेक राज्यों की राज्यभाषा है।

1. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, खण्ड 1, भाग 1

खड़ी बोली के भेद

हिन्दी के बाद खड़ी बोली का दूसरा रूप या शैली उर्दू है। 'उर्दू' उस भाषा का नाम है जो मूल खड़ी बोली के आधार पर अरबी-फारसी के बृहद् शब्द-भंडार का उपयोग करती है और फारसी लिपि में लिखी जाती है। विभिन्न विद्वानों ने 'उर्दू' भाषा की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं।

सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन—"उर्दू हिन्दुस्तानी का वह रूप है जो फारसी लिपि में लिखा जाता है तथा जिसमे फारसी-अरबी शब्द स्वतंत्रतापूर्वक व्यवहृत होते हैं।"[1]

सैयद अब्दुल्ला ('सिंहासन बत्तीसी' की भूमिका)—"हिन्दी (मध्य युग के) भारतवर्ष की पुरानी भाषा है और अनेक लेखकों द्वारा इसका साहित्य समृद्ध हुआ है।·· विजयी मुसलमानों के उसपर अपनी वर्णमाला लाद देने से 'उर्दू' अरबी-फारसी और कुछ तुर्की शब्दों के रंग से रंगी हुई वही भाषा है।"[2]

श्री रामबाबू सक्सेना—"उर्दू भाषा उस हिन्दी या भाषा की एक शाखा है जो सदियों तक दिल्ली और मेरठ के आसपास बोली जाती थी और उसका सीधा सम्बन्ध शौरसेनी प्राकृत से था।"[3]

श्री रघुपतिसहाय 'फिराक'—"वस्तुतः खड़ी बोली हिन्दी को एक विशेष ढंग से या एक विशेष शैली मे प्रयोग करना ही उर्दू है।"[4]

इस प्रकार अधिकांश विद्वान उर्दू को खड़ी बोली का एक रूप मात्र मानते हैं। भाषाशास्त्रियों का यह मत है कि उर्दू अरबी-फारसी से प्रभावित 'हिन्दी' (खड़ी बोली) की एक विशिष्ट शैली है। इसका मूलाधार दिल्ली-मेरठ की खड़ी बोली है। इस मत के आधार पर यहां 'उर्दू' का विवेचन किया गया है। 13वीं से 18वीं शती तक हिन्दी-उर्दू मे कोई मौलिक भेद नहीं था तथा उर्दू शब्द का भाषा के अर्थ में प्रचलन भी इसी शती के अन्तिम चरण में हुआ। इस आधार पर हिन्दी और उर्दू को कम से कम 18वीं शती तक दो पृथक् भाषाएं मानने का प्रश्न ही नही था। आज उर्दू स्वतंत्र रूप से एक पृथक् भाषा मानी जाती है। भारतीय संविधान की अष्टम अनुसूची में इसे भी भारतीय भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है।

मूलतः 'उर्दू' शब्द 'तुर्की' भाषा का है, जिसका अर्थ है—लश्कर; शिविर

1. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, खण्ड 1, भाग 1, पृ॰ 304
2. अनुवादक : लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, मूल लेखक : गार्सां द तासी, हिन्दुई साहित्य का इतिहास, पृ॰ 52-53
3 उर्दू साहित्य का इतिहास, पृ॰ 1
4. उर्दू भाषा और साहित्य, पृ॰ 14

अथवा छावनी) तुर्क तथा तातार लोग जिन शिविरों अथवा तम्बुओं में अपना जीवन व्यतीत करते थे, उन्हें 'उर्दू' कहा जाता था। यही शब्द धीरे-धीरे तुर्की भाषा से अन्य भाषाओं मे, अंग्रेजो में 'होर्ड', इतालवी में 'ओर्दा', फ्रांसीसी में 'होर्दे', जर्मनी मे 'होर्दे', पालिश मे 'होर्दा' तथा रूसी में 'ओर्दा' आदि विभिन्न रूपों में पाया जाता है। एशिया मे यह शब्द ईरान के मार्ग से आया तथा भारत में इसका आगमन 16वीं शती में बाबर के साथ हुआ। प्रारंभ में तुर्क विजेता लोग तथा बादशाह जिन शिविरो अथवा छावनियों में रहा करते थे, उन्हें 'उर्दू-ए-आलिया' अथवा 'उर्दू-ए-लश्कर' आदि विभिन्न नामो से पुकारा जाता था। मुगल वंश के द्वितीय सम्राट् हुमायूं के समय मुगल वश के दरबारों को भी 'उर्दू' कहा जाने लगा था। सम्राट् अकबर के मंत्री अबुल फज़ल रचित 'आईन-ए-अकबरी' में 'उर्दू' शब्द का प्रयोग मिलता है। सम्राट् शाहजहां ने भी 'उर्दू-ए-मुअल्ला' नाम का एक बड़ा किला, जिसे अब लाल किला कहा जाता है, बनवाया था। इन किलों, छावनियों तथा शिविरों के आसपास जो बाज़ार आदि होते थे, उन्हें 'उर्दू बाज़ार' कहा जाता था। आज भी भारत के कई नगरों—दिल्ली, गाज़ीपुर तथा गोरखपुर में यह नाम मिलता है।

इस बात से यही स्पष्ट है कि प्रारंभ में 'उर्दू' शब्द 'स्थान-विशेष' के लिए प्रयुक्त होता था तथा किसी बोली या भाषा के अर्थ में इसका प्रयोग नहीं होता था।

इन शिविरों, उर्दुओं तथा छावनियो में जिस बोली का प्रयोग होता था, उसे 'ज़बान-ए-उर्दू' अर्थात् शिविर की भाषा अथवा 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' अर्थात् महान राज-शिविर की भाषा कहा जाता था। कालान्तर मे उससे पहले 'मुअल्ला' शब्द का तथा बाद मे 'ज़बान' शब्द का लोप हो गया। इस प्रकार उर्दू शब्द स्थान-विशेष की बोली के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। प्रायः सभी विद्वानो का यही मत है कि 'उर्दू' सर्वप्रथम लश्करों, किलों तथा छावनियों में बोली जाती थी। बाद मे इसका धीरे-धीरे अन्यत्र भी विकास हुआ। इस सम्बन्ध मे पंडित कृष्णशंकर शुक्ल का कथन इस प्रकार है—"प्रारंभ मे यह भाषा 'उर्दू-हिन्दी' (अर्थात् शिविरों की हिन्दी) कहलाती थी। उसके बाद उर्दू विशेषण-विशेष्य भाषा के नाम के रूप में प्रचलित हुआ।"[1]

निष्कर्ष यही है कि लश्करों तथा शिविरों के साथ सम्बन्धित होने के कारण यह ज़बान 'उर्दू' कहलाई।

'उर्दू' की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न तर्क देकर अपने-अपने मतों का प्रतिपादन किया है। भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षक सर जार्ज ग्रियर्सन ने उर्दू की उत्पत्ति 'उर्दू-ए-मुअल्ला' अथवा दिल्ली के किले की शाही छावनी से

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 97

बतलाई है।[1] कुछ लेखक यह मानते हैं कि उर्दू एक मिश्रित भाषा है। इसकी उत्पत्ति अन्य अनेक भाषाओं के मिश्रण से हुई है।

उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० धीरेन्द्र वर्मा का मत इस प्रकार है—"इस प्रकार की बोली का व्यवहार सबसे प्रथम 'उर्दू-ए-मुअल्ला' अर्थात् दिल्ली के महलों के बाहर किले के शाही फौजी बाज़ार में होता था, अतः इसीसे दिल्ली के पड़ोस की बोली के इन विदेशी शब्दों से मिश्रित रूप का नाम उर्दू पड़ा।"[2]

डा० वर्मा के मत से एक भिन्न मत की स्थापना होती है, जिसके अनुसार, उर्दू का मूलाधार दिल्ली के पड़ोस की बोली अर्थात् खड़ी बोली है। डा० रामबाबू सक्सेना का इस सम्बन्ध में कथन है—"उर्दू एक मिश्रित भाषा है, जिसमें वह सब भाषाएं सम्मिलित हैं, जो किसी समय में दिल्ली के बाज़ारों में बोली जाती थी, ठीक नहीं है।"[3] डा० सक्सेना के मत से यह स्पष्ट है कि उर्दू मिश्रित भाषा नहीं है। इसकी उत्पत्ति दिल्ली-मेरठ के आसपास की बोली से हुई है। लश्करों तथा छावनियों से इसके विकास का सम्बन्ध अवश्य है। डा० रामविलास शर्मा भी डा० सक्सेना के उपर्युक्त मत का समर्थन करते हैं तथा उर्दू को सामान्य बोलचाल की खड़ी बोली से उत्पन्न मानते हैं।[4]

श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का निम्नलिखित कथन भी उपर्युक्त मत की पुष्टि करता है—"जब फारसी अक्षरों मे लिखित तथा फारसी की ओर झुकी हुई दिल्ली की 'हिन्दी' अथवा 'खड़ी बोली' ने अपना विशिष्ट पथ ग्रहण कर लिया तो वह 'उर्दू' कहलाई।"[5] डा० भोलानाथ तिवारी का भी यही मत है कि उर्दू की उत्पत्ति का मूलाधार दिल्ली के आसपास प्रचलित लोकभाषा है तथा वह मुसलमानों द्वारा चुनी गई दिल्ली-मेरठ की बोली ही है। इस प्रकार उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह दूसरा मत ज्यादा वैज्ञानिक तथा तर्कपूर्ण प्रतीत होता है।

उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे एक और मत भी है जो अंग्रेज विद्वान ग्राह्म बेली का है। उनके मत के अनुसार, उर्दू की उत्पत्ति पंजाबी से हुई है तथा वह प्रारम्भ मे पंजाबी के आधार पर लाहौर मे बन चुकी थी। मुसलमान शासक जब दिल्ली मे आए तो वे इसे अपने साथ लाए। डा० बेली का विचार है कि मुसलमानों ने यहां रहकर जनता से संपर्क के लिए किसी भाषा का प्रयोग तो

1. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, खण्ड 1, भाग 1, पृ० 304
2. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० 60
3. उर्दू साहित्य का इतिहास, पृ० 2-3
4. भाषा और समाज, पृ० 292
5. भारत की भाषाएं तथा भाषा-सम्बन्धी समस्याएं; पृ० [illegible]

अवश्य किया होगा तथा उसका आधार पंजाबी ही थी।[1]

उपर्युक्त विवेचन से उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में 3 विभिन्न मतों का प्रतिपादन होता है—

1. उर्दू एक मिश्रित भाषा है। वह कई भाषाओं के मिश्रण से बनी है।
2. उर्दू की उत्पत्ति का आधार दिल्ली-मेरठ की खड़ी बोली है।
3. उर्दू की उत्पत्ति का मूलाधार पंजाबी भाषा है।

इसके अतिरिक्त कुछ लोग इसे अरबी-फारसी से उत्पन्न भी मानते हैं। सम्भवतः, उनका यह मत उर्दू की शब्दावली के आधार पर ही है, जो वस्तुतः संगत तथा तर्कपूर्ण नहीं है।

यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि उर्दू का मूलाधार 'खड़ी बोली' एवं दिल्ली-मेरठ के आसपास की खडी बोली है। यही दिल्ली-मेरठ की बोली जब लश्करों तथा छावनियों में बोली जाने लगी तो उसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग आरंभ हुआ, वही कालान्तर में 'उर्दू' कहलाई। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य अधिकांश विद्वान एवं भाषाशास्त्री इसी मत को ही किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हैं। डा० ग्राह्म बेली का मत समीचीन प्रतीत नही होता, क्योंकि उर्दू तथा पंजाबी की वाक्य-रचना तथा क्रिया-पदों आदि मे कोई साम्य नही। किन्तु उर्दू पर पंजाबी का प्रभाव अवश्य स्वीकार किया जा सकता है। सारांशतः, उपर्युक्त तीनो मतो मे दूसरा मत ही वैज्ञानिक तथा तर्कपूर्ण माना जाता है। उर्दू और खड़ी बोली के क्रिया-पदों और वाक्य-रचना आदि को देखकर भी इसी मत की पुष्टि होती है।

हिन्दुस्तानी

'उर्दू' शब्द की तरह 'हिन्दी' भाषा के लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द बहुत अधिक प्रचलित हुआ है। इसका प्रयोग कभी 'हिन्दी' के अर्थ में, कभी 'उर्दू' के अर्थ में और कभी हिन्दी-उर्दू दोनों के मिले-जुले रूप के अर्थ में हुआ है। यह खड़ी बोली का तीसरा रूप है और यह रूप है जो हिन्दीभाषी विशाल क्षेत्र के बाहर भी प्रायः सम्पूर्ण भारत में बोलचाल मे प्रचलित है। हम कह सकते हैं कि हमारे देश में सर्वसाधारण की बोलचाल की हिन्दी या उर्दू ही हिन्दुस्तानी है। भाषा-वैज्ञानिक आधार पर हिन्दुस्तानी वह खड़ी बोली है जिसके बृहद् शब्द-भण्डार में संस्कृत और फारसी दोनों के प्रचलित शब्द रहते हैं और जो फारसी और देवनागरी दोनों लिपियो में लिखी जाती है। यह हिन्दी और उर्दू का सरल, बोधगम्य और जन-प्रचलित रूप है। जब खड़ी बोली, बोलचाल या साहित्य मे संस्कृत के

1. ग्रामीण हिन्दी, डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 13-14

कठिन और अप्रचलित शब्दों को और उनके साथ ही अरबी-फारसी के बोझिल, बनावटी और क्लिष्ट शब्दों को ग्रहण न कर दोनों ही भाषाओं के सरल, बोधगम्य और प्रचलित शब्दों को लेकर व्यवहृत होती है तब हिन्दुस्तानी कहलाती है। इसमें अंग्रेजी के भी चलते हुए साधारण शब्द, जो अशिक्षित लोगों की जिह्वा पर आ गए हैं, व्यवहृत होते हैं।

अधिकांश विद्वानों का मत है कि हिन्दुस्तानी नाम वस्तुतः यूरोपीय विद्वानों की देन है। 17वीं शताब्दी में जब पुर्तगाली लोग यहां आए थे तब यहां की भाषा का नाम 'इंदोस्तान' (Indostan) या 'इंदोस्तानी' (Indostani) रखा। अंग्रेजों के द्वारा यही शब्द 'हिन्दुस्तानी' (Hindustani) के रूप में प्रयुक्त होने लगा। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या इस शब्द का प्रयोग 17वीं शती के प्रारम्भ से ही मानते हैं।[1]

ऐतिहासिक खोजों के आधार पर मालूम होता है कि यह नाम कुछ और पुराना है, क्योंकि इस शब्द का उल्लेख भारत की भाषा के अर्थ में 'तुज्के-बाबरी' में भी मिलता है। इसके बाद शाहजहां के शासन-काल (1627 ई० से 1657 ई० तक) में भी 'तारीख फरिश्ता' तथा 'बादशाहनामा' में भी यही शब्द आया है। इसलिए यही कहना उचित प्रतीत होता है कि 'हिन्दुस्तानी' शब्द का जन्म तो सोलहवीं शती में अवश्य हो गया था, परन्तु इसका विशेष प्रचलन सत्रहवीं शती में ही हुआ। संभवतः इसका कारण यह है कि मध्ययुग के मुसलमानों ने भाषा के अर्थ में 'हिन्दुस्तानी' शब्द की अपेक्षा 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' शब्द का ही अधिक प्रयोग किया था। सत्रहवीं शती में तथा उसके बाद यूरोपियन यात्रियों तथा पादरियों ने इस शब्द का प्रयोग व्यापक रूप से किया। भारतीय व्यवसाय में लगे हुए डच लोगों की सुविधा के लिए डच पादरी जे० के० टर्सीर (सन् 1715) ने 'हिन्दी' का जो व्याकरण लिखा, उसे 'हिन्दुस्तानी ग्रामर' की संज्ञा दी। सन् 1800 में स्थापित फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता के जान गिलक्राइस्ट ने भारत की प्रधान भाषा के लिए सामान्य रूप से 'हिन्दुस्तानी' शब्द का ही प्रयोग किया। उन्होंने 'हिन्दुस्तानी' भाषा के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें भी लिखी। इसी प्रकार इसी शती के मध्य में पूर्वी भाषाओं के फ्रांसीसी विद्वान गार्सां द तासी ने भी भारतीय भाषा के सम्बन्ध में जो व्याख्यान दिए तथा पुस्तकें लिखीं, उनमें भी भारत की मुख्य भाषा के लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग किया।

विभिन्न विद्वानों ने हिन्दुस्तानी की विभिन्न व्याख्याएं दी हैं। डा० ग्रियर्सन ने लिखा है "हिन्दुस्तानी मुख्य रूप से उत्तरी दोआब की भाषा है, साथ ही यह

1. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० 171

भारत की राष्ट्रभाषा भी है। यह फारसी तथा नागरी, दोनों ही लिपियों में लिखी जा सकती है तथा बिना किसी शुद्धि के ही फारसी तथा संस्कृत शब्दों की अत्यधिक बहुलता को बचाते हुए साहित्य में भी इसका प्रयोग हो सकता है।"[1]

गार्सां द तासी ने लिखा है, "बोलचाल की भाषा के रूप में हिन्दुस्तानी को समस्त एशिया में कोमलता और विशुद्धता की दृष्टि से जो ख्याति प्राप्त है वह अन्य किसी को नहीं।...वह वास्तव में भारत की सबसे अधिक शिष्ट प्रचलित भाषा है।"[2]

जब से महात्मा गांधीजी ने हिन्दुस्तानी शब्द को एक राजनीतिक आधार प्रदान किया तब से 'हिन्दुस्तानी' हिन्दुओं और मुसलमानों की मिली-जुली भाषा या साम्प्रदायिक एकता की भाषा या संपूर्ण राष्ट्र की साधारण भाषा के अर्थ में प्रचलित होने लगी। इस संदर्भ में राजनीतिक नेताओं और विद्वानों ने 'हिन्दुस्तानी' की नयी परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं।

श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है—"हिन्दुस्तानी को हम खड़ी बोली का वह रूप कह सकते हैं जिसकी शब्दावली में उर्दू तथा नागरी हिन्दी दोनों की शब्दावलियों का सुष्ठु समन्वय रखा गया हो।...उर्दू तथा नागरी हिन्दी के बीच यह एक प्रकार की आदर्श सुवर्ण-महल-सी है।"[3]

प० पद्मसिंह शर्मा ने लिखा है —"विशुद्ध हिन्दी और उर्दू-ए-मुअल्ला की एक दरम्यानी सूरत का नाम 'हिन्दुस्तानी' कहा जाता है, जिसमें सकील और गैर-मानूस अरबी-फारसी के अल्फाज और दुरूह तथा दुर्बोध संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों से जहां तक हो सके, बचने की कोशिश की जाती है और इस पर ध्यान रखा जाता है कि नित्य के कारबार में जो शब्द और मुहावरे बोलचाल में काम आते हैं वही पोथियों और अखबारों में भी बरते जाएं।"[4]

राजनीतिक नेताओं ने भी 'हिन्दुस्तानी' की 'परिभाषाएं' प्रस्तुत की हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है—"हिन्दुस्तानी है क्या ? साधारण तौर पर तो हम कह सकते हैं कि इस शब्द में बोलचाल की हिन्दी और उर्दू दोनों शामिल हैं और वह दोनों लिपियों में लिखी जाती है, और हम दोनों के बीच का सुन्दर मार्ग अपनाने की कोशिश करते हैं और अपनी इस कल्पना को हिन्दुस्तानी के नाम से पुकारते हैं।"[5]

'हिन्दुस्तानी' के सर्वप्रमुख प्रचारक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था—

1. ग्रियर्सन : भारत का भाषा-सर्वेक्षण, खण्ड 1, भाग 1, पृ० 308
2. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, अनु० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० 59
3. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० 166
4. पद्मसिंह शर्मा, पृ० 2
5. राष्ट्रभाषा का सवाल, पृ० 9

"हिन्दी भाषा वह भाषा है जिसको उत्तर मे हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिन्दी एकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह एकदम फारसी शब्दों से लदी है।"[1] गांधीजी ने ये विचार सन् 1918 में इन्दौर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में सभापति-पद से प्रकट किए थे। गांधीजी के इन्हीं समन्वयवादी एवं एकता-समर्थक विचारों के अनुरूप एक बार स्वर्गीय मौलाना अब्दुल हक़ साहब और स्वर्गीय राजेन्द्रप्रसाद ने 28 अगस्त, 1937 ई० को अपने एक संयुक्त वक्तव्य द्वारा घोषित किया था—"हम इस बात से सहमत हैं कि हिन्दुस्तानी को हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा होना चाहिए और वह उर्दू व नागरी दोनों लिपियों में लिखी जानी चाहिए और सरकारी आफिसों तथा शिक्षा मे दोनों लिपियों को कबूल कर लेना चाहिए। 'हिन्दुस्तानी' हम उस ज़बान को कहते हैं जिसे उत्तर हिन्दुस्तान में बहुत बड़ा जन-सम्प्रदाय बोलता है।"[2] इस प्रसंग में श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का यह कथन अत्यन्त उल्लेखनीय है—"महात्मा गांधी की तीक्ष्ण एवं व्यवहारपूर्ण दृष्टि से हिन्दुस्तानी का महत्त्व छिपा न रह सका। उन्होंने हिन्दी या हिन्दुस्तानी को उत्तर भारत की आम जनता में राजनीतिक चेतना लाने के एकमात्र साधन-रूप मे पहले-पहल देखा। इसके अतिरिक्त उनके दृष्टिकोण के अनुसार हिन्दुस्तानी भारत के समस्त जनों को एक सूत्र में बांधने वाली तथा उनकी एकता का प्रतीकस्वरूप थी। जब बुद्धिजीवियों ने अब तक अंग्रेज़ी के उपयोग द्वारा आई हुई एकांतता को छोड़कर सार्वजनिक तथा राजनीतिक जीवन मे हिन्दुस्तानी का उपयोग आरम्भ किया, तो उत्तर भारत की जनता ने, जहां भी हिन्दुस्तानी समझी जाती थी, इस आह्वान का बड़े उत्साह से स्वागत किया। इस प्रकार जनता तक पहुंचकर सहज बनी और सुदूर भविष्य में प्रभाव डालने वाली एक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भाषागत क्रांति का सूत्रपात हुआ है।"[3]

हिन्दी का व्यापक अर्थ

हिन्दी प्रदेश के अति विस्तृत होने के कारण 'हिन्दी' शब्द का अर्थ अतीव व्यापक है और हिन्दी उस भाषा का नाम है जो अनेक बोलियों के रूप मे उत्तर भारत और मध्य देश की जनता की मातृभाषा है। समय-समय पर वह भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित होती रही है और उसके कई क्षेत्रीय रूप हैं। वह कई बोलियों और उपभाषाओं से प्रभावित रहने के कारण समन्वयात्मक है और

1. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, पृ० 11
2. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, पृ० 97
3. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० 158

प्रकृति से एक रचनात्मक भाषा है।

'देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है' और 'संघ की राजभाषा हिन्दी है' कहने से हमारा तात्पर्य केवल परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी से है। परन्तु हिन्दी का अर्थ और भी व्यापक है। आधुनिक युग में हिन्दी को केवल खड़ी बोली मे ही सीमित नही किया जा सकता। हिन्दी की सभी उपभाषाएं और बोलियां हिन्दी के व्यापक अर्थ मे आ जाती हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, वह बड़ा ही सार्थक है—"वस्तुतः, हिन्दी शब्द उतना एक-रूप भाषा के अर्थ मे व्यवहृत नही होता, जितना परम्परा के अर्थ में होता है।"[1] अतः स्पष्ट है कि आधुनिक युग मे खड़ी बोली का व्यापक प्रचार होने पर भी व्रज, अवधी, राजस्थानी और भोजपुरी आदि हिन्दी के ही रूप हैं। प्रादेशिक स्तर पर उनके पृथक् अस्तित्व की कल्पना के साथ-साथ ये सभी बोलियां हिन्दी में ही समाविष्ट हैं तथा हिन्दी की अंगभूत हैं।

हिन्दी की ऐतिहासिक विकास-परम्परा

भारत की सभी आर्यभाषाओं की तरह हिन्दी भाषा का जन्म और विकास भी भारतीय प्राचीन आर्य भाषा से हुआ है। भारतीय आर्यभाषाओं के विकास मे मध्यदेश का काफी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मध्यदेश के सीमा-निर्धारण के सन्दर्भ मे विद्वानो ने तरह-तरह के विचार व्यक्त किए हैं। जिस भूभाग को मनुस्मृति मे 'मध्यदेश' की संज्ञा दी गई है, वह सम्पूर्ण उत्तरापथ का हृदेश है, अतः उसकी मध्यदेश जैसी संज्ञा बड़ी ही सार्थक है। वैदिक युग से लेकर आज तक भाषा-प्रसार की दृष्टि से मध्यदेश का प्रमुख विकासोन्मुख रहा है। मध्यदेश सम्पूर्ण उत्तरापथ मानो आर्यावर्त का हृदय-स्थल कहा गया है। यह उदात्त भारतीय संस्कृति का केन्द्र-बिन्दु एवं भारतीय आर्यभाषाओं का उद्गम प्रदेश है। आर्यों की संस्कृति एवं भाषा की जो ज्योति सर्वप्रथम इस प्रदेश में प्रज्वलित हुई उसके प्रवाहमान एवं अखण्ड प्रकाश से आज तक भारत-भूमि का प्रत्येक प्रान्त, उसका हर एक कण प्रकाशित होता चला आ रहा है। इतना ही नहीं, इसने विश्व मे भी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। यों तो यह प्रदेश प्रत्येक दृष्टि से महानता का मूर्त रूप रहा है किन्तु इसकी महत्ता के प्रमुख आधार दो हैं: प्रथम, इसकी अखण्डित सांस्कृतिक परम्परा और द्वितीय, महती भाषा-परम्परा।

मध्यदेश की परिनिष्ठित भाषाएं—क्रमानुसार संस्कृत, पालि, शौरसेनी, प्राकृत, नागर अपभ्रंश, व्रज और खड़ी बोली अपने-अपने समय मे अखिल भारतीय जनसम्पर्क की भाषा के गौरवमय पद को सुशोभित करती रही हैं। संस्कृत भारतीय

1. हिन्दी साहित्य, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० 2

आर्य भाषाओं के विकास की प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी है। मध्यदेश की यह भाषा देववाणी नाम से भारत ही नहीं, विश्व के एकाधिक देशों में सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित रही है। "हिमालय से सेतुबन्ध तक, सारे भारतवर्ष के धर्म, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा आदि विषयों की भाषा कुछ सौ वर्ष पहले तक एक ही रही है। यह भाषा संस्कृत थी। भारतवर्ष का जो कुछ रक्षणीय है वह इस भाषा के भण्डार में संचित किया गया है।···इसके लक्षाधिक ग्रन्थों के पठन-पाठन और चिन्तन में भारतवर्ष के हजारों पुश्त तक के करोड़ों सर्वोत्तम मस्तिष्क दिन-रात लगे रहे हैं और आज भी लगे हुए हैं। मैं नहीं जानता कि संसार के किसी देश मे, इतने काल तक, इतनी दूर तक व्याप्त इतने उत्तम मस्तिष्कों मे विचरण करने वाली कोई भाषा है या नहीं, शायद नहीं।"

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपर्युक्त कथन संस्कृत भाषा की महानता का यथार्थ चित्र उपस्थित करता है। वस्तुतः संस्कृत भारत की अमरवाणी है जो भारतीय संस्कृति का पावन संदेश युग-युग से देती चली आ रही है।

पालि भी संस्कृत की भांति अपने जमाने की अखिल भारतीय विचार-सम्पर्क की भाषा रही है और साथ ही इसने प्रशासनिक पद को भी सुशोभित किया है। बौद्ध धर्म और साहित्य का माध्यम होने के कारण इसने प्राय. समस्त एशिया के उन देशों में, जहां-जहां भी बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ, महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त की। आगे चलकर शौरसेनी प्राकृत ने अपने दोनों रूपों (महाराष्ट्री एवं शौरसेनी) में समस्त भारत की साहित्यिक एवं जन-सम्पर्क की भाषा की भूमिका का निर्वाह किया। शौरसेनी प्राकृत के बाद अखिल भारतीय रंगमच पर जिस भाषा ने पदार्पण किया वह पश्चिमी या नागर अथवा शौरसेनी अपभ्रंश थी। साहित्य के क्षेत्र में अपने जमाने मे इस भाषा का एकछत्र राज्य रहा है। जैन,,बौद्ध, हिन्दू आदि सबने अपने धर्म, साहित्य एवं संस्कृति आदि के माध्यम के रूप मे इसे स्वीकार किया। यह भाषा अपने समय मे राजभाषा-पद पर अधिष्ठित थी।

ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास मध्यदेश की जनभाषा के रूप में जिन भाषाओं का विकास हुआ, उनमें ब्रज एवं खड़ी बोली का विशेष महत्त्व है। मुसलमानी आक्रमण काल में ये दोनों भाषाएं अपनी किशोरावस्था में थीं। अपेक्षाकृत अनुकूल परिस्थितियों के योग से ब्रज भाषा ने उत्तर भारत की सांस्कृतिक एवं प्रशासनिक भाषा के रूप मे सामन्तीय दरबार मे मान्यता प्राप्त की।[1]

आगे चलकर मध्ययुग के भक्ति-आन्दोलन के प्रमुख माध्यम के रूप में इसने

1. सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० 18

अपनी पवित्रता एवं मधुरता का परिचय दिया है और मध्यदेश की प्राचीन परिनिष्ठित भाषाओं की परम्परा का पालन करती हुई समस्त भारत में जन-संपर्क की भाषा का बड़ी सफलता के साथ प्रतिनिधित्व किया। मुस्लिम शासन के आरम्भ से अन्त तक ब्रज भाषा राजभाषा क्षेत्र को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित रही और खड़ी बोली कभी उत्तर में कभी, दक्षिण में घूमती रही। मुस्लिम शासन के अन्त में खड़ी बोली के राष्ट्रव्यापी स्वरूप की झाकी दिखाई देने लगी। स्वाधीनता-संघर्ष में खड़ी बोली ने अपूर्व राष्ट्रीयता का परिचय दिया। भारत की स्वतन्त्रता के साथ अखिल भारतीय जन-सम्पर्क की भाषा की पूर्वभूमिका के साकार रूप में खड़ी बोली ने स्वतः राष्ट्रभाषा का अपूर्व पद प्राप्त किया और सन् 1950 में इसे भारतीय संविधान के द्वारा भारत की राष्ट्रभाषा का पद प्रदान किया गया।

इस प्रकार मध्यदेश की परिनिष्ठित भाषाओं की अपनी एक महनीय परम्परा रही है, जिसके आदर्श का पालन संस्कृत से लेकर खड़ी बोली तक की सभी भाषाओं ने किया है।

विद्वानों ने सामान्य रूप से भारतीय आर्यभाषा के विकासक्रम को तीन कालों में विभाजित किया है :—

(1) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (1500 ई० पूर्व से 500 ई० पूर्व तक)
(2) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (500 ई० पूर्व से 1000 ई० तक)
(3) आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (1000 ई० से अब तक)

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के दो रूप मिलते हैं—वैदिक और लौकिक संस्कृत। वैदिक संस्कृत का साहित्य संहिता ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि ग्रन्थों में उपलब्ध है। चारों संहिताओं—ऋक्, यजुर, साम और अथर्व की रचना विभिन्न नामों में, विभिन्न समयों में, विभिन्न ऋषियों द्वारा हुई। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का उत्कृष्टतम स्वरूप ऋग्वेद की साहित्यिक भाषा में मिलता है। वैदिक साहित्य में संहिताओं के बाद ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं। प्रत्येक वेद के अलग-अलग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। वेदों की तुलना में ब्राह्मण ग्रन्थों की सर्वाधिक विशेषता यह है कि ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना प्रमुख रूप से गद्य में हुई है। आर्यों की साहित्यिक भाषा में धीरे-धीरे जो परिवर्तन हुआ उसके नमूने इन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद आरण्यक हैं जो ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट मात्र हैं। आरण्यकों के बाद उपनिषदों का समय आता है। वैदिक भाषा के धीरे-धीरे परिवर्तित होने के कारण उसमें जनभाषा के लक्षण निरन्तर आते गए। परिणामस्वरूप लौकिक संस्कृत का जन्म हुआ। कालान्तर में इसमें अनेक स्थानीय और जनपदीय प्रयोग चलने लगे थे। इस भाषा के रूप को स्थिर करने के लिए ही प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी को 'अष्टाध्याय' की रचना करनी

पड़ी। पाणिनी काल के बाद कई जनपदीय बोलियों का भी विकास हुआ।

भारतीय आर्यभाषा के मध्यकाल में (500 ई० पूर्व से 1000 ई० तक) प्राकृत भाषाओं के अपभ्रंश रूप प्रकट हुए थे जिनसे आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ। पाणिनी के समय में ही जनभाषा और प्राकृत भाषा का अंतर स्पष्ट हो चुका था। महात्मा गौतम बुद्ध के समय से यह अंतर और भी अधिक बढ़ गया। ज्यों-ज्यों आर्यभाषा पर जनभाषा का प्रभाव पड़ता गया त्यों-त्यों संस्कृत भाषा में विकास का गतिरोध हुआ और बोलचाल की भाषा में नया रूप आता गया। आर्यों के प्रसार के साथ ही उनकी भाषाएं भी परिवर्तित होती गईं। परिणामस्वरूप उत्तर भारत में बहुत-से आर्य जनपदों की स्थापना हुई और इन जनपदों में कई बोलियों का विकास भी हुआ। इन बोलियों में स्थानीय विशेषता भी आती गई।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के विकास-क्रम को तीन वर्गों में सामान्य रूप से रखते हैं :

1. पालि युग
2. प्राकृत युग
3. अपभ्रंश युग

पाणिनी के समय में ही साहित्यिक भाषा संस्कृत के अतिरिक्त एक दूसरी भाषा विकसित हुई जो जनसाधारण की भाषा थी। यही भाषा पालि नाम से अभिहित हुई। इस समय की बोलचाल की उस भाषा का प्राचीनतम रूप अशोक के शिला-लेख और जैनों के धर्मग्रन्थ में मिलता है। पालि बौद्ध धर्म की साहित्यिक भाषा थी। कालान्तर में पालि में भी साहित्य का निर्माण प्रारंभ हुआ और उसको भी व्याकरणबद्ध कर दिया गया। इसी का एक दूसरा साधारण रूप भी अलग विकसित होता रहा और धीरे-धीरे उसे 'प्राकृत' रूप मिला। मध्यकालीन भारतीय भाषा के विकास की दूसरी अवस्था में जो जनभाषाएं साहित्य में प्रतिष्ठित हुई वे ही प्राकृत कहलाईं। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा-काल में अनेक प्राकृतों के नामों का उल्लेख मिलता है—मागधि, अर्धमागधि, शौरसेनी, महाराष्ट्रीय और पैशाची आदि। इन प्राकृतों को भी व्याकरण के नियमों में जकड़ने की चेष्टा हुई और साहित्य में इन नियमबद्ध प्राकृतों का प्रयोग होने लगा। जब प्राकृतों का रूप साहित्यिक भाषा का रूप हो गया तब जनभाषा भी अबाधगति से विकासोन्मुख रही। आगे चलकर यही जनभाषा अपभ्रंश कहलाई। अपभ्रंश को मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की कड़ी माना जाता है। अपभ्रंश के भी कई भेद हैं। प्रत्येक प्राकृत का एक अपभ्रंश रूप भी रहा। कालान्तर में अपभ्रंश भाषा में भी साहित्य का निर्माण होने लगा। बौद्धों और जैनों के परवर्ती धार्मिक साहित्य और नाथपंथियों की

वाणी की भाषा अपभ्रंश है। यद्यपि विद्वानों ने कई प्रकार के अपभ्रंशों की गणना की है तो भी मुख्य रूप से तीन अपभ्रंशों—नागर, ब्राचड और उपनागर का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। इनमें नागर अपभ्रंश ही तत्कालीन परिनिष्ठित भाषा थी, जो शौरसेनी प्राकृत के समानान्तर विकसित होने वाली शूरसेनी प्रदेश की बोली पर आधारित थी और जिसे परवर्ती विद्वानों ने शौरसेनी या पश्चिमी अपभ्रंश की संज्ञा दी है। मध्यकालीन आर्यभाषा के तृतीय उत्थानकाल मे शौरसेनी अपभ्रंश ही परिनिष्ठित भाषा के रूप में समस्त उत्तर भारत की एकमात्र साहित्यिक भाषा बनी रही। शौरसेनी अपभ्रंश की विकास-रेखा छठी शताब्दी से दसवी शताब्दी तक खींची जा सकती है और इसकी सीमा ग्यारहवी-बारहवी शताब्दी तक भी बढ़ाई जा सकती है। मध्यदेश की महत्वपूर्ण भाषा-परपरा की एकमात्र उत्तराधिकारिणी होने के कारण शौरसेनी अपभ्रंश ने सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विविध परिस्थितियों की अनुकूलता के बीच बड़ी उन्नति की। अपभ्रंश भाषा और साहित्य की अभिवृद्धि मे जैन और बौद्ध कवियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषा

जब अपभ्रंश भाषाओ मे साहित्य का निर्माण होने लगा तभी इनमे व्यावहारिक रूप से कुछ भेद आ गया। क्रमशः देश के विभिन्न क्षेत्रों की बोलचाल की अपभ्रंशों से परिवर्तित होते-होते मध्यकाल की विभिन्न अपभ्रंश भाषाओं ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को जन्म दिया। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ के उदय का काल बड़ा अस्पष्ट-सा है। आचार्य हेमचन्द्र (बारहवी शती) द्वारा लिखित अपभ्रंश के व्याकरण से यह प्रतीत होता है कि उस समय अपभ्रंश पूर्ण साहित्यिक बन चुकी थी तथा उसका जनभाषा से सम्बन्ध टूट चुका था। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के विकास को समझने के लिए हमें अपभ्रंशो की ओर अधिक ध्यान देना पडता है।

आधुनिक आर्यभाषाओ के पूर्णतः प्रस्फुटित हो जाने के बाद भी अपभ्रंशों की परंपरा कुछ समय तक चली रही। इस प्रकार की अर्ध अपभ्रंश एवं अर्ध आधुनिक आर्यभाषाओं को साहित्य मे भी स्थान मिलता रहा। भाषा की दृष्टि से अपभ्रंशों तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ के इस मिश्रित काल को 'सन्धि-काल' कहा जाता है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के विकास की दृष्टि से 'परवर्ती अपभ्रंश' का विशेष महत्त्व है। विद्वानों ने इसे 'अवहट्ठ' की भी संज्ञा दी है। इस परवर्ती अपभ्रंश मे कुछ स्थानीय विशेषताए स्पष्ट रूप से दीखने लगी थी। हेमचन्द्र की 'देशी नाममाला' मे आधुनिक देशी भाषाओं के विभिन्न रूप एवं मिश्रण

स्पष्ट दीखते हैं। अपभ्रंश के ये अतिशय देशी भेद विभिन्न आधुनिक आर्य-भाषाओं के रूप में विकसित हुए।[1] प्रमुख आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में हिन्दी के अतिरिक्त असमिया, उड़िया, गुजराती, पंजाबी, बंगला, मराठी और सिन्धी की भी गणना की जा सकती है। इसमें संदेह नहीं कि इन आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में मध्यदेशीय भाषा-परंपरा की विशिष्ट उत्तराधिकारिणी होने का कारण हिन्दी का स्थान सर्वोपरि है।

हिन्दी की उपभाषाएं और बोलियां

हिन्दी के अन्तर्गत उन सभी बोलियों और उपबोलियों को भी सम्मिलित किया जा सकता है जो हिन्दी-प्रदेश में बोली जाती हैं। वास्तव में हिन्दी कुछ बोलियों और उपबोलियों का सामूहिक नाम ही है। हिन्दी के विस्तृत प्रदेश में पांच उपभाषाओं और सत्रह बोलियों का व्यवहार होता है। अब हिन्दी का विस्तृत निजी क्षेत्र हरियाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, बिहार एवं मध्यप्रदेश का सम्मिलित एक विस्तृत भूभाग है। हिन्दी की बोलियों को सामान्य रूप से निम्नलिखित पांच भागों में विभक्त किया जाता है :

1. पश्चिमी हिन्दी : खड़ी बोली, बांगरू (हरियाणा), ब्रजी, कन्नौजी और बुन्देली।
2. राजस्थानी हिन्दी : मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी।
3. पूर्वी हिन्दी : अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी।
4. बिहारी हिन्दी : भोजपुरी, मगही।
5. पहाड़ी हिन्दी : कुमायूनी और गढ़वाली।

"शुद्ध भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी को दो मुख्य बोलियों—पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी—में विभक्त किया जाता है। पश्चिमी हिन्दी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से तथा पूर्वी हिन्दी की उत्पत्ति अर्धमागधी अपभ्रंश से मानी जाती है, इसलिए इन दोनों उपभाषाओं में ध्वनि और रूप-रचना की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर है। अन्य अनेक सीमावर्ती भाषाओं तथा बोलियों के कारण यह अन्तर और भी अधिक स्पष्ट हो गया है। भौगोलिक दृष्टि से 'पश्चिमी हिन्दी' पंजाबी, राजस्थानी, पहाड़ी, पूर्वी हिन्दी तथा मराठी भाषाओं के बीच में है; दूसरी ओर 'पूर्वी हिन्दी' पहाड़ी, बिहारी, उड़िया, मराठी तथा पश्चिमी हिन्दी के मध्य में है।"[2]

1. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास, डा० शिवराज वर्मा, पृ० 61-62
2. डा० शिवराज वर्मा : हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास, पृ० 58

हिन्दी भाषा का विकास

हिन्दी के जन्मकाल से लेकर वर्तमान युग तक की लगभग सहस्र वर्ष की उसकी ऐतिहासिक विकास-यात्रा को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है :

1. आदिकाल (1000 ई० से 1500 ई० तक)
2. मध्यकाल (1500 ई० से 1800 ई० तक)
3. आधुनिक काल (1800 ई० से वर्तमान युग तक)

हिन्दी का आदिकाल हिन्दी भाषा का शैशवकाल है। हिन्दी भाषा के जन्म के समय भारत का राजनीतिक वातावरण बिलकुल अशान्त था। मुसलमानों का आगमन यहां पहले ही हो गया था। उन दिनों हिन्दी-प्रदेश मुख्य रूप से तीन विभिन्न राज्यों में विभक्त था। पश्चिम में चौहान वंश का राज्य था जिसकी राजधानी दिल्ली थी। दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान में राजपूतों का राज्य था। पूर्व में राठौर वंश की राजधानी कन्नौज थी और यह राज्य अयोध्या और काशी तक फैला हुआ था। बारहवीं शती के अन्तिम चरण में मुहम्मद गौरी ने चौहान वंश के सम्राट् पृथ्वीराज को पराजित कर दिल्ली पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। कन्नौज के राजा जयचन्द की पराजय के बाद धीरे-धीरे सारे हिन्दी-प्रदेश पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो गया। राजनीतिक दृष्टि से अशान्त तथा क्षुब्ध वातावरण में हिन्दी का जन्म मध्यप्रदेश में हुआ।

भाषा-विकास की दृष्टि से हिन्दी शौरसेनी अपभ्रंश से प्रसूत हुई और अपभ्रंशों के स्थान-भेद के कारण उसकी अन्य बोलियों का भी विकास हुआ। राजस्थान के चारणों के द्वारा जो साहित्य लिखा गया, उसे 'डिंगल साहित्य' के नाम से अभिहित किया और इस साहित्य की भाषा को 'डिंगल भाषा' भी कहा गया। इसी काल में डिंगल से अधिक व्यापक क्षेत्र की दूसरी साहित्यिक भाषा 'पिंगल' थी। पिंगल वस्तुतः ब्रजभाषा का प्राचीनतम रूप है। डिंगल और पिंगल के अतिरिक्त दिल्ली-मेरठ की एक बोली थी, जो पंजाबी से प्रभावित थी और मुस्लिम संपर्क के कारण जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों का मिश्रण भी होने लग गया था, उत्तरोत्तर विकसित होने लगी थी। यह बोली थी जो साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगी थी। नाथ संप्रदाय के सिद्धों और सन्तों की वाणी उस समय की बोलचाल की हिन्दी के अधिक निकट है। इसी बोलचाल की भाषा हिन्दवी में अमीर खुसरो की वाणी भी प्रस्फुटित हुई। हिन्दी भाषा के विकास में दक्खिनी हिन्दी का भी विशिष्ट स्थान है। शब्द-समूह की दृष्टि से प्राचीनकाल की हिन्दी अपभ्रंश से अधिक नहीं थी। इसमें तुर्की, अरबी,

फारसी और विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग होता था।

1500 ई० से 1800 ई० तक का काल मध्यकाल है। "सोलहवीं शती के प्रारंभ में राजनीतिक परिस्थिति मे परिवर्तन हुआ। सन् 1526 ई० मे देश के शासन की बागडोर मुगल शासकों के हाथ मे आ गई। देश में राजनीतिक अशान्ति के युग की समाप्ति हुई, इसलिए इस काल मे हिन्दी में साहित्यिक विकास की दशा उन्नत हुई। हिन्दी का स्वरूप स्पष्ट हो गया तथा उसकी प्रमुख बोलियां विकसित हो गईं। अपभ्रंशों के रूप बिलकुल समाप्त हो गए तथा हिन्दी के अपने रूप स्पष्ट रूप से निखर आए। इस काल में भाषा के तीन रूप सामने आते हैं—खड़ी बोली, ब्रजभाषा तथा अवधी। ब्रज और अवधी का अत्यधिक साहित्यिक विकास हुआ तथा तत्कालीन ब्रजभाषा-साहित्य को कुछ देशी राज्यों का संरक्षण भी मिल गया। पूर्व मध्यकाल में कृष्ण-भक्त कवियों ने अपने साहित्य मे ब्रजभाषा का चरम विकास किया। उत्तर मध्यकाल मे अनेक आचार्यों एवं कवियों ने ब्रजभाषा में लाक्षणिक एवं रीतिग्रन्थ लिखकर ब्रजभाषा के साहित्य को समृद्ध किया। दूसरी ओर राम-काव्य की भाषा अवधी रही। अवधी का साहित्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठापन एवं विकास हुआ। अवधी सूफी काव्य के माध्यम से प्रगति-मार्ग पर आई। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली के मिश्रित रूप का भी साहित्य में प्रयोग होता रहा। यही खड़ी बोली चौदहवीं शताब्दी में दक्षिण में पहले ही प्रवेश कर चुकी थी, अतः वहां इसका साहित्य में अधिक प्रयोग हुआ। अठारहवीं शती मे इसी खड़ी बोली को मुसलमान शासकों का संरक्षण मिल गया तथा इसके विकास को नई दिशा मिली।"[1]

हिन्दी के मध्यकाल में मध्यदेश की महान भाषा परंपरा के उत्तरदायित्व का पूरा निर्वाह ब्रजभाषा ने किया है। यह अपने समय की परिनिष्ठित और उच्चकोटि की साहित्यिक भाषा थी, जिसको गौरवान्वित करने का सर्वाधिक श्रेय हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों को है। हिन्दी के आधुनिक काल तक आते-आते ब्रजभाषा भी लोकभाषा से काफी दूर हट चुकी थी और अवधी ने तो बहुत पहले से ही साहित्य से मुंह मोड़ लिया था। अठारहवी शती के अन्त मे देश की राजनीतिक दशा में परिवर्तन होने लगा था। 19वी शती के दूसरे दशक में हिन्दी-प्रदेश अंग्रेजों के आधिपत्य में आ गया था। इस राजनीतिक परिवर्तन का प्रभाव मध्यदेश की भाषा हिन्दी पर भी पड़ा। अठारहवीं शती में जब अवधी और ब्रज का साहित्यिक रूप जनभाषा से दूर हो गया तब उनका स्थान खड़ी बोली धीरे-धीरे लेने लगी। अंग्रेजी सरकार ने भी इसका प्रयोग आरंभ कर दिया। हिन्दी के आधुनिक काल के प्रारंभ में एक ओर उर्दू का प्रचार था और दूसरी ओर काव्य

1. डा० शिवराज वर्मा : हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास, पृ० 74

की भाषा ब्रज होने के कारण खड़ी बोली को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ा। इस युग में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने में विविध धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों ने बड़ी सहायता की। फलतः खड़ी बोली साहित्य की मुख्य भाषा बन गयी।

खड़ी बोली की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है और इसकी मुख्य भाषा पश्चिमी हिन्दी है। इस पश्चिमी हिन्दी का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। खड़ी बोली के सीमा-क्षेत्र के सम्बन्ध में भाषा-वैज्ञानिकों का सामान्य विचार यह है कि खड़ी बोली पश्चिमी हिन्दी के उत्तरी-पश्चिमी भाग में है और उसके दक्षिण और पूर्व में ब्रजभाषा के क्षेत्र हैं। पश्चिम में पंजाबी बोली जाती है तथा उत्तर में पहाड़ी भाषाएं बोली जाती हैं, लेकिन आज खड़ी बोली का व्यावहारिक क्षेत्र उक्त सीमाओं की परिधि से निकलकर बहुत अधिक व्यापक हो गया है।

खड़ी बोली के विकास की दिशाएं

मध्यदेश की भाषा से संपूर्ण भारत की संपन्न राष्ट्रभाषा के रूप में खड़ी बोली का क्रमिक विकास कई शताब्दियों में संपन्न हुई लंबी प्रक्रिया का परिणाम है। खड़ी बोली को यह गौरवपूर्ण स्थान देने में अनेक भौतिक सामाजिक तत्त्वों का योग रहा है। इनमें से खड़ी बोली के मूल क्षेत्र के मुख्य नगर दिल्ली में युगों से भारत की राजधानी का रहना और व्यापारिक प्रसार, ये मुख्य तत्त्व रहे हैं। "यदि इस्लामी शासन के आरंभिक काल अथवा 12वीं शताब्दी के अन्त से ही दिल्ली में शासन का केन्द्र स्थापित न हुआ होता तो हिन्दीभाषी जाति का गठन और खड़ी बोली का विकास, दोनों ही अपनी वर्तमान अवस्था को प्राप्त न हुए होते। दिल्ली का राजधानी बनना यह मूल आधार था जिस पर हिन्दीभाषी जाति का गठन और खड़ी बोली का विकास संभव हुआ।"[1] "अंतर्प्रान्तीय भाषा के रूप में हिन्दुस्तानी दिल्ली दरबार से सपृक्त बाजार से उद्भूत होकर मुगल साम्राज्य के सेनानायकों द्वारा भारतवर्ष में चारों ओर फैलाई गई।"[2]

हिन्दीभाषी प्रदेश में जो राजनीतिक, सामाजिक, भौतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन हुए, उन्होंने खड़ी बोली के विकास-मार्ग को और भी अधिक प्रशस्त किया। ईसाई धर्म-प्रचारकों और उत्तर भारत के सामाजिक सुधार एवं सांस्कृतिक जागरण के रूप में आर्यसमाज के आन्दोलन ने खड़ी बोली के प्रसार और विकास की प्रक्रिया को और भी अधिक गति प्रदान की। इन सबके साथ ही राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन ने महात्मा गांधी के नेतृत्व और सूझबूझ में खड़ी बोली को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार कर उसे अन्तर्प्रान्तीय भाषा के रूप में

1. खड़ी बोली हिन्दी का सामाजिक इतिहास, श्री ललित मोहन अवस्थी, पृ० 192
2. डा० ग्रियर्सन : भारत का भाषा-सर्वेक्षण, खण्ड 1, भाग 1, पृ० 303

अत्यधिक विकसित किया। इन सभी सामाजिक कारणों ने समन्वित होकर खड़ी बोली और उसके साहित्य को अत्यधिक संपन्न किया और आज खड़ी बोली हिन्दी एक विशाल प्रदेश की भाषा बन गयी है। स्पष्ट है कि खड़ी बोली का यह विकास कोई आकस्मिक घटना नहीं है। अपने जन्मकाल से लेकर आज तक वह अनेक सोपानों को पार करती हुई इस संपन्न और समृद्ध अवस्था तक पहुंची है। खड़ी बोली के विकास-क्रम को चार कालों में विभाजित किया जा सकता है :

1. खड़ी बोली का आदिकाल (1000 ई० से 1200 ई०)
2. खड़ी बोली का पूर्व मध्यकाल (1200 ई० से 1500 ई०)
3. खड़ी बोली का उत्तर मध्यकाल (1500 ई० से 1800 ई०)
4. खड़ी बोली का आधुनिक काल (1800 ई० से आज तक)

खड़ी बोली का आदिकाल मुख्य रूप से अपभ्रंश ग्रन्थकारो, नाथो, सिद्धों, वीरकाव्यों के रचयिता चारण कवि या भाटों का समय था। भाषा की दृष्टि से यह युग अपभ्रंशकाल का अंतिम चरण था जबकि बोलचाल मे खड़ी बोली और हिन्दी की अन्य वर्तमान बोलियां स्वरूप ग्रहण करने लगी थी। इस युग में रचित अपभ्रंश साहित्य मे प्राप्त खड़ी बोली के आरंभिक प्रयोगों से उसके आदि स्वरूप का आभास मिलता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है— "10वीं से 14वी शताब्दी का काल, जिसे हिन्दी का आदिकाल कहते है, भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश का ही बढ़ाव है। इसी अपभ्रंश के बढ़ाव को कुछ लोग उत्तरकालीन अपभ्रंश कहते हैं और कुछ लोग पुरानी हिन्दी। 12वीं शती तक निश्चित रूप से अपभ्रंश भाषा ही पुरानी हिन्दी के रूप मे चलती थी, यद्यपि उसमें नये तत्सम शब्दो का आगमन शुरू हो गया था।"[1]

सिद्ध योगी और नाथपंथी सन्त ईसा की नवी-दसवी शती से लेकर लगभग 14वी-15वीं शती तक समस्त उत्तर भारत में फैले हुए थे और देश-भर में घूम-घूमकर अपने धर्म का प्रचार करते थे। "इन्हीं नाथपंथी योगियों ने खड़ी बोली हिन्दी को राजस्थान, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल तक फैलाया। नाथो का समय 11वी से 14वीं शताब्दी तक माना जाता है। इनकी भाषा में खड़ी बोली के उदाहरण काफी मात्रा में मिलते हैं।"[2] "सन्त और योगियों के साहित्य के अतिरिक्त इस युग में रचित जैन धर्म के साहित्य में भी प्राचीन खड़ी बोली या पुरानी हिन्दी के नमूने प्राप्त होते हैं। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने अपभ्रंश राज्यों में पुरानी खड़ी बोली के प्रयोग के अनेक उदाहरण दिये हैं।"[3] राजस्थान के प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ 'ढोला मारुरा दूहा' में भी खड़ी बोली के पर्याप्त

1 डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० 20-21
2. क्षितिकंठ मिश्र : खड़ी बोली का आन्दोलन, पृ० 30
3 डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० 179

प्रयोग देखने को मिलते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस युग में बोलचाल में खड़ी बोली ने अपना नव्य रूप ग्रहण कर लिया था और इस रूप का प्रयोग सिद्ध और नाथो ने पर्याप्त मात्रा मे किया है। खड़ी बोली का यह नव्य रूप मुस्लिम शासनकाल मे दिल्ली के राजधानी बनने पर अमीर खुसरो (1253 ई० से 1325 ई०) की रचनाओं मे सर्वप्रथम प्रकट हुआ और 'उर्दू' के रूप में इसका प्रारंभिक विकास शुरू हुआ।

खड़ी बोली का पूर्व मध्यकाल ऐतिहासिक दृष्टि से भारत में इस्लामिक शासन का पूर्वार्द्ध रहा। इस काल मे धार्मिक क्षेत्र मे सन्त मत और इस्लाम धर्म का प्रचार हुआ। दक्षिण में उत्पन्न वैष्णव भक्ति-आन्दोलन की लहर उत्तर में भी आई और वैष्णव भक्ति का भी काफी प्रचार हुआ। साहित्य के क्षेत्र मे इस युग में भक्ति-भावना का स्वरूप ही प्रधानता ग्रहण करता जा रहा था, इसलिए साहित्य के इतिहास-लेखकों ने इसे 'भक्तिकाल' का नाम दिया है। लेकिन खड़ी बोली के विकास की अवस्था की दृष्टि से यह युग साहित्यिक वीरगाथाकाल और भक्तिकाल का संधिकाल था। इस काल में खड़ी बोली के रचयिताओं में सर्वप्रथम अमीर खुसरो का नाम लिया जाता है। अमीर खुसरो की रचनाओं से यह स्पष्ट है कि दिल्ली में खड़ी बोली बोलचाल मे पूरी तरह विकसित होकर आज की खड़ी बोली के बहुत निकट आ गयी थी। अमीर खुसरो के बाद खड़ी बोली का सबसे अधिक प्रयोग निर्गुण सन्त कवियों की रचनाओं मे मिलता है। इन सन्तों ने जन-साधारण की भाषा मे जातिवाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा आदि के विरुद्ध मानवतावाद, समानता, एकेश्वरवाद और निर्गुण ब्रह्मवाद का प्रचार किया। ये सन्त कवि महान समाज-सुधारक और क्रांतिदृष्टा थे। इन सन्तो मे कबीर, दादू, रैदास, नानक आदि प्रमुख थे और इन सबकी रचनाओ मे खड़ी बोली के पर्याप्त विकसित रूप के दर्शन होते हैं। उत्तर भारत के अतिरिक्त महाराष्ट्र के सन्त कवियों ने भी अपनी रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग किया था। पंजाब के सन्तो की रचनाओ मे भी खड़ी बोली का रूप मिलता है।

ऐतिहासिक एवं सामाजिक दृष्टि से खड़ी बोली का उत्तर मध्यकाल वह काल है जिसे हम मुगलकाल कहते हैं। मुगलकाल शान्ति, व्यवस्था और संपन्नता मे सर्वाधिक श्रेष्ठ काल माना जाता है। साहित्य, संगीत और कला के प्रोत्साहन के द्वारा मुगल शासको ने भारतीय सस्कृति के उत्थान के लिए अनेक प्रयत्न किए। इस काल मे हिन्दू-मुसलमानों के बीच आदान-प्रदान के लिए सांस्कृतिक समन्वय और सामाजिक समानता के लिए बहुत-से प्रयास हुए। मुसलमान सूफी सन्तों ने प्रेम का प्रचार किया। निर्गुण सन्त अब भी एकता की स्थापना और धार्मिक भेदभाव के उन्मूलन में लगे थे। वैष्णव धर्मों ने हिन्दू जाति,

धर्म एवं संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने के लिए प्रयत्न किए।

"मुगल शासकों ने हिन्दी कवियों को पर्याप्त प्रश्रय और प्रोत्साहन प्रदान किया। इस काल में पुनः स्वतंत्र होने वाले हिन्दू राजवंशों ने भी साहित्य के विकास की ओर ध्यान दिया और अनेकानेक कवियों को आश्रय दिया। साहित्यिक क्षेत्र में यह युग सामन्ती प्रवृत्तियों का युग था, जो हिन्दी साहित्य में भक्ति व रीति-परम्पराओं के रूप में विकसित हुई। सामन्तों की विलास-प्रियता ने शृंगारिक साहित्य के लिए मार्ग तैयार किया। उधर सगुण वैष्णव भक्तों द्वारा सर्वसाधारण की विचारधारा को भक्ति-आन्दोलनों की ओर मोड़कर सांस्कृतिक उत्थान के प्रयत्न हुए।"[1] भाषा के क्षेत्र में यह काल ब्रज और अवधी के व्यापकत्व का काल था जिसमें ब्रजभाषा को अधिक प्रधानता प्राप्त हुई। मुगल शासन में फारसी के राजभाषा बने रहने से खड़ी बोली को विकसित होने और शासन व साहित्यिक भाषा बनने के स्वाभाविक अधिकार प्राप्त नहीं हो सके। लेकिन खड़ी बोली में साहित्य-रचना का कार्य उसके अपने क्षेत्र से बाहर सुदूर दक्षिण में दक्खिनी हिन्दी में इस काल में भी होता रहा। दक्षिण में दक्खिनी हिन्दी में साहित्य की प्रौढ़ परंपरा विकसित हुई और 13वीं शती के अन्त में दिल्ली और उत्तर भारत में खड़ी बोली हिन्दी के आरंभिक साहित्य का विकास 'उर्दू' के रूप में हुआ। मुगल काल में यद्यपि ब्रजभाषा और अवधी ही मध्यदेश में रचे गए साहित्य की दो मुख्य भाषाएं रहीं तो भी इस काल में दिल्ली की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जनसंख्या और महत्त्व के कारण खड़ी बोली का जनसाधारण की बोलचाल की भाषा के रूप में एक विस्तृत क्षेत्र तैयार हो गया। बोलचाल में पनपती हुई खड़ी बोली अरबी, फारसी, तुर्की शब्दों से संयुक्त होकर उर्दू का स्वरूप ग्रहण कर रही थी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अकबर के शासनकाल में खड़ी बोली हिन्दी को पर्याप्त प्रश्रय मिला। अकबर के समय खड़ी बोली शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा हो चुकी थी और दरबारों में उसका प्रयोग होता रहा।

खड़ी बोली का आधुनिक काल एक नये ऐतिहासिक परिवर्तन के साथ प्रारम्भ होता है। यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना और प्रसार से संपन्न हुआ। अंग्रेजों के हाथ में जब राज्यसत्ता आई उस समय तक संपूर्ण मध्यदेश में दिल्ली दरबार और व्यापार की भूमिका और सहयोग से खड़ी बोली बोलचाल की भाषा के रूप में फैल चुकी थी। जिस समय अंग्रेजी राज्य भारत में प्रतिष्ठित हुआ उस समय सारे उत्तर भारत में खड़ी बोली व्यवहार की शिष्ट भाषा बन चुकी थी।[2] लेकिन यह ध्यान देने की बात है कि अभी

1. ललित मोहन अवस्थी : खड़ी बोली हिन्दी का सामाजिक इतिहास, पृ० 218
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 413

तक खड़ी बोली मध्यदेश में साहित्य-रचना की मुख्य भाषा नहीं बन पायी थी। मुगलों के शासन काल के अंतिम दिनों में खड़ी बोली को राजाश्रय भी प्राप्त होने लगा था और राजदरबार से फारसी का प्रभुत्व धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। जब मुस्लिम सामन्ती शासन समाप्त हुआ और साम्राज्यवादी अंग्रेज़ी शासन शुरू हुआ तब उन्हें खड़ी बोली उर्दू दिल्ली दरबार की उत्तराधिकारिणी और मध्यदेश में सामान्य जन-व्यवहार और व्यापार की भाषा के रूप में प्राप्त हुई। प्रारंभ मे अंग्रेज़ों ने खड़ी बोली हिन्दी और उर्दू को सामान्य रूप से ग्रहण किया, लेकिन आगे चलकर 1857 ई० की क्रान्ति के बाद उन्होंने हिन्दी-उर्दू को सांप्रदायिक विद्वेष और भाषाई भेद-नीति का आधार बनाया। खड़ी बोली के आधुनिक काल के विकास के प्रथम चरण में मुंशी इंशा अल्ला खां, सदासुख लाल, पंडित सदल मिश्र तथा लल्लूलाल जी की रचनाएं मिलती हैं। दूसरे चरण में राष्ट्रीय जन-जागरण से सम्बन्धित साहित्य मिलता है और इस युग का नेतृत्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। भारतेन्दु-युग मे गद्य के अतिरिक्त पद्य में भी हिन्दी खड़ी बोली का प्रयोग आरंभ हो गया। खड़ी बोली के विकास के आधुनिक काल का तीसरा चरण (1800 ई० से 1925 ई०) अत्यंत महत्त्वपूर्ण राजनीतिक सामाजिक घटनाओं का काल रहा है। इस समय के राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों ने अनेक सशक्त साहित्यकारों को जन्म दिया।

खड़ी बोली के विकास के आधुनिक काल का चौथा चरण (1925 ई० से 1947 ई० तक) 'प्रेमचन्द युग' से अभिहित किया जाता है। खड़ी बोली के विकास के आधुनिक काल का पाचवां चरण आधुनातन युग (स्वातंत्र्योत्तर युग) कहलाया जा सकता है। इस युग मे खड़ी बोली ने अभूतपूर्व समृद्धि पाई है। भारतीय संविधान में खड़ी बोली हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित करने से खड़ी बोली हिन्दी को एक विशिष्ट दायित्व का भी निर्वाह करना पड़ रहा है। खड़ी बोली हिन्दी भारत की सीमा को पार कर अन्तर्राष्ट्रीय मंच तक पहुंचने की क्षमता हासिल कर रही है।

2

हिन्दी के सार्वदेशिक स्वरूप का विकास

सभ्यता का विकास भाषागत विकास का पर्याय होता है। सभ्यता की यह सांस्कृतिक परिणति अपनी अभिव्यक्ति के लिए पारिस्थितिक परिवेशों के अधीन एक ऐसी भाषा का विधान करती है जो उसकी समग्रता की सशक्त वाहिका बन सके। इस रूप में समान संस्कृति और समान भाषा की संरचनाएं एक-दूसरी से अपरिहार्य रूप में एकान्वित हो जाती हैं।

भारतीय संस्कृति का निर्माण और विकास एक विशिष्ट भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हुआ है। छिट-पुट प्रादेशिक विभेदों के होते हुए भी कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कामरूप तक भारतीय संस्कृति की आत्मा एक रही है और इसीके अनुरूप अखिल भारतीय भाषा का निर्माण भी स्वतः होता आया है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काल तक राष्ट्रभाषा के विकास की यही परंपरा अक्षुण्ण रही। ईसा की 10वीं शताब्दी के आसपास अनेक कारणों से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास-क्रम परिलक्षित होता है, किन्तु इन विभिन्न भाषा-प्रदेशों के बीच संपर्क या एकता स्थापित करने की एक अन्तर्धारा के रूप में हिन्दी भाषा का कोई न कोई रूप-भेद व्यवहार में रहा है। कई कारणों से यह विशिष्ट गौरव हिन्दी को प्राप्त हुआ था। हिन्दी का संबंध अपनी सहवर्तिनी आर्यभाषाओं के साथ ही नहीं बल्कि दूरवर्ती अन्य भाषा-परिवार की भाषाओं के साथ भी रहा है। हिन्दी मध्यदेश—भारत के हृदयस्थल—की भाषा होने तथा अपने में कई बोलियों और उपभाषाओं को साथ लेकर विशाल भू-भाग की व्यवहार की भाषा होने के कारण भी राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्रों मे भारत के अन्य भाषा-प्रदेशों से भी किसी न किसी रूप में संबद्ध रही है।

हिन्दी की सार्वदेशिक व्यापकता के इतिहास को हम दो कालों मे विभाजित कर सकते हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास मे जिसको हम प्राचीन और मध्यकाल कहते हैं, उस काल में भी विभिन्न भाषा-प्रदेशों में हिन्दी का कोई न कोई रूप पनपा है और वहां साहित्यिक रचना भी हुई है। हिन्दी की इस व्यापकता के पीछे कोई खास आन्दोलन नहीं रहा, परन्तु एक स्वाभाविक सरल भाषा माध्यम के रूप मे हिन्दी इन विभिन्न प्रदेशों में पनपी है। इसलिए यह काल हिन्दी की व्यापकता का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ तो हिन्दी के प्रति जो राष्ट्रीय चेतना प्रस्फुटित हुई और उसके कारण

संपूर्ण देश मे अखिल भारतीय भाषा माध्यम के रूप में हिन्दी की जो व्यापकता हुई, इसमे कोई आश्चर्य की बात नही।

खड़ी बोली के विकास के लिए नये प्रेरक तत्त्व उभरे, जिनके कारण हिन्दी की व्यापकता और भी अधिक बढ़ी। यह काल हिन्दी की व्यापकता के इतिहास का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। हम यहा पर उस प्राचीन काल में हिन्दी की व्यापकता को प्रश्रय देने वाली परिस्थितियों और हिन्दी के सार्वदेशिक स्वरूप पर भी प्रकाश डालेंगे।

प्राचीनकाल मे हमारे देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियां किसी भी भाषा अथवा साहित्य के विकास के लिए प्रत्यक्ष रूप से अनुकूल नही रहीं, यद्यपि इन परिस्थितियों ने हिन्दी के विकास में परोक्ष रूप से सहायता पहुंचाई है। हिन्दी को भारत के विभिन्न भाषा-प्रदेशों में पहुचाने का प्रमुख श्रेय तत्कालीन सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों को है जिनके कारण हिन्दी हिन्दीभाषी प्रदेशों की सीमाओ को लाघकर पंजाब, बगाल, गुजरात, महाराष्ट्र और दक्षिण भारत जैसे अहिन्दीभाषी प्रदेशो तक पहुंची। अहिन्दीभाषी प्रदेशो के अनेकानेक व्यक्तियों द्वारा हिन्दी साहित्य की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। हिन्दी गत कई शताब्दियों से एक सार्वदेशिक भाषा के रूप मे प्रयुक्त होती रही है और इसके आधारभूत कारण बहुत है, जो हिन्दी की व्यापकता को चरितार्थ करते हैं। हिन्दी की व्यापकता के प्रमुख कारणों मे सास्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक, व्यापारिक, राजनीतिक कारण हैं।

सास्कृतिक-दृष्टि मे सारा भारत हमेशा एक ही रहा है। विविधता में एकता ही भारतीय सस्कृति की अनुपम विशेषता है। इसकी विविधता में एकता के अनेक तत्त्व विद्यमान है जो इसकी मौलिक एकता के प्रतीक हैं। भारत के विभिन्न प्रदेशों मे विविध धर्मों के जो तीर्थस्थान हैं वे भारत की सांस्कृतिक एकता के आधार-स्तंभ हैं। भारत के धार्मिक जीवन में इन तीर्थस्थानों का विशिष्ट महत्त्व रहता है। दूर-दूर प्रदेशों से तीर्थयात्री इन तीर्थस्थानो मे आते रहते हैं। हिन्दुओं के कुछ प्रमुख तीर्थस्थान हिन्दीभाषी प्रदेश मे स्थित हैं, जैसे काशी, हरिद्वार आदि। भारत के सभी भागों से तीर्थयात्री इन तीर्थस्थानो मे पहुंचते थे। इसी तरह से हिन्दी-प्रदेश के भक्त भी पूर्व दक्षिण मे तीर्थस्थानो और धामों की यात्रा के लिए आया-जाया करते थे। इन केन्द्रो मे आदान-प्रदान की भाषा के रूप मे हिन्दी का ही अधिकतर व्यवहार होता था। इस प्रकार इन सास्कृतिक परम्पराओ से हिन्दी की सार्वदेशिकता को बढने का अवसर मिला।

देश के एक छोर से दूसरे छोर तक यात्रा करने वालों को किसी एक सामान्य भाषा का सहारा लेना पड़ता था। उन दिनों एक सामान्य व्यापक भाषा केवल हिन्दी थी जो उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम के तीर्थयात्रियों के बीच में बातचीत की सामान्य भाषा थी। विशेषकर दक्षिण और उत्तर के सांस्कृतिक सम्बन्ध की दृढ़ शृंखला के रूप में हिन्दी भाषा सशक्त माध्यम बनी थी। सच्चाई तो यह है कि जनभाषा किसीके बनाए नहीं बनती, परन्तु उसको सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियां सदियों से स्वरूप देती हैं। हमारे देश की सांस्कृतिक परम्पराओं को अक्षुण्ण रखने में संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के बाद हिन्दी को व्यापक रूप धारण करने का अवसर मिला है।

भारत में समय-समय पर अनेक धर्मों और मत-मतान्तरों का जन्म हुआ है। बहुत ही प्राचीन काल से इस देश के जन-जीवन को विविध धर्म प्रभावित करते आए हैं। धर्म-प्रचारक आचार्य अपने धर्म के व्यापक प्रचार के लिए जन-भाषा या लोकभाषा का आश्रय लेते थे। बौद्ध धर्म का प्रचार लोकभाषा पालि में हुआ और जैन धर्म का प्रचार प्राकृतों के माध्यम से हुआ। भारतीय धार्मिक इतिहास में यह महत्त्वपूर्ण घटना है कि धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए आचार्यों ने संस्कृत को छोड़कर तत्कालीन लोकभाषा का आश्रय लिया। दक्षिण के वैष्णव भक्ति-आन्दोलन की व्यापकता का रहस्य भी आचार्यों द्वारा जनभाषा को अपनाना था। इसी प्रकार उत्तर भारत में मध्ययुग में वैष्णव आचार्यों और सूफी सन्तों ने अपने भक्ति-संप्रदायों के विचारों के प्रचार के लिए जनभाषा हिन्दी को चुना। इन धार्मिक आन्दोलनों के परिणामस्वरूप हिन्दी की व्यापकता को बल मिला। इन आन्दोलनों में निर्गुण सन्त मत, सूफी धर्म और वैष्णव धर्म सर्वप्रमुख हैं।

निर्गुण सन्तों ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए एक मिली-जुली भाषा अथवा सधुक्कड़ी हिन्दी को अपनाया। इन्होंने सन्त मत के प्रचार के लिए खड़ी बोली हिन्दी को इसलिए अपनाया कि वे हिन्दू और मुसलमानों के बीच के भेद-भाव को समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने जानबूझकर संस्कृत या फारसी को नहीं अपनाकर उस समय की लोकभाषा हिन्दी को अपनाया। "सन्तों की भाषा प्रारम्भ से ही एक व्यापक भाषा थी, इसलिए विचारों के आदान-प्रदान के लिए अहिन्दीभाषी प्रदेशों में भ्रमण करते समय सन्त लोग इसी भाषा का अधिक प्रयोग करते थे। सन्तों की वाणी के प्रति जन-साधारण का स्वाभाविक आकर्षण रहता था, इसलिए वे उसे सुनने और समझने के लिए सदा लालायित रहते थे। इस प्रकार सन्त-समागम से हिन्दी का प्रचार बढ़ता गया और यह भाषा अहिन्दी-

भाषी प्रदेशों में अधिक से अधिक व्यापक बनती गई।"[1]

सन्त एक प्रदेश में न रहकर पूरे देश में घूमकर अपने विचारों का प्रतिपादन करते थे। उनके लिए जाति या भाषा का प्रश्न ही नहीं था। वे जहां जाते थे, वहां की जनभाषा को अपनाते थे। अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचाने के लिए सीधी-सादी और सुबोध भाषा को काम में लाते थे। इसलिए पूरे देश के सन्त अपनी प्रादेशिक सीमाओं से बाहर जाते समय हिन्दी का प्रयोग करते थे और उसके माध्यम से अपने विचार प्रकट करते थे। इस बात के प्रमाण हैं कि हिन्दी-प्रदेश के अतिरिक्त महाराष्ट्र, पंजाब और गुजरात के सन्तों ने भी अपनी वाणी का माध्यम हिन्दी को बनाया। ये निर्गुण सन्त और साधु वास्तव में हिन्दी के आदि प्रचारक रहे।

हिन्दी को देशव्यापी बनाने में वैष्णव धर्म ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। दक्षिण में ईसा की चौथी-पांचवी शताब्दी से लेकर नवी शताब्दी तक भक्ति-आन्दोलन चला और इस भक्ति-आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वैष्णव भक्तों ने जनभाषा का सहारा लेकर भक्ति-साहित्य रचा। बाद की शताब्दियों में इस वैष्णव भक्ति-आन्दोलन से प्रभावित दक्षिण के आचार्यों ने वैष्णव भक्ति के नवीन तथ्यों का प्रचार पूरे देश में किया। इन आचार्यों में जो दक्षिण के थे और जिन्होंने उत्तर में भक्ति का प्रचार किया उनमें वल्लभाचार्य और रामानन्द के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन आचार्यों के पहले भी दक्षिण के दूसरे आचार्य उत्तर के प्रमुख भक्ति-केन्द्रों में आते थे और भक्ति-सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। संभवतः इन आचार्यों ने उत्तर की जन-साधारण की भाषा को अपनाया होगा। रामानन्द और वल्लभाचार्य ने तो हिन्दी के माध्यम से भक्ति-आन्दोलन को सशक्त बनाया। मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति-आन्दोलन के दोनों इष्ट देवोंराम और कृष्ण की पृष्ठभूमि हिन्दी क्षेत्र ही है। इसलिए भक्त लोग राम-कृष्ण की जन्म-भूमि की भाषा क्रमशः अवधि और ब्रज के द्वारा अपने भक्ति-उद्गारों को अभिव्यक्ति देने में लीन रहे। राम और कृष्ण की भक्ति-भावना अवधी और ब्रज के माध्यम से हिन्दी-प्रदेश की सीमाओं को लांघकर की गई। यहां तक कि मुसलमान कवियों ने भी कृष्ण और राम की आराधना ब्रज और अवधी के माध्यम से ही की है। मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति-आन्दोलन इतना व्यापक रहा कि वैष्णव धर्म की विचारधारा की सुन्दर अभिव्यक्ति का माध्यम ब्रज और अवधी को समझकर इसके द्वारा देश के विभिन्न प्रदेशों के कवि रस-विभोर होने लगे। हिन्दी के कृष्णभक्त और रामभक्त कवियों की रचनाओं से प्रभावित होकर हिन्दीतर प्रदेशों के बहुत-से कवियों ने ब्रज या अवधी को माध्यम बनाकर

1 सत्यकेतु विद्यालंकार : भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० 701

भक्तिपरक काव्य रचे हैं। डा० अम्बाशंकर नागर ने ठीक ही कहा है—"इस प्रकार हिन्दी को व्यापक बनाने में वैष्णव संप्रदाय के अनुयायियों का प्रमुख हाथ रहा है। जहां-जहां यह धर्म पहुंचा, ब्रजभाषा भी उसके साथ पहुंची। वल्लभाचार्य और उनके अनुयायियों ने कृष्णभक्ति और ब्रजभाषा के प्रचार में अभूतपूर्व योग दिया है। रामभक्तों में तुलसीदास की तथा उनके 'मानस' की लोकप्रियता ने भी अहिन्दीभाषी लोगों को अवधी भाषा की ओर आकर्षित किया।"[1]

मध्ययुगीन सूफी सन्तों ने भी जनभाषा अवधी में ही अपनी रचनाएं प्रस्तुत कीं। वे जानते थे कि अपने विचारों को जन-साधारण तक पहुंचाने के लिए फारसी किसी काम की नहीं थी और इसलिए उन्होंने जनभाषा का सहारा लिया। सूफी सन्तों ने अपनी रचनाओं के द्वारा सांस्कृतिक समन्वय और सामाजिक समन्वय के लिए प्रयत्न किए। ये सूफी भारत के विभिन्न प्रदेशों में जाते थे और जन-भाषा का आश्रय लेते थे। दक्षिण के सूफी सन्तों ने दक्खिनी में महत्त्वपूर्ण विपुल साहित्य रचा। इस प्रकार सूफियों ने भी हिन्दी भाषा को देशव्यापी बनाने में एक विशिष्ट भूमिका का निर्वाह किया है।

इन निर्गुण सन्तों, वैष्णव भक्तों और सूफी साधकों के द्वारा हिन्दी की व्यापकता बढ गई। जो सन्त भारत के बाहर काबुल आदि गए उन्होंने भी अपने विचारों के माध्यम के लिए हिन्दी को अपनाया। हिन्दी में रचित मध्य-युगीन विपुल भक्ति-साहित्य इतना प्रभावशाली रहा कि अन्य भाषा-भाषी कवि भी इसकी ओर आकृष्ट हुए और हिन्दी में रचनाएं प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित हुए।

हिन्दी की व्यापकता और लोकप्रियता का एक कारण साहित्य एवं संगीत की दृष्टि से उसकी संपन्नता भी है। दक्षिण की भाषाओं को छोड़कर भारत की अन्य भाषाओं से हिन्दी की इतनी अधिक समता है कि अन्य भाषा-भाषी बहुत कम रूप से इसको अवश्य समझ लेते थे। विभिन्न प्रदेशों के साहित्यकारों ने जब भक्ति-साहित्य रचा तब वे ब्रज और अवधि के मोह से छूट नहीं सकते थे। इस बात के कई प्रमाण हैं कि हिन्दीतर प्रदेशों के बहुत-से कवियों ने ब्रज और अवधी से मोहित होकर उनमें साहित्यिक रचनाएं प्रस्तुत की हैं। ब्रज की कोमल-कान्त पदावली हर एक साहित्यिक और रसिक को अनायास ही आकृष्ट करने वाली थी। ब्रजभाषा संगीत के लिए भी सक्षम और सफल थी। साहित्य के समान संगीत-प्रेमी भी ब्रजभाषा से आकृष्ट रहा करते थे। लगभग सभी प्रदेशों के संगीतज्ञ शास्त्रीय संगीत में सूरदास के पद ही गाते थे, क्योंकि ब्रजभाषा

1. डा० अम्बाशंकर नागर : गुजरात की हिन्दी सेवा, पृ० 67

संगीत और साहित्य दोनों के लिए अनुकूल भाषा समझी जाती थी। हिन्दीतर प्रदेशों के विविध साहित्यकारों द्वारा हिन्दी के प्रयोग से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी की साहित्यिक सुगमता और संपन्नता को देखकर ही अनेक अहिन्दीभाषी कवियों ने अपनी रचनाओं में हिन्दी को स्थान दिया।

हिन्दी को देशव्यापी बनाने में एक दूसरा स्रोत व्यापारिक रहा है। हिन्दी को चिरकाल से व्यापारियों का प्रश्रय मिला है। मुगल शासनकाल में देश की शासन-व्यवस्था सुगठित होने से व्यापार, शिक्षा, साहित्य और कला के क्षेत्र में उन्नति हुई। उन दिनों प्रमुख व्यापारिक केन्द्र हिन्दी-प्रदेश में स्थित थे और उनका व्यापारिक दृष्टि से अधिक महत्त्व था। इन व्यापारिक केन्द्रों मे देश के विभिन्न भागों से व्यापारी लोग आया करते थे। हिन्दी-प्रदेश में स्थित पटना, आगरा, बनारस, लखनऊ, दिल्ली आदि बहुत ही प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र थे और यहा पर विविध भागों से व्यापारी आ पहुंचते थे और इन केन्द्रों में लेन-देन के लिए हिन्दी का आम व्यवहार होता था। हिन्दी-प्रदेश के व्यापारिक महत्त्व के इन नगरों मे दूसरे ग्रामों, कस्बों और नगरों के मजदूरों एवं जुलाहों की बहुत बड़ी सख्या इकट्ठी होती थी। विभिन्न बोलियां बोलने वाले ये लोग आपसी व्यवहार और लेन-देन के लिए किसी एक सामान्य भाषा का ही प्रयोग करते थे और यह बोली आगरा, दिल्ली की खड़ी बोली ही हो सकती थी।

हिन्दी के विकास में राजनीतिक परिस्थितियों और गतिविधियों का भी बड़ा हाथ रहा है। यह स्वाभाविक है कि जब किसी बोली या भाषा को राजाश्रय प्राप्त होता है तब उसे सभी प्रकार से विकसित होने के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि मिलती है। हिन्दी के उद्भव के समय देश की राजनीतिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। विदेशी तुर्कों के आक्रमण के बाद जब उन्होने देश पर अपना शासन स्थापित कर लिया तब हिन्दी को कोई राज-सरक्षण नहीं मिला। इन शासकों की मातृभाषा तुर्की और राजभाषा फारसी थी। इसलिए उन्होने देश की जनभाषा हिन्दी की ओर ध्यान नही दिया। लेकिन सम्राट् अलाउद्दीन खिलजी के समय से हिन्दी के प्रति शासकों की दृष्टि बदली। उसी समय अमीर खुसरो हुए जो खडी बोली के प्रवर्तक कवि माने जाते हैं। खिलजी वंश के काल मे उत्तर भारत की सर्व मान्य की भाषा खड़ी बोली दक्षिण मे गई और दक्षिण के राज्यों का उसे संरक्षण मिला। यह दक्षिण में साहित्य, शासन और बोलचाल की भाषा बनी। मुगल बादशाहों का शासन जब स्थापित हुआ तब हिन्दी के विकास के लिए अनुकूल वातावरण मिला। बहुत-से मुगल शासक कला-प्रेमी और साहित्य-प्रेमी थे और उन्होने हिन्दी को भी दरबारों में आश्रय दिया। मुगल साम्राज्य के वास्तविक संस्थापक सम्राट् अकबर के शासनकाल में हिन्दी को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

अकबर स्वयं हिन्दी कविता से बहुत प्रेम रखते थे, हिन्दी कवियों का बड़ा सम्मान करते थे। अकबर के बाद जहांगीर के समय में भी हिन्दी कविता को राजाश्रय प्राप्त हुआ। शाहजहां के काल में भी हिन्दी के विकास के लिए प्रोत्साहन मिला। औरंगजेब ने भी अपने दरबार मे हिन्दी कवियों को स्थान दिया। इस प्रकार मुसलमान शासकों को हिन्दी को अपनाते देखकर अनेक हिन्दू राजाओं ने भी हिन्दी कवियों को भी अपने दरबार में राजाश्रय दिया। रीतिकालीन हिन्दी कवि सभी राजाश्रित थे जिससे हिन्दी के व्यापक होने तथा साहित्य की मुख्य भाषा बनने में सहायता मिली।

चूंकि दिल्ली सैकड़ो वर्ष से भारत की राजधानी रही है, अतः उसका सारे देश से राजनीतिक सम्बन्ध रहा है। ऐसी स्थिति में दिल्ली की बोली को प्रधानता मिलना बड़ी स्वाभाविक बात थी। मुस्लिम शासकों के कर्ता-धर्ता प्रायः अहिन्दी-भाषी क्षेत्र में भी जाया करते थे और उनके साथ उनकी भाषा भी जाती थी। इन शासकों की विशाल सेनाओं मे अधिकतर सैनिक हिन्दी क्षेत्र के ही होते थे। इसलिए जहां-जहां मुस्लिम साम्राज्य का विस्तार हुआ वहां-वहां हिन्दी का प्रवेश भी हुआ। इस प्रकार राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर देखने पर इस कथन मे कोई अत्युक्ति नही है कि हिन्दी को अखिल भारतीय भाषा का स्वरूप देने में मुस्लिम साम्राज्य का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है।

अहिन्दीभाषी प्रदेश में हिन्दी की व्यापकता

हिन्दी के सार्वदेशिक स्वरूप को विकसित करने में अहिन्दी-प्रदेशों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। शताब्दियों से हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध करने में हिन्दी-प्रदेश के अतिरिक्त अहिन्दीप्रदेशों ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। भारत की भाषाओं में केवल हिन्दी ही ऐसी भाषा है जिसको स्वाभाविक रूप से अपने क्षेत्र के बाहर भी विकसित होने के लिए अवसर मिला है। हिन्दी को इस प्रकार सार्वदेशिक महत्त्व प्रदान करने वाली विभिन्न परिस्थितियों का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं।

भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन के साथ पूरे देश में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का विशिष्ट दर्जा देने के लिए राष्ट्रीय नेताओ और साहित्यकारों द्वारा प्रयत्न हुए। पूरे देश मे राष्ट्रीय चेतना को जगाने की दृष्टि से हिन्दी प्रचार-आन्दोलन शक्तिशाली बना। इस व्यापक राष्ट्रभाषा-आन्दोलन के पश्चात् तो हिन्दीतर प्रदेशों में हिन्दी के प्रति बड़ी आस्था जगी और अहिन्दीभाषी हिन्दी लेखकों ने अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास मे अहिन्दी-प्रदेशों की जो महत्त्वपूर्ण देन है वह हिन्दी की लोकप्रियता और सर्वव्यापकता की परिचायिका है। हिन्दी का यह सार्वदेशिक

रूप उसे अचानक प्राप्त नहीं हुआ, इसके पीछे शताब्दियों का इतिहास है। स्वतंत्रता-आन्दोलन की कई शताब्दियों के पहले ही हिन्दी की व्यापक परंपरा अहिन्दी-प्रदेशों में भी पहुंच चुकी थी और अहिन्दी-प्रदेशों में भी किसी न किसी रूप में हिन्दी का प्रचलन हुआ जो हिन्दी के सार्वदेशिक व्यापकत्व का परिचायक है। इस अध्याय में हमारा उद्देश्य केवल अहिन्दीभाषी प्रदेश में शताब्दियों के पहले ही हिन्दी की व्यापकता का दिग्दर्शन कराना है।

पंजाब में हिन्दी

हिन्दी के जन्मकाल से ही पंजाब में हिन्दी की व्यापकता का प्रमाण मिलता है। हिन्दी पंजाब के लिए कोई नई भाषा नहीं है। कुछ लोग तो हिन्दी का जन्म-स्थान पंजाब को ही मानते हैं। पंजाब में हिन्दी की परंपरा अति प्राचीन है। हिन्दी में जो सन्त संप्रदाय है, उसका गहरा सम्बन्ध पंजाब के साथ जुड़ा हुआ है। नाथों के मूर्धन्य गुरु गोरखनाथ पंजाब के ही थे। पंजाब के नाथ संप्रदाय की भाषा में खड़ी बोली के उदाहरण मिलते हैं। गुरु गोरखनाथ की बहुत-सी रचनाएं हिन्दी में हैं। पंजाबी के आदि कवि बाबा फरीद शकरगंज खड़ी बोली के भी प्रथम कवि माने जाते हैं। हिन्दी के अधिकांश आदिकालीन साहित्य का रचना-स्थल पंजाब ही रहा है। ग्यारहवीं शती के हिन्दी के आदिकालीन कवि अब्दुलरहमान (अद्दहमाण) पंजाब के ही रहने वाले थे। पंजाब में हिन्दी की परंपरा 11वीं शती से मिल जाती है और पंजाब के कवियों ने हिन्दी को भी अपनी वाणी में स्थान दिया है। नाथों की परंपरा से बहुत कुछ लेकर संपूर्ण उत्तर भारत में जिस सन्त काव्य की रचना हुई उसे समन्वित रूप देने का अधिकांश श्रेय पंजाब के सिख गुरु नानकदेव को है। सिख संप्रदाय के प्रवर्तक गुरु नानक जी ने ब्रज, पंजाबी, खड़ी बोली तीनों भाषाओं में कविता की है। गुरु नानकजी की सुप्रसिद्ध रचना 'आरती' की भाषा का 'हिन्दुपन' द्रष्टव्य है :

गगन मे थालु रवि चंदु दीपक बने
तारिका मंडल जनक मोती ॥
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे
सगल वनराइ फूलंतजोती ॥
कैसी आरती होई भवखंडना तेरी आरती
अनहता सबद बाजंत भेरी ॥

गुरु नानक बहुश्रुत थे और उन्होने अनेक बार भारत और भारत के बाहर की यात्रा की। कहा जाता है कि वे जहां-जहा गए उन्होने अपने उपदेश हिन्दी में ही दिए। गुरु नानक के शिष्य और सिखों के गुरु अंगददेव जी (1504-1552 ई०)

का सिख धर्म में बड़ा सम्मानित स्थान है। गुरु अंगद ने ही 'गुरुवाणी' का संकलन किया और शारदा और देवनागरी लिपि का समन्वय करके 'गुरुमुखी' लिपि का आविष्कार किया था। गुरु अंगददेव की रचनाओं में व्रजभाषा का भी पुट है। सिख गुरुओं की रचनाएं 'गुरुग्रन्थ साहिब' में संगृहीत हैं। इन रचनाओं में हिन्दी कही जा सकने वाली रचनाओं की संख्या भी पर्याप्त थी। तीसरे गुरु अमरदास, चौथे गुरु रामदास और पांचवें गुरु अर्जुनदेव जी ने भी अपनी कई वाणियां हिन्दी में लिखी। गुरु अर्जुनदेव के पदों की संख्या देखी जाए तो सूरदास के बाद इनका ही स्थान आता है। इनकी भाषा शुद्ध व्रज थी। इन्होंने कई भाटों और निराश्रित कवियों को भी आश्रय दिया जिन्होंने गुरुओं की प्रशंसा में अनेक हिन्दी कवित्त लिखे। सिखों के अंतिम और दसवें गुरु गोविन्दसिंह जी एक महान कवि और ज्ञानी थे। इन्होंने बहुत-से कवियों को भी राजाश्रय दिया और अनेक ग्रन्थों की रचना करवाई। इनकी अपनी रचनाएं दशम ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। पंजाब के हिन्दी साहित्य में दशम ग्रन्थ एक अद्भुत कृति है। यह ग्रन्थ गुरुमुखी लिपि में है और इसका देवनागरी लिप्यंतरण होना बहुत ही आवश्यक है। गुरु गोविन्दसिंह ने हिन्दी (व्रज), पंजाबी और फारसी भाषाओं मे साहित्य-सृजन किया, लेकिन हिन्दी में किया हुआ उनका सृजनकार्य गुण एवं परिमाण दोनों दृष्टियो से विशिष्ट है। सम्पूर्ण 'दशम ग्रन्थ' मे अधिकांश रचनाएं हिन्दी में हैं। गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में वीर रस की व्यंजना उनके काव्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। रीतिकाल के उस घोर विलासितापूर्ण युग में उन्होंने उच्च आदर्शों से समन्वित ऐसे वीर काव्य का सृजन किया जो शताब्दियों से आच्छन्न निष्क्रियता को छिन्न-भिन्न कर जन-मानस मे नवजागरण का मंत्र फूकने में समर्थ हुआ। इस प्रकार स्पष्ट है कि सभी सिख गुरु हिन्दी के हिमायती थे और उन्होंने हिन्दी में कविता करके उसे व्यापक बनाया। सभी सिख गुरुओं ने विदेशी शासन के अन्याय, अत्याचार एवं अनीति के विरुद्ध जिस सैनिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन का सूत्रपात किया था उसकी अभिव्यक्ति हिन्दी के माध्यम से हुई। इन गुरुओं के अतिरिक्त एक आश्रय-मण्डल भी है जो इन गुरुओं के आश्रय में साहित्य-सृजन में जुटा रहा। गुरु दरबार के आश्रित कवियों में प्रमुख कवि भाई गुरुदास थे जिन्होंने पंजाबी और हिन्दी दोनों भाषाओं में रचना की। व्रज भाषा की कविता में उन्होंने कवित्त और सवैया दोनों छन्दों का प्रयोग किया। भाई गुरुदास की काव्य-रचना को सिख समाज में बड़े आदर और सम्मान से पढ़ा जाता है। गुरु-दरबार के आश्रित कवियों में भट्ट कवि, [illegible], अणिराय हरिकवि विशेष उल्लेखनीय हैं।

मध्ययुगीन पंजाब के हिन्दी साहित्य में कुछ परम्पराएं समानान्तर रूप से विकसित हुईं। इन परम्पराओं में सबसे पुष्ट परम्परा सिख गुरुओं और

शिष्यों की थी। गुरु गोविन्दसिंह के बाद अनेक सिख गुरुओं ने व्रजभाषा में गुरु-इतिहास लिखा। ऐसे कवियों में सर्वप्रथम सन्त सन्तरेण का उल्लेख किया जा सकता है। ये उदासी सम्प्रदाय के सन्त थे। एक दूसरी परम्परा निर्मलपंथी साधुओं की है। निर्मलपंथी साधुओं ने पंजाब के हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशेष योगदान दिया है। निर्मल सम्प्रदाय के कवियों में गुलाबसिंह, सुक्खासिंह आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इस परम्परा में भाई सन्तोषसिंह का स्थान पंजाब के शीर्षस्थ हिन्दी कवियों में ही नहीं, वरन् समस्त हिन्दी जगत् के श्रेष्ठ कवियों में लिया जा सकता है। सन्तोषसिंह की प्रमुख रचना 'गुरु प्रताप सूर्य' है जो पद्मावत और रामचरितमानस की पद्धति पर सिख गुरुओं के जीवन-चरित का वर्णन दोहा-चौपाई पद्धति में करने के लिए रची गई है। व्रजभाषा में सिख-इतिहास लिखने की परम्परा के अंतिम प्रमुख कवि ज्ञानी ज्ञानसिंह थे जिन्होंने हिन्दी और पंजाबी दोनों भाषाओं में साहित्य-रचना की।

भक्ति-साहित्य के क्षेत्र में मध्ययुगीन पंजाब के हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सगुण भक्ति, रामभक्ति और कृष्णभक्ति की भी अपनी एक परम्परा है। सामान्यतः सिख गुरुओं का साहित्य निर्गुण भक्ति-साहित्य है। पंजाब की राम-काव्य परम्परा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाम हृदयराम भल्ला का है। कहा जाता है, जो प्रसिद्धि हिन्दी प्रदेश में तुलसीकृत रामचरितमानस को है वही प्रसिद्धि हृदयराम भल्ला कृत 'हनुमन्नाटक' या 'रामगीत' को पंजाब में प्राप्त है। हिन्दी के बहुत से कवियों को पटियाला दरबार द्वारा आश्रय प्राप्त हुआ। उनमें निहाल कवि, सोहनसिंह मृगेन्द्र, उमादास, बसन्तसिंह, ऋतुराज तथा मैन कवि के नाम उल्लेखनीय है। उनकी अनेकानेक हिन्दी रचनाएं उपलब्ध हुई हैं। इसके अतिरिक्त नाभा, जींद तथा कपूरथला रियासतों के नरेशों ने भी हिन्दी कवियों को आश्रय दिया। उनके दरबारों में भी हिन्दी फली-फूली।[1]

कश्मीर में हिन्दी

प्राचीन काल से ही कश्मीर का सम्बन्ध हिन्दी से रहा है। असंख्य साधु-सन्त भारत के विभिन्न स्थानों से तीर्थयात्रा करने के लिए कश्मीर की यात्रा करते थे। वे हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी में ही कश्मीरियों से बातें करते थे इसलिए कश्मीरीभाषी लोग भी टूटी-फूटी हिन्दी में उनसे बातें कर लेते थे। यही नहीं बल्कि साधु-सन्तों द्वारा गाए जाने वाले गीतों-पदों को (विशेषकर कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि के पदों-गीतों को) सुनकर गाते थे। फलस्वरूप कुछ भावुक और संवेदनशील व्यक्ति हिन्दी में तद्रूप भक्ति-भावना-सिक्त पदों की

1. डा० शिवराज वर्मा : हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास, पृ० 103

रचना करने का अभ्यास करते थे। इस प्रकार यहा के लोगों का हिन्दी से संपर्क बना रहता था। बहुत-से पंजाबी लोग, विशेषकर व्यापारी लोग, यहां आकर व्यापार करते और फिर बाद में यही बस जाते थे। उनका स्थानीय लोगों से मेलजोल बढता रहता था और इस मेलजोल का, व्यापार का माध्यम अधिकतर हिन्दी ही रहता था, इस कारण हिन्दी का यहां शनैः-शनैः प्रचार भी किसी सीमा तक होता रहा। असह्य भीषण शीत के प्रकोप के कारण कश्मीर के श्रमिक मजदूर रोजी-रोटी की तलाश में अन्य प्रदेशों में चले जाते क्योंकि कश्मीर में उन्हें शीतकाल में कोई काम-धन्धा नहीं मिल पाता था। मैदानी प्रदेशों में पहुंचकर ये लोग काफी हिन्दी या हिन्दुस्तानी सीख लेते थे। उनके द्वारा कश्मीर में हिन्दी का प्रचार-व्यवहार किया जाता था। कश्मीर प्राचीन काल में संस्कृत का अध्ययन-केन्द्र रहा। यहां शिवस्वामी, मखंक, बिल्हण, प्रवरसेन, भामह, वामन, उद्भट, रुद्रट, आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त, क्षेमेन्द्र आदि संस्कृत के महान आचार्य हुए हैं। उन्होंने संस्कृत का प्रचार तो किया ही, साथ ही उनके माध्यम से दूसरे प्रान्त के लोगों ने ऐसे ज्ञानागार प्रदेश से बहुत कुछ सीखा। शंकराचार्य ने आकर कश्मीर में शैव मत के प्रचार को अधिकाधिक बल प्रदान किया। अनेक कश्मीरी पंडित हरिद्वार, बनारस आदि तीर्थस्थानों पर जाते थे। उनके माध्यम से यहां हिन्दी के प्रचार मे काफी वृद्धि हुई। अतः धार्मिक, व्यापारिक या आर्थिक कारणों से कश्मीर का सम्पर्क हिन्दी से बहुत पहले ही स्थापित हो चुका था। इन प्रेरक स्रोतों के अतिरिक्त पर्यटन ने भी हिन्दी के व्यवहार में यहां काफी योग दिया और हिन्दी के अनुकूल वातावरण तैयार किया। भारत के अन्य प्रान्तो से पर्यटक यहां सैर करने आते थे। वे प्रायः कश्मीरियों से हिन्दी मे ही बातचीत करते थे। उनके द्वारा प्रयुक्त हिन्दी एक सम्पर्क भाषा का काम करती थी।

कश्मीर के प्रथम शासक शमसुद्दीनशा के समय से हिन्दी के लिए थोड़ा-बहुत आश्रय मिला। सुलतान जैनुल अबीद्दीन स्वयं कश्मीरी के अतिरिक्त फारसी, हिन्दी और तिब्बती भाषाओं का विद्वान था। पड़ोसी भाषा होने के कारण तिब्बती भाषा के प्रति उसका आकर्षण था। उसका हिन्दी सीखने का कारण यह था कि उन दिनों हिन्दी अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार भाषा के रूप में विद्यमान थी। उसके शासनकाल मे अनेक अरबी-फारसी की पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी मे हुआ। जम्मू के वल्लभदेव ने 1572 मे रामचरितमानस का हिन्दी अनुवाद 'तुलसी रामायण' नाम से किया। 1823 में कवि दत्त ने 'वीर विलास' नामक काव्य की रचना ब्रजभाषा मे की। इनके अतिरिक्त कुछ और कवि भी हुए थे जिनमे सुन्दर नाम के कवि ने विराटपर्व नाम की रचना ब्रजभाषा में की है।

बंगाल में हिन्दी

प्राचीनकाल से ही हिन्दी की व्यापक परम्परा बंगाल में पहुंच गई। मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलन के सन्दर्भ में बंगाल के महाप्रभु चैतन्य द्वारा बंगाल और मथुरा-वृन्दावन में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था। महाप्रभु श्री चैतन्य के बाद गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के भक्त के लिए भी वृन्दावन एक बहुत बड़ा तीर्थ माना जाता था। बंगाल के वैष्णव धर्म के अनुयायी प्रायः वृन्दावन आना-जाना करते थे और उनकी पदावलियों में ब्रजभाषा का भी समावेश हुआ। वैष्णवेतर भक्त और सामान्य यात्री भी मथुरा-वृन्दावन की यात्रा प्रेमपूर्वक करते थे। प्रयाग, काशी का आकर्षण भी धार्मिक बंगालियों के लिए कम नहीं था। इस प्रकार हिन्दीभाषी प्रदेश से बंगाल का सम्बन्ध घनिष्ठ रहा है। मैथिली के महाकवि विद्यापति का प्रभाव भी बंगाली कवियों पर बहुत अधिक पड़ा था। विद्यापति की पदावलियों से आकृष्ट होकर बंगला भाषा के कवियों की पदावलियां भी इसी भावना से ओतप्रोत रही थीं। वस्तुतः विद्यापति ने बंगला और हिन्दी को निकट लाने में सेतु का काम किया। बंगाल के वैष्णव कवियों की रचनाओं में हिन्दी (ब्रजभाषा) का केवल आभास ही नहीं बल्कि अनेक कवियों ने बंगला के साथ ब्रजभाषा में भी अपनी रचनाएं की हैं। बंगाल के वैष्णव कवि अपने कीर्तनों में बंगला के पदों के साथ-साथ हिन्दी के पद भी गाया करते थे। बंगाल के जिन वैष्णव कवियों ने ब्रजभाषा में साहित्य की रचना की, उनमें गोपाल भट्ट या गोपालदास, कृष्णदास, परमानन्द, रघुनाथदास, घनश्यामदास, नरहरिदास चक्रवर्ती, गोकुलदास कविराज, ठाकुर और नसीर मामूद आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। सत्रहवीं शती के नरहरिदास ने भी ब्रजभाषा में महत्त्वपूर्ण रचनाएं की हैं।

मुगल शासन की स्थापना के बाद उत्तर भारत से फौजी सिपाही, व्यापारी, सूफी सन्त और इस्लाम धर्म-प्रचारक बंगाल में आते-जाते रहते थे। मध्ययुग का उत्तर भारत में रचित सूफी काव्य बहुत ही प्रचलित रहा और उसका व्यापक प्रभाव बंगाल के सिलहट, चटगांव और ढाका आदि नगरों पर भी पड़ा। सूफी काव्यों की भाषा अवधी का भी प्रभाव बंगाल पर पड़ा। कहा जाता है, शाह जलाल और उनके अनुचरों ने चौदहवीं शती के प्रथम दशक में बंगाल के विविध स्थानों में सूफी साहित्य और अवधी भाषा का प्रचार किया। बंगाल में सूफियों के द्वारा प्रचारित अवधी भाषा का नाम 'गोहारी' या 'गोआरी' था। पूर्वी बंगाल के मुसलमान लोग अपने धार्मिक साहित्य के अंग के रूप में इस 'गोहारी'

भाषा में काव्य-पाठ भी करते थे।[1] बहुत-से बंगाली मुसलमान कवियों ने इस अवधी-प्रभावित 'गोहारी' में काव्य रचना भी की। उनमें दौलत काज़ी और सैयद आला ओल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सैयद आला ओल ने हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' के आधार पर इसी 'गोहारी' भाषा में 'पद्मावती' की रचना की थी। इनके अलावा और भी कवि हुए हैं जिन्होंने सूफी साहित्य के आधार पर इस भाषा में रचनाएं कीं।

जब मुगल शासन का विस्तार हुआ तब दिल्ली की भाषा का भी प्रचलन बंगाल, बिहार और उड़ीसा में होने लगा। जो मुसलमान शासक और जन-साधारण पंजाब, दिल्ली और उत्तरप्रदेश से बंगाल गए थे, वे भी अपने साथ हिन्दी को भी ले गए थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बंगाल ने हिन्दी को व्यापक बनाने में 16वीं, 17वीं और 18वीं शती में भी पूरा योग दिया था। आधुनिक काल में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के आन्दोलन की बुलन्द आवाज़ बंगाल में उठी थी। बंगाल के अनेक नेताओं, साहित्यकारों और कवियों ने हिन्दी का समर्थन किया। सर्वश्री तरुणीचरण मित्र, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजनारायण बसु, भूदेव मुखोपाध्याय, केशवचन्द्र सेन, बंकिमचन्द्र चटर्जी, आचार्य क्षितिमोहन सेन और डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या और बंगाल के गण्य-मान्य व्यक्ति हिन्दी के समर्थक, उन्नायक और प्रचारक रहे हैं।

उड़ीसा में हिन्दी

हिन्दी-प्रदेश और उत्कल का सम्बन्ध पुराना है। मध्यकाल में भक्ति का प्राधान्य था और भाषा आदि के भेद की कोई सीमा नहीं थी, तब मथुरा, वृन्दावन और काशी के साथ-साथ जगन्नाथपुरी का भी बहुत अधिक महत्व रहा। बारहवीं शती में रामानुजाचार्य द्वारा पुरी में वैष्णवीय मठ की स्थापना और वैष्णव भक्ति का प्रचार शुरू हुआ। सोलहवीं शती में चैतन्य महाप्रभु तीर्थाटन के लिए पुरी आए और उनके द्वारा संकीर्तन की परम्परा उत्कल में जनप्रिय होने लगी। उत्कल के लोग वृन्दावन जाया करते थे और ब्रजभाषा में काव्य-रचना करने में भी गौरव समझते थे। इस प्रकार ब्रजशैली का प्रचलन उड़ीसा में हुआ। 15वीं शताब्दी के राय रामानन्द पट्टनायक ने संस्कृत, उड़िया और ब्रजभाषा मे बहुत-सी रचनाएं की थीं। इनके ब्रजभाषा में रचित गीत आज भी उड़ीसा के साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। ब्रजभाषा मे काव्य-रचना करने वाले उड़ीसा के भक्ति कवियों में राजकवि प्रताप रुद्रदेव, दामोदर चम्पतिराय, श्री जगन्नाथ दास, दीनकृष्णदास, बलरामदास, अनन्तदास,

1. रजत जयन्ती ग्रन्थ : बंगाल की हिन्दी को देन, सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० 215

उद्धवदास, दिव्यसिंह आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। मुगलों के शासनकाल में श्री वंशी वल्लभ मिश्र ने अनेक हिन्दी-पद लिखे थे। इन्होंने फारसी में अनेक लोक-नाट्य भी लिखे है।

उड़ीसा में मुसलमानों के शासनकाल में राजभाषा के रूप में फारसी प्रतिष्ठित थी, लेकिन उत्तर भारतीय सिपाही जो उड़ीसा मे आकर बस गए थे, उनके बीच मे हिन्दी का प्रचलन था। उड़ीसा में जब मराठों का राज्य स्थापित हुआ तब भी वहां फारसी, उड़िया और मराठी के साथ-साथ हिन्दी का भी प्रचलन रहा। इस प्रकार उड़ीसा में भी शताब्दियों के पहले हिन्दी को स्थान मिला।

गुजरात में हिन्दी

गुजरात और हिन्दी-प्रदेश का बहुत ही निकट का सम्बन्ध रहा है। एक तो हिन्दीभाषी प्रदेश का निकटवर्ती प्रदेश होने के कारण, दूसरे वल्लभ संप्रदाय, स्वामीनारायण संप्रदाय, जैन धर्म और संत मत के व्यापक प्रभाव के कारण और तीसरे गुजरात के मुसलमान बादशाहों और राजपूत राजाओं के हिन्दी-प्रेम के कारण गुजरात के अंचल मे कई शताब्दियों के पहले हिन्दी को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिला था। 15वीं शताब्दी से लेकर आज तक के गुजरात के अंचल मे प्राप्त हिन्दी साहित्य का अवलोकन करने से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि गुजरात सदा से ही हिन्दी का समर्थक और केन्द्र रहा है। गुजरात मे हिन्दी की व्यापकता को सूचित करने के लिए गुजरात में रचित उस विपुल हिन्दी साहित्य पर दृष्टि डालना पर्याप्त है जिसका प्रणयन विभिन्न स्रोतों से हुआ है।

गुजरात मे वैष्णव धर्म के व्यापक प्रचार का श्रेय वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी को है जिन्होने गुजरात मे अनेक यात्राएं की और गुजरात की जनता को वल्लभ संप्रदाय से आकृष्ट किया। ब्रजभाषा मे रचना करने वाले वैष्णवों की परम्परा गुजरात में भाळन से प्रारम्भ होती है। (1481 ई० के आसपास) भाळन ने ब्रजभाषा मे कई पद रचे थे। भाळन के बाद केशवदास कायस्थ (1536 ई०) के गुजराती ग्रन्थ 'कृष्णलीला काव्य' मे ब्रजभाषा की फुटकर रचनाएं मिलती है। इनके बाद गुजराती के सुप्रसिद्ध कवि नरसिंह मेहता की भी स्फुट हिन्दी रचनाएं मिलती हैं। गुजरात के वैष्णव कवियों की परम्परा मे सुप्रसिद्ध कवि बैजू बावरा और अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि कृष्णदास अधिकारी भी उल्लेखनीय है। इस परम्परा में मुगुन्द मुगली (1652 ई०) ने हिन्दी में 'कबीर चरित्र' की रचना की। श्री श्रीकमदास ने 'डाकोर लीला' और 'रुक्मिणी हरण' नामक प्रबन्धकाव्य और 160 के लगभग स्फुट पदों की रचना ब्रजभाषा में

की है। इन वैष्णव कवियों में दयाराम सर्वश्रेष्ठ कवि हैं जिन्होने ब्रजभाषा में 41 ग्रन्थ और 12,000 स्फुट पदों की रचनाएं की हैं।[1] इनकी रचनाएं उच्च-कोटि की हैं।

वल्लभ संप्रदाय के पश्चात् गुजरात के स्वामीनारायण सम्प्रदाय के कवियों के द्वारा हिन्दी में रचनाएं प्रस्तुत की गईं। समाज-सुधार की दृष्टि से यह संप्रदाय संगठित हुआ, जिसके सभी सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों से मोर्चा लिया। इस सम्प्रदाय के सहजानन्द स्वामी की प्रेरणा से इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत संस्कृत, गुजराती और हिन्दी ने अनेक कवि हुए। इन कवियों मे से हिन्दी में कविता करने वाले प्रमुख कवि मुक्तानन्द, ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द, निष्कुलानन्द, भूमानन्द और देवानन्द हैं। ये सभी कवि संगीत के जानकार थे और इन सभीने हिन्दी में नीति, वैराग्य और कृष्णभक्ति विषयक सरस, सुमधुर एवं बोधप्रद पदों की रचना की है। वल्लभाचार्यजी के 'अष्टछाप' की भांति सहजानन्द के अष्टसखा भी भक्ति-भावना और हिन्दी काव्य-प्रतिभा की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन आठ कवियों में से मुक्तानन्द, ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्द की त्रिपुटि बहुत ही प्रखर एवं प्रतिभाशाली है। इस सम्प्रदाय के दूसरे प्रमुख कवियों में स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी प्रेमानन्द ने ब्रजभाषा में अनेक पद लिखे हैं। कहा जाता है कि प्रेमानन्द स्वामी ने ब्रजभाषा मे 7,000 पदों की रचना की है।

वैष्णव भक्तों की तरह गुजरात के निर्गुण मतावलम्बी ज्ञानमार्गी सन्तो ने भी हिन्दी में कविता की है। गुजरात की सन्त-परम्परा हिन्दी-प्रदेश की ही सन्त-परम्परा की एक कड़ी है। गुजरात मे कबीरपन्थी के अतिरिक्त दादू, रामानन्दी प्रणामी आदि पन्थों का भी प्रचलन रहा है। इन सभी पन्थों के अनुयायी सन्तों ने जनता को सधुक्कड़ी वाणी मे उपदेश दिया है। गुजरात के सन्तों की लम्बी परम्परा में दादू, प्राणनाथ, भाणदास, छोटम, दीनदर्वेश, अर्जुन, अनवर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।[2]

इनमें अधिक प्रसिद्ध सन्त दादू और प्राणनाथ हैं। इन सन्तों ने हिन्दी मे पद और साखियां लिखी है। सभी सन्तों का विस्तृत परिचय यहां असम्भव है। इतना स्पष्ट है कि गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी बहुत ही गहन, गम्भीर और बोधप्रद है। इन सन्तों ने आज से सदियों पहले गांव-गांव और घर-घर पहुंचकर अहिन्दीभाषी प्रदेशो मे हिन्दी का अलख जगाया था। हिन्दी को अपनी वाणी का माध्यम बनाकर गुजरात के इन सन्त कवियों ने उसके प्रचार और प्रसार में निःसन्देह अभूतपूर्व योग दिया है।

1. हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रदेशो की देन, अम्बाशंकर नागर, पृ० 232
2. गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी, संपादक डा० अम्बाशंकर नागर

गुजरात जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र रहा है। गुजरात में जैनियों के अनेक तीर्थ और सिद्धक्षेत्र हैं। जैन धर्म के इस प्रचार और प्रसार के कारण जैन कवियों के द्वारा अपभ्रंश मे और सत्रहवी शती के बाद ब्रजभाषा और खड़ी बोली मे पदों की रचना हुई। गुजरात के हिन्दी-सेवी जैन कवियों में आनन्दघन, ज्ञानानन्द, विनय-विजय, यशोविजय और किशनदास प्रमुख हैं।

गुजरात के सूफी सन्तों ने जिस गूजरी भाषा में अपनी रचनाएं प्रस्तुत की हैं, वे हिन्दी के बहुत निकट हैं। कुछ विद्वानो ने गलती से इसको उर्दू माना था। उर्दू तो बहुत बाद की भाषा है। गूजरी-हिन्दी, हिन्दवी और दक्खिनी के बीच की कड़ी और दक्खिनी का पूर्वरूप है। गुजरात मे गूजरी की इस सूफी साहित्य-साधना का प्रारम्भ शेख अहमद खट्टू और बुर्हानुद्दीन कुतबे आलम बुखारी (1344-1453) से माना जा सकता है। इनके अतिरिक्त शाह आलम, शेख बहाबुद्दीन, बज्जन, शाह अली, गांधनी, मियां खूब मोहम्मद चिश्ती, बाबाशाह हुसैनी, ईशा चिश्ती, सैयद पीर मशाईख चिश्ती, शेख मुहम्मद अमीन आदि अनेक सूफी सन्त और कवि गुजरात मे हुए जिन्होंने मसनवियां, ऐतिहासिक कृतियां और स्फुट रचनाएं गूजरी मे की है।

गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ के राजाओं ने भी हिन्दी को आश्रय देकर बहुत-से कवियों को प्रोत्साहित किया। इन राजाओं के दरबारों मे हिन्दी कवियों का विशेष आदर होता था। गुजरात के राजाओं ने हिन्दी कवियों को आश्रय देने और हिन्दी सीखने की सुविधाएं प्रदान करने के साथ-साथ स्वयं भी हिन्दी में कविताएं की थी। राजकोट के राजा कुमार मेहरामठासिंह, सौराष्ट्र के झाला राजा अमरसिंहजी, रणमलसिंहजी और मानसिंहजी और कच्छ के महराव लखपतजी ने हिन्दी में सुन्दर काव्यों की रचना की है। गुजरात के राजघरानों मे से काकरेची ठकुरानी हरीजी रानी, चावड़ीजी और जामसुता प्रतापबाला की भी हिन्दी रचनाएं प्राप्त हुई हैं। डा० अम्बाशंकर नागर ने अपने शोध प्रबन्ध 'गुजरात की हिन्दी सेवा' मे गुजरात के हिन्दी-सेवी कवियो और लेखकों के 809 नाम गिनाए हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात ने भी हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि मे अपना अमूल्य योगदान किया है और हिन्दी की व्यापकता का समर्थन किया है।

महाराष्ट्र में हिन्दी

महाराष्ट्र में हिन्दी की परम्परा बहुत ही प्राचीन है। मराठी भाषा की लिपि भी देवनागरी है। महाराष्ट्र के सन्तों ने भी अन्य भारतीय सन्तो की तरह हिन्दी को अपनी वाणी का अमृतपान कराया। महाराष्ट्र के इन सन्तों का हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में तथा हिन्दी क्षेत्रों के सन्तो का महाराष्ट्र मे आना-जाना प्राचीन-

काल से ही चला आ रहा है। उन सभीने किसी न किसी रूप मे हिन्दी द्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति की। मराठी सन्त सदा से ही हिन्दी के प्रति सहज रूप से आकर्षित रहे हैं।

उत्तर भारत का नाथ सम्प्रदाय जब महाराष्ट्र में आया तब उसने मराठी की बोली को भी अपनाया। किन्तु उनके मुख्यतः उपदेश हिन्दी मे ही होते थे इसलिए "महाराष्ट्र के नाथ-पन्थियों को अपने गुरुओं के हिन्दी भाषा मे रचित ग्रन्थ पढ़ने की सहज उत्कण्ठा रही होगी। इस बहाने उन्होने हिन्दी से परिचय प्राप्त किया होगा।"[1] महाराष्ट्र में हिन्दी की परम्परा महानुभाव सम्प्रदाय से प्रारम्भ होती है। महानुभाव सम्प्रदाय के सन्तो ने लोकभाषा के माध्यम से अपने उपदेशों का प्रचार किया। महानुभाव सम्प्रदाय के संस्थापक चक्रधर स्वामी के कुछ पद हिन्दी में मिलते हैं। इनकी शिष्या महदम्बा और महदाईसा परिष्कृत हिन्दी में पद गाती थी। इस सम्प्रदाय के दामोदर पण्डित बड़े गायक थे, पर उन्होंने हिन्दी में विविध राग-रागिनियों मे कविता की है।

महाराष्ट्र के इतिहास मे वारकरी सम्प्रदाय का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सम्प्रदाय के सन्तों की परम्परा काफी लम्बी है, जिनमें सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, सोपानदेव, मुक्ताभाई आदि अधिक प्रमुख हैं। सन्त ज्ञानेश्वर की लिखी श्रीमद्भागवत की ज्ञानेश्वरी टीका उत्कृष्टतम रचना है। सन्त ज्ञानेश्वर ने हिन्दी मे अनेक पद लिखे हैं। वारकरी पन्थ के सन्त एकनाथ ने अन्य मराठी सन्तों के समान हिन्दी में भी रचनाएं की हैं। सन्त तुकाराम का भी अपना विशिष्ट स्थान है, जिन्होने हिन्दी में अनेक पद लिखे हैं। डा० विनयमोहन शर्मा ने हिन्दी के प्रति महाराष्ट्रीय सन्तों की आस्था को व्यक्त करने के लिए इस प्रकार लिखा है—"वहां के सन्त जब हाथ मे करताल लेकर कीर्तन-भजन करने लगते, तब बीच-बीच मे एक-दो पद हिन्दी के गाकर श्रोताओं में अभिनव हिलोरें पैदा कर देते थे।"[2] 18वीं शती में कई महाराष्ट्रीय संतों ने हिन्दी में रचना की, जिनमे से कुछ नाम हैं—जन जयवंत, मध्वमुनीश्वर, अमृत राय, सातपुरी, ठाकुर बाबा, निरंजन रघुनाथ इत्यादि। मध्ययुग मे सन्त-कवियों के बाद पन्त-कवि या 'पंडित कवि' और 'तन्त कवि' (शाहीर और लवणीकार) आए। उनकी कई फुटकर रचनाएं हिन्दी मे मिलती हैं।

महाराष्ट्र में मराठो के शासनकाल मे मराठी भाषा का बहुत विकास हुआ और फारसी के स्थान पर वह उनके राज्य की राजभाषा बनी। मराठी के साथ-साथ मराठा शासकों ने हिन्दी को भी प्रोत्साहन दिया। शिवाजी के पिता

1. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, डा० विनयमोहन शर्मा, पृ० 49
2. वही, पृ० 142

श्री शाहजी के दरबार में 500 कवि रहा करते थे, जिनमें अनेक कवि हिन्दी के भी ज्ञाता थे। शिवाजी स्वयं हिन्दी के कवियों को आश्रय देते थे। हिन्दी के महाकवि भूषण का शिवाजी के दरबार में राजाश्रय प्राप्त करना बहुत ही प्रसिद्ध है। शिवाजी के पुत्र शम्भा जी भी हिन्दी में कविता किया करते थे। इससे यही स्पष्ट है कि मराठा कवियों ने हिन्दी को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। उनके शासन-काल में अनेक मराठीभाषी सन्तों की वाणियां मिलती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराष्ट्र प्रारम्भ से ही हिन्दी का अनन्य समर्थक और प्रचारक रहा है।

दक्षिण भारत में हिन्दी

हिन्दी-प्रदेश के निकटवर्ती क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचलन कई शताब्दियों के पहले से ही हुआ है। सुदूर दक्षिण के प्रान्तों में भी शताब्दियों के पहले ही हिन्दी की व्यापकता के अनेक प्रमाण मिल जाते हैं। इसके कई कारण हैं। प्रमुख रूप से साधु और सन्त तीर्थाटक तथा व्यापारी वर्ग के द्वारा हिन्दी दक्षिण के कोने-कोने में भी पहुंच गई।

केरल के प्रमुख बन्दरगाहों और व्यापार केन्द्रों में वर्षों पहले से ही उत्तर भारत से मारवाड़ी, गुजराती और मुसलमान लोग व्यापार के लिए आते-जाते रहते थे। उनमें से कुछ लोग केरल में बस भी गए हैं। वे अपनी टूटी-फूटी भाषा तथा मिश्रित हिन्दुस्तानी में यहां के लोगों से बातचीत करते थे। उनके साथ रोजमर्रा की बातचीत की जरूरत पड़ी तो उन व्यापार-केन्द्रों और बन्दरगाहों के लोग भी हिन्दुस्तानी सीखने लगे। इन केन्द्रों में एक तरह की खिचड़ी हिन्दुस्तानी का व्यवहार होता रहा। जब हैदरअली और टीपू सुलतान ने केरल के प्रदेशों पर चढ़ाई की तो उनके कारण वहां थोड़ी-बहुत मात्रा में उर्दू का भी प्रचलन हुआ था। 'मुसलमानों की भाषा' के अर्थ में उस समय लोग हिन्दी को 'तुर्क भाषा' कहने लगे। सैकड़ों अरबी और फारसी के शब्द उर्दू के प्रचलन के फलस्वरूप दक्षिणी भाषाओं में धीरे-धीरे घुलमिल गए, जो आज भी अपने तत्सम और तद्भव रूपों में उन भाषाओं में प्रचलित हैं। कई शब्द ऐसे भी हैं जो इन दिनों अपने मौलिक अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ मलयालम में प्रयुक्त होने वाले सैकड़ों फारसी और अरबी के शब्द लिए जा सकते हैं।

मलयालम साहित्य में हिन्दुस्तानी का प्रयोग पाया जाता है। मलयालम के प्रसिद्ध प्राचीन कवि हास्य-सम्राट् स्वर्गीय कुंचन नंबियार की 'तुल्लल कथा' (कथा-नाट्य) की रचना में कहीं-कहीं हिन्दुस्तानी के वाक्यों का प्रयोग पाया जाता है। केरल के तिरुवितांकूर और कोचीन के राजवंशों के लोग संगीत, कला और साहित्य में बड़ी रुचि रखते थे और दूर-दूर से विद्वानों को अपने दरबार में बुलाकर

सम्मानित करते थे। ऐसे हिन्दीभाषी विद्वानों के सम्पर्क में आने के कारण राजघराने के लोगों को हिन्दी का ज्ञान स्वाभाविक ढंग से प्राप्त हो जाता था। केरल के प्रसिद्ध राजा स्व० स्वाति तिरुनाल महाराजा ने हिन्दी में कई मधुर पद रचे हैं। अभी तक उनके हिन्दी में रचित 37 गीत मिले हैं जो भक्तिपरक हैं। स्वाति तिरुनाल के इन हिन्दी गीतों का बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है। इन गीतों में मुख्य रूप से ब्रजभाषा का ही प्रयोग है, फिर भी दक्खिनी हिन्दी और खड़ी बोली का भी पुट उनकी भाषा में मिलता है। केरल में हिन्दी की व्यापकता के सन्दर्भ में केरल के उन दक्खिनी मुसलमानों का भी उल्लेख अनिवार्य है, जिनके पूर्वज प्रमुख रूप से दक्खिन के मुस्लिम राज्यों से केरल में आकर बस गए थे। अठारहवीं, उन्नीसवीं शताब्दियों में दक्खिनी के व्यावहारिक रूप हिन्दी से केरल का विशेष सम्बन्ध बना था। दक्खिनी मुसलमानों के बीच कई कवि भी हुए थे, जिनकी अधिकांश रचनाएं अब नष्ट हो चुकी हैं। कहा जाता है कि उन्नीसवीं शती में तिरुवनन्तपुरम के सखरखां और अब्दुल खलील हजरत सूफी गीतकार थे। कण्णूर के 'अतहर' और तलश्शेरी के खासिम खां भी बड़े सरस कवि बताए जाते हैं।

उपर्युक्त इन बातों से यह सिद्ध होता है कि केरल में हिन्दी या हिन्दुस्तानी का प्रवेश वर्षों पूर्व ही हो चुका था। धार्मिक, सांस्कृतिक तथा व्यावहारिक क्षेत्रों में उसका उपयोग-प्रचार स्वाभाविक ही था।

कर्नाटक और हिन्दी-प्रदेश के बीच हजारों वर्ष का सम्बन्ध रहा है। यह सम्बन्ध राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आधारों पर रहा है। मुहम्मद बिन तुगलक ने जब देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया तब उनके साथ दिल्ली से काफी संख्या में लोग आए। उनके कारण दक्खिनी नामक एक अलग भाषा का निर्माण हुआ।

दक्खिनी को रूप देने वालों में गुलबर्गा, बीदर और बीजापुर के बादशाह अग्रगण्य हैं। बीजापुर के अली आदिलशाह द्वितीय ने (1763 ई०) स्वयं हिन्दी-काव्य रचे और अनेकों दक्खिनी कवियों को आश्रय दिया।

उर्दू के प्रथम कवि कुली कुतुबशाह अली कर्नाटक के बीजापुर के थे, किन्तु इनसे भी पहले यहां के कई हिन्दुओं ने दक्खिनी हिन्दी मे काव्य-सर्जना की है। ये शोलापुर की समीप 'वडवाल' नामक ग्राम में रहते थे। वहां के तत्कालीन सन्त सिद्ध नागेश आपके गुरु थे। ये सूफी सन्तों से विशेष प्रभावित थे। दिल्ली के नसीरुद्दीन चिराग को भी ये अपना गुरु मानते थे। दक्खिनी के विकास मे मुसलमानों का ही विशेष हाथ रहा है और इनमे भी बहुत-से लोग कर्नाटक के थे। इनमें प्रमुख हैं गुलबर्गा के बंदेनवाज, बीजापुर के नुसरती, मीर हाशिमी बीजापुरी, कादिर बीजापुरी आदि।

कर्नाटक के कुछ सन्तों ने भी कन्नड़ के अतिरिक्त हिन्दी में अनेक पद रचे हैं। ऐसे प्रमुख सन्त कवियों में महीपती, कृष्णराय, रुकमांगत पंडित, लक्ष्मीपति विशेष उल्लेखनीय हैं। ये भक्त कवि सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के थे। दत्त संप्रदाय (जिसकी शाखाएं कर्नाटक और महाराष्ट्र में हैं) के कई महानुभावों ने हिन्दी और मराठी में पद-रचना की है जिनमें श्री मनोहर माणिक प्रभु, मार्तण्ड माणिक प्रभु आदि ने हिन्दी में सुन्दर पद-रचना की है। इनके अलावा हिन्दी में साहित्य रचने वाले कवियों में तिप्पणार्य, अण्णवधूत और शिशुनाल शरीफ विशेष उल्लेखनीय हैं।

आन्ध्रप्रदेश से हिन्दी का बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है। पुष्टिमार्ग के आचार्य श्री वल्लभ आन्ध्र के ही थे। वल्लभाचार्य ने स्वयं और दूसरे कवियों को प्रेरणा देकर हिन्दी की जो सेवा की है वह सर्वविदित है। वल्लभाचार्य के बाद पद्मभास्कर और लाल कवि के नाम लिए जाते हैं जो रीतिकालीन कवियों में भाषा के विचार से प्रौढ़ माने जाते हैं। ये आन्ध्र के ही थे। कई आन्ध्रवासियों ने 17वीं, 18वीं और 19वीं शतियों में हिन्दी में रचनाएं प्रस्तुत की हैं। कहा जाता है कि श्री नादल्ल पुरुषोत्तम कवि ने हिन्दुस्तानी में 32 नाटकों की रचना की है। श्री पुरुषोत्तमजी के अतिरिक्त 19वीं शती के अन्तिम दशकों में हिन्दी में नाटकों की रचना करने वाले और उन हिन्दी नाटकों का अभिनय करने वाले अनेक आन्ध्रवासियों के विवरण मिलते हैं।

हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि दक्षिण में (वर्तमान आन्ध्रप्रदेश में) चौदहवीं शताब्दी में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण उत्तर भारत के एक बड़े जनसमूह ने उत्तर को छोड़कर हैदराबाद को अपना आवास बनाया। इनमें व्यापारी, सरकारी कर्मचारी और सेना के लोग अधिक थे। इनके साथ फारसी और हिन्दवी भाषा भी दक्षिण में आई। 1347 ई० में दक्षिण के मुसलमान सरदारों ने दिल्ली साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया और हसन गंग के नेतृत्व में गुलबर्गा में बहमनी वंश की स्थापना हुई। बहमनी वंश के महामंत्री गंगू ब्राह्मण ने दक्खिनी भाषा को राजभाषा बनाया। वस्तुतः, यह उत्तर भारत की बोली थी जिसका विकास दक्षिण में हुआ था, जिसपर दक्षिण की भाषाओं का भी प्रभाव था। बहमनी वंश के राज्य में दक्खिनी भाषा बोली तथा समझी जाती थी। वह एक प्रकार की सामान्य भाषा थी, इसलिए शासन उसको राजभाषा का पद देने में विवश हो गया था। प्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ता ने लिखा है कि बहमनी राज्य के दफ्तरों में हिन्दी जबान प्रचलित थी और सल्तनत ने उसे सरकारी जबान का पद दे रखा था। बहमनी राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने पर भी हिन्दी

का यह पद उत्तराधिकारी रियासतों ने कायम रखा।[1]

15वीं शती के उत्तरार्द्ध में बहमनी वंश के कमजोर पड़ने पर वह साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। परिणामतः बीजापुर में आदिलशाही, बरार में इमादशाही, अहमदनगर में निजामशाही, गोलगुण्डा में कुतुबशाही तथा बीदर में बरीदशाही की सल्तनतें स्थापित हुई। इन राज्यों ने भी हिन्दी को अपनाया, हिन्दी के कवियों तथा लेखकों को प्रश्रय दिया। बीजापुर के शासकों ने दक्खिनी हिन्दी को ही अपनी राजभाषा बनाया। इस प्रकार 16वीं शती के प्रारंभ तक दक्खिनी दक्षिण के राजाओं तथा प्रजा की भाषा बन गई। सभी दक्खिनी सल्तनतों ने दक्खिनी साहित्य की अभिवृद्धि में पूरा-पूरा योग दिया। पन्द्रहवीं से सत्रहवीं शती तक दक्षिण के कवियों द्वारा उच्चकोटि का साहित्य लिखा गया, जो हिन्दी की अमरनिधि माना जाता है। दक्खिनी हिन्दी के प्रारंभिक कवियों मे बन्देनवाज गेसूदराज मुहम्मद हुसैनी (1318-1422 ई०) तथा बहमनी राज्य के सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थकार निज़ामी (1460-62 ई०) के नाम आते है। दक्खिनी हिन्दी का साहित्य बीजापुर के आदिलशाही राज्य और गोलकुण्डा के कुतुबशाही राज्य में पर्याप्त समृद्ध हुआ। उन कवियों मे वजही गवासी, इब्न निशाती, गुलाम अली, शाह मीराजी, बुरहानुद्दीन जानिम तथा सनाती आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[2]

यह अफसोस की बात है कि हिन्दी साहित्येतिहास ग्रन्थों में दक्खिनी हिन्दी मे रचित हिन्दी साहित्य को विशेष महत्व नहीं दिया गया है। हिन्दी-भाषी विद्वानों में बहुत-से विद्वानों ने इस साहित्य की बड़ी उपेक्षा की है। दक्खिनी हिन्दी केवल साहित्य की ही भाषा नहीं, बोलचाल की भी भाषा रही। अहिन्दी-प्रदेश में रचित हिन्दी साहित्य का बहुत अधिक महत्त्व है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के समय के कई शताब्दी पहले ही हिन्दी किसी न किसी रूप में देश के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त रही है।

अहिन्दीभाषी प्रदेशों में हिन्दी की विभिन्न भाषा-शैलियों का प्रयोग प्राचीनकाल में भी होता था। ब्रजभाषा कृष्णभक्ति का सहारा लेकर पूर्व मे बंगाल, पश्चिम में गुजरात और दक्षिण में केरल तक पहुंच गई थी। अवधी को रामभक्त कवियों और सन्तों का आश्रय मिला था। खड़ी बोली को निर्गुण सन्तों और मुसलमान शासको का प्रश्रय मिला था। इस प्रकार हिन्दी अपने विभिन्न रूपों को लेकर साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दीतर प्रदेशों में भी

1. बाबूराम सक्सेना : दक्खिनी हिन्दी, पृ० 34
2. डा० शिवराज वर्मा : हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास, पृष्ठ 120

व्यापक रही। इन अहिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों में बोलचाल एवं कहीं-कहीं आंशिक रूप से सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में भी हिन्दी व्यवहार में रही है। इस प्रकार हिन्दी एक सार्वदेशिक भाषा के रूप में पूरे देश में फैल सकी और अपने इन्द्रधनुषी विविध रूपों को लेकर सर्वसम्मत जनभाषा के रूप में लोकप्रियता हासिल कर सकी है।

3

स्वातंत्र्य-संग्राम और राष्ट्रभाषा का संघर्ष

अंग्रेजी शासन का प्रारंभ और अंग्रेजों की भाषा-नीति

इंग्लैण्ड की ईस्ट इंडिया कंपनी ने किस प्रकार व्यापारिक उद्देश्य से भारत में प्रवेश किया, यह सर्वविदित है। उस समय मुगल सम्राट् पूर्ण अर्थों में सम्राट् थे, अतः यहां की राजनीति में अंग्रेजों का कोई हाथ न होना स्वाभाविक था। लन्दन के जिन व्यापारियों ने सन् 1600 ई० में महारानी एलिज़ाबेथ से भारत में व्यापार करने की अनुमति मांगी, उन्होंने स्वप्न में भी यह न सोचा होगा कि वे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाल रहे थे। क्रमशः ईस्ट इंडिया कंपनी की शक्ति बढ़ती गई। सूरत, आगरा, अहमदाबाद तथा ब्रोच में फैक्टरियां स्थापित हो गईं। बंबई चार्ल्स द्वितीय को विवाह में दहेज के रूप में मिला जो कंपनी को दे दिया गया। सन् 1661 से 1683 के बीच चार्ल्स द्वितीय से कंपनी को 5 चार्टर प्राप्त हुए जिनसे कंपनी व्यापारिक संस्था से भौमिक शक्ति बन गई। कंपनी को कालांतर में सेना-संचालन, युद्ध और संधि करने तथा सिक्के बनाने का अधिकार भी मिल गया। नवीन नीति में कंपनी का ध्येय व्यापारिक उन्नति के साथ-साथ मालगुज़ारी बढ़ाना भी हो गया। अंग्रेजों का उद्देश्य भारत के शासन और व्यापार दोनों को हस्तगत करना था।

सन् 1709 से 1765 तक के काल में ईस्ट इंडिया कंपनी ने अनेक व्यापारिक सफलताएं प्राप्त कीं। क्योंकि इन दिनों भारत की राजनीतिक स्थिति ठीक नहीं थी, इसलिए इस कंपनी ने इसका अनुचित लाभ उठाया तथा आर्थिक लाभ की दृष्टि से अनेक व्यापारिक बस्तियां स्थापित कीं। सारे देश को तीन प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों—बंबई, मद्रास और कलकत्ता में विभक्त कर दिया। इन्हीं दिनों इस कंपनी को फ्रांसीसी कंपनी से काफी संघर्ष भी करना पड़ा तथा अंग्रेजों व फ्रांसीसियों के बीच कर्नाटक में तीन युद्ध हुए। इन युद्धों के बाद अंग्रेजों का भारत में राजनीतिक अस्तित्व दृढ़ हो गया। सन् 1757 ई० में बंगाल पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इसके बाद सन् 1764 में बक्सर के युद्ध में भी अंग्रेजों को ही विजय प्राप्त हुई। इसके बाद कंपनी ने उक्त क्षेत्रों के शासन-सम्बन्धी अधिकार भी अपने हाथ में ले लिए। इससे कंपनी का व्यापारिक रूप ही बदल गया। भारत के दुर्भाग्य को इससे एक नया मोड़ मिला।

कर्नाटक के युद्ध के बाद भारत का दक्षिणी भाग भी अंग्रेजों के प्रभुत्व में आ गया था। सन् 1799 ई० में मैसूर के शासक टीपू सुलतान को तथा 1818 ई०

में मराठों को भी अंग्रेजों ने पराजित कर दिया। इस प्रकार एक व्यापारिक कंपनी भारत की शासक बन बैठी तथा इससे भारत में ब्रिटिश राज्य की नींव पड़ी।

देश में कंपनी का महत्व दिनोंदिन बढ़ता गया तथा सन् 1833 ई० तक तो कंपनी की स्थिति अतीव सुदृढ़ हो गई। इसी वर्ष इंग्लैण्ड की संसद ने एक चार्टर अधिनियम पारित किया। उसके अनुसार भारत के शासन में अनेक सुधार हुए। सन् 1853 ई० तक कंपनी ने युद्ध, राज्यविस्तार, शासन-सुधार तथा अन्य सार्वजनिक हित के अनेक कार्य किए।

सन् 1853 में लार्ड डलहौजी के बाद लार्ड कैनिंग भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी का वह अन्तिम गवर्नर जनरल था। उन दिनों लार्ड डलहौजी की विस्तार-नीति के कारण देश की राजनीतिक स्थिति पर्याप्त डांवाडोल हो चुकी थी। उसके शासनकाल में देश की सामाजिक दशा भी बड़ी शोचनीय हो गई थी। कट्टर हिन्दुओं को विश्वास हो गया था कि लार्ड कैनिंग को भारत में ईसाई धर्म को फैलाने तथा उन्हें बलपूर्वक ईसाई बनाने के लिए भेजा गया है। आर्थिक दृष्टि से देश में असन्तोष तो पहले ही था। भारतीय तथा यूरोपीय सेनाओं में बड़ी असमानता थी। उपर्युक्त कारणों से देश में सन् 1857 ई० में एक भयानक क्रांति हुई, जिसे भारत का प्रथम स्वाधीनता-संग्राम कहा जाता है। इस क्रांति का अंग्रेजों ने बलपूर्वक दमन किया तथा यह क्रांति विफल रही। इससे कंपनी के शासन का अंत हुआ तथा ब्रिटिश राज्य की विधिवत् स्थापना हुई। सन् 1858 ई० में एक कानून पास हुआ जिसके अनुसार भारत का शासन इंग्लैण्ड के राजछत्र के अधीन कर दिया गया। इस प्रकार भारत की राजनीति में एक नया मोड़ आया।

कंपनी की भाषा-नीति

जब कंपनी की राजनीतिक शक्ति बढ़ गयी तब कंपनी यह चाहने लगी थी कि उसका शासन-सूत्र व्यवस्थित हो जाए। इसके लिए वह अपनी भाषा-नीति को निर्धारित करके अपने शासन-तंत्र को भी ठीक तरह से चलाने की दिशा में कदम उठाने लगी। इन दोनों कार्यों को चलाने के लिए एक आवश्यक और अनिवार्य माध्यम भाषा का तत्त्व था। कंपनी के शासन की स्थापना के बाद भारत में प्रमुख भाषाएं इस प्रकार थीं :

1. अंग्रेजी भाषा जो कंपनी की अपनी भाषा थी।
2. फारसी जो मुस्लिम शासनकाल से देश की राजभाषा चली आ रही थी।
3. देशी भाषाएं जो क्षेत्रीय भाषाएं थी और जिनमें हिन्दी का स्थान बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण था।

जहां तक अंग्रेजी भाषा का प्रश्न है, वह कंपनी सरकार की अपनी भाषा थी

जिसे कंपनी राजभाषा बनाना चाहती थी। उसके लिए अनुकूल वातावरण बनाने को कंपनी प्रयत्नशील रही। अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद कुछ भारतीय नेता भी उसके प्रति विशेष आकर्षित हुए और उसीके द्वारा भारतीयों को शिक्षा प्रदान करने की बात सोचने लगे, क्योंकि उन दिनों आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के लिए अंग्रेजी को ही ज्यादा उपयुक्त समझा जाने लगा। इसके लिए कुछ विद्यालय भी स्थापित किए गए।

फारसी भाषा की स्थिति उस समय बड़ी विचित्र थी। वह मुसलमानों के शासनकाल से राजभाषा अवश्य थी, लेकिन सर्वसाधारण की भाषा नहीं थी। फिर कंपनी सरकार ने उसे राजभाषा के रूप में जारी रखा। शिक्षा के क्षेत्र में फारसी के साथ-साथ अरबी का भी प्रयोग होता रहा। कंपनी-सरकार ने अरबी को भी पर्याप्त बढ़ावा दिया।

जहां तक देशी भाषाओं का सवाल है, उनमें हिन्दी सबसे प्रचलित लोक-भाषा थी। देश की जनता पिछड़ी हुई जरूर थी, लेकिन वह अपनी भाषाओं की महत्ता को अवश्य समझती थी। उसके पास अपनी भाषा और अपना साहित्य था, इसलिए जनता किसी विदेशी भाषा को लादना अनुचित समझती थी। इस दृष्टि से कंपनी के द्वारा अंग्रेजी का लादना अव्यावहारिक रहा। कुछ अंग्रेज अधिकारी फ्रेडरिक जान और ड्रमण्ड आदि भी इस बात का समर्थन करते थे कि भारतीय जनता पर अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा को लादना बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं होगा। इस प्रकार एक ओर अंग्रेजी भाषा विदेशी होने के कारण देश के लिए अव्यावहारिक मानी गई, दूसरी ओर फारसी और अरबी भाषाएं भी विदेशी थीं, इसलिए भारतीय जनता उनके प्रति रुचि नहीं रखती थी। लोक-भाषाओं के प्रति जनता का आकर्षण दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा था और इस बात को कम्पनी सरकार भी महसूस करने लगी थी।

कंपनी सरकार राजभाषा-संबंधी अपनी नीति का निर्धारण करना चाहती थी। चूंकि कंपनी की भाषा अंग्रेजी थी, इसलिए वह अंग्रेजी को ही शासन की भाषा बनाना चाहती थी। किन्तु इस मामले में कंपनी असमर्थ रही। जिस वक्त कंपनी ने देश का शासन-सूत्र अपने हाथों में ले लिया उस वक्त दिल्ली दरबार की भाषा फारसी थी और कम्पनी ने उसमें परिवर्तन नहीं करना चाहा और उसी नीति का अनुसरण किया। यद्यपि मुगल शासन के पतन के बाद फारसी का महत्व कम हो गया और उसका प्रचलन भी कम हुआ तो भी कंपनी सरकार ने उसे ज्यों का त्यों ही रहने दिया। कंपनी सरकार के लिए तत्कालीन लोक-प्रचलित भाषा हिन्दी की अवहेलना करना भी कठिन था। इसलिए उसने फारसी के साथ-साथ हिन्दी के प्रयोग को भी जारी रहने दिया। कंपनी के राज-कीय आदेशों और सूचनाओं और सरकारी कागजों में फारसी और हिन्दी दोनों

भाषाओं का प्रयोग होता था।

कंपनी ने अपने सिक्कों और स्टाम्पों में फारसी के साथ-साथ नागरी लिपि को भी स्थान दिया। फारसी भाषा के प्रयोग से बहुत-सी कठिनाइयां पेश हुई थीं और जनता को उससे उचित न्याय भी नहीं मिलता था। अंग्रेज इस वस्तुस्थिति से अवश्य परिचित थे ही। वे फारसी के स्थान पर अंग्रेजी को राजभाषा बनाना चाहते थे, जबकि साधारण जनमत लोकभाषाओं के पक्ष में था। कंपनी ने सन् 1830 ई० तक इस भाषा-नीति को अपनाया। इसी वर्ष एक विज्ञप्ति द्वारा अदालतों में देशी भाषाओं को भी स्थान दिया गया। वास्तव में इस विज्ञप्ति का पालन सन् 1837 ई० में ही शुरू हुआ जबकि फारसी की जगह देशी भाषाओं को दी गई। इसके बाद बंगाल मे बंगला प्रचलित हुई और संयुक्त प्रांत (उत्तरप्रदेश), बिहार और मध्यप्रान्त (मध्यप्रदेश) में हिन्दी और नागरी लिपि के स्थान पर उर्दू का प्रचलन हुआ।

सन् 1837 ई० के उर्दू-सम्बन्धी आदेश के पन्द्रह-बीस वर्ष बाद सरकार से यह अनुरोध किया जाने लगा कि अदालतों और दफ्तरों में फारसी लिपि के बजाय नागरी को मान्यता प्रदान की जाए। बिहार में प्रबल मांग की गई कि अदालतों में उर्दू और फारसी लिपि का स्थान नागरी को देना चाहिए। धीरे-धीरे इस मांग ने किसी हद तक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया।

सन् 1837 ई० के आदेश का यह उद्देश्य था कि फारसी के बजाय जनभाषा को अदालती कार्यवाही की भाषा बना दिया जाय। परंतु प्रयोग में जिस उर्दू की शैली चलती थी वह फारसी के शब्दों से इतनी अधिक लदी हुई थी कि उसका समझना उतना ही कठिन था। सरकार ने फिर 1870 ई० में एक आज्ञापत्र जारी किया, जिसमें कहा गया था कि फारसी-पूरित उर्दू नहीं लिखी जाए बल्कि ऐसी भाषा लिखी जाए जो एक कुलीन हिन्दुस्तानी फारसी से पूर्णतया अनभिज्ञ रहने पर भी बोलता है। इस आज्ञापत्र के बाद भी पूर्ववत् फारसी में बोझिल उर्दू का ही प्रयोग जारी रहा। व्यावहारिक रूप मे स्थिति यह थी कि अदालती भाषा जनसाधारण की भाषा नहीं थी। इस तथ्य से विचार पैदा हुआ कि जन-साधारण की भाषा हिन्दी है, न कि अदालती उर्दू। स्वयं अंग्रेज अधिकारीगण भी इस विचार का प्रतिपादन करते थे। उस समय की कचहरी की भाषा के विषय में अंग्रेज विद्वान ग्रौस ने लिखा है, "आजकल की कचहरी की भाषा बड़ी कष्टदायक है, क्योंकि एक तो यह विदेशी है और दूसरे, इसे भारतवासियों का अधिकांश भाग नहीं जानता।"[1] हिन्दी का यह स्वाभाविक अधिकार तो था कि उसे सरकारी भाषा के रूप में अपनाया जाए। उच्चारण के अनुसार लिखित

1. स्वतंत्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास, रामगोपाल, पृ० 29

लिपियों में नागरी का सर्वोच्च स्थान है, इस तथ्य को यूरोपीय विद्वानों ने भी स्वीकार किया था। परन्तु विडम्बना यह थी कि इस सर्वमान्य सर्वोत्तम लिपि को उसके अपने ही घर में आश्रय तो दिया ही नहीं गया, बल्कि कई बार यह सुझाव भी दिया गया कि हिन्दी (या उर्दू) भाषा के लिए रोमन लिपि का प्रयोग किया जाए। सबसे पहले यह सुझाव उस समय विवाद के रूप मे प्रकट हुआ जब 19वीं शती के तीसरे दशक में फारसी के स्थान पर देशी भाषाओं को आसीन करने के प्रस्ताव पर विचार हो रहा था। इस सुझाव का विरोध हुआ। सरकार ने विचारशीलता से काम लिया और सुझाव को अस्वीकृत कर दिया। सन् 1856 ई० में एक आज्ञापत्र निकाला गया जिसमें अदालतों में नागरी लिपि का भी प्रयोग करने का आदेश था। इस आज्ञापत्र के परिणामस्वरूप नागरी के लिए समर्थन प्राप्त हुआ।

सन् 1857 की क्रान्ति ने प्रशासन-व्यवस्था में भारी बवंडर पैदा किया। क्रांति के दमन कर दिए जाने के बाद सरकार की मनोवृत्ति में परिवर्तन आया। वह अपनी शक्ति बढ़ाने में लग गयी। आन्दोलनकारी भी चुप होकर बैठ गए। क्रांति के कुछ वर्ष बाद हिन्दी की चर्चा फिर शुरू हुई। सरकार हिन्दी के पक्ष की दलीलों से प्रभावित होती थी, परन्तु व्यवहार में हिन्दी और नागरी के लिए एक उचित स्थान प्राप्त नहीं हो रहा था। हिन्दी के समर्थकों की ओर से भी कोई ऐसा आन्दोलन नहीं हो रहा था जिससे सरकार को सार्वजनिक असन्तोष का कोई चिन्ताजनक आभास मिले। हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि की मांग व्यक्तिगत प्रदर्शन तक सीमित थी। शिक्षित तथा योग्य व्यक्ति अतिनम्रता से कभी-कभी औचित्य की मांग करते थे। उनकी आवाज़ या लेखनी के पीछे लाखों बल्कि करोड़ों लोगों का मूक अनुमोदन अवश्य था, परन्तु आन्दोलन की भावना नहीं थी। इन व्यक्तियों में प्रमुख राजा शिवप्रसाद थे। उन्होंने अति चतुराई के साथ इस प्रश्न को उठाया। उन्होंने कहा कि भाषा सादी हो, परन्तु उसकी लिपि नागरी होनी चाहिए। उन्हें विश्वास था कि यदि नागरी को अंगीकार कर लिया जाएगा तो (फारसी-मिश्रित) उर्दू के बजाय (संस्कृत-आधारित) हिन्दी धीरे-धीरे अदालती भाषा स्वतः हो जाएगी, परन्तु उनके समकालीन अन्य व्यक्ति हिन्दी तथा नागरी दोनों की मांग एकसाथ कर रहे थे। जब सरकार की ओर से कोई आशाजनक प्रतिक्रिया नहीं हुई, तो राजा शिवप्रसाद सिंह ने खिन्न होकर कहा कि यदि हिन्दी के समर्थक कार्यपटुता के अनुसार अपनी मांग को सीमित करके प्रस्तुत करते तो सरकार की ओर से स्वीकृति प्राप्त करना दुष्कर कार्य नहीं होना, क्योंकि उस दशा मे उर्दू-समर्थकों का विरोध कम से कम आधा हो जाता। उर्दू जानने वालो को केवल नये अक्षर सीखने पड़ते, नई भाषा नहीं। राजा शिवप्रसाद सिंह का व्यक्तिगत आन्दोलन

इस नीति की परिधि में था।

शिक्षा के क्षेत्र में भाषा-नीति

शिक्षा के क्षेत्र में कंपनी सरकार की भाषा-विषयक नीति यह थी कि वह फारसी के द्वारा मुसलमानों को और संस्कृत के द्वारा हिन्दुओं को शिक्षा देती रही। शिक्षा के क्षेत्र में उन दिनों अंग्रेजी को भी महत्त्व दिया जाने लगा, क्योंकि वह उन दिनों शासकों की भाषा थी और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के लिए उसको सबसे अधिक उपयुक्त समझा जाता था। सन् 1871 के संशोधित कानून के अनुसार कंपनी सरकार ने हिन्दू और मुसलमानों के लिए उनके धर्म, रीति-रिवाज और रहन-सहन के अनुसार उच्च शिक्षा के केन्द्र स्थापित किए। इसी सिद्धांत के आधार पर उन्होंने कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत नामक दो संस्थाएं कायम कीं। कलकत्ता मदरसा में मुसलमानों को मुस्लिम धार्मिक सिद्धांतों और कानूनों की शिक्षा देकर उन्हें अंग्रेज शासकों की सहायता करने के लिए तैयार किया जाता था। लगभग इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हिन्दू-धर्मशास्त्रों के अनुरूप बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना हुई थी। इन शिक्षण संस्थाओं में अरबी, फारसी और संस्कृत के अध्ययन पर ही बल दिया जाता था। सन् 1834 ई० में लार्ड मैकाले भारत आया और उसने अंग्रेजी द्वारा भारतीयों को शिक्षा देने पर जोर दिया। उसी वर्ष कंपनी की शिक्षा-सम्बन्धी भाषा-नीति बदली और सरकार ने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का कार्य अपने हाथ में ले लिया और सन् 1853 तक अंग्रेजी का खूब प्रचार हुआ। यह पहले बताया जा चुका है कि देश की साधारण जनता देशी भाषाओं के पक्ष में थी। इसलिए कंपनी को उनकी ओर भी ध्यान देना पड़ा। लार्ड मार्क्विस वैलेज़ली हिन्दुस्तानी के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने सन् 1800 में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। इस संस्था में भारतीय भाषाओं के शिक्षण पर अधिक ध्यान दिया जाता था। इसमें डा० गिलक्राइस्ट, डा० कैरे, कोलब्रुक तथा पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महान् विद्वान अध्यापक थे। अंग्रेजों को भारतीय भाषाएं सिखाने के लिए सन् 1818 में फोर्ट सैण्ड जार्ज नामक एक कालेज की स्थापना मद्रास में भी हुई थी। इससे स्पष्ट है कि वैलेज़ली के काल से कंपनी सरकार ने देशी भाषाओं के महत्त्व को समझा तथा उनकी ओर ध्यान दिया। कम्पनी की भाषा-नीति निर्धारित करने में डा० गिलक्राइस्ट का बहुत बड़ा हाथ है। फोर्ट विलियम कालेज में सिखाई जाने वाली हिन्दुस्तानी का प्रभाव कंपनी के शासन-तंत्र पर भी स्पष्ट रूप से पड़ता था, इसलिए यहां कंपनी की उस हिन्दुस्तानी सम्बन्धी नीति से अवगत होना बहुत ही आवश्यक है।

जहां तक कम्पनी सरकार की हिन्दुस्तानी नीति का प्रश्न है, उसका मूल

और फोर्ट विलियम कालेज (1800-1854 ई०) था। इस कालेज में एक हिन्दुस्तानी विभाग था जिसके अध्यक्ष जान गिलक्राइस्ट थे। कम्पनी सरकार के शासनकाल में हिन्दुस्तानी शब्द का प्रचलन था जिसके सामान्य रूप से दो अर्थ लिए जाते थे। एक हिन्दुस्तानी का वह रूप था जिसमें ठेठ हिन्दी के शब्दों का प्रयोग अधिक होता था और न तो उसमें शुद्ध संस्कृत के शब्दों की प्रचुरता होती थी और न तो वह अरबी-फारसी के शब्दों से बोझिल रहती थी। वास्तव में यह हिन्दुस्तानी 'हिन्दवी' अथवा 'हिन्दुई' शब्द का पर्याय था और यही हिन्दुस्तानी सबसे अधिक समझी और बोली जाती थी। किन्तु हिन्दुस्तानी का एक दूसरा अर्थ भी लिया जाता था जिसमें भाषा का मूलाधार तो ठेठ हिन्दी था किन्तु उसमें अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता थी और वह सामान्य रूप से फारसी लिपि में लिखी जाती थी। कम्पनी सरकार हिन्दुस्तानी के इस दूसरे अर्थ को ही मानती रही। इसका एक कारण यह था कि जब अंग्रेज पहले-पहल यहाँ आए तब उनका प्रथम सम्बन्ध समाज के शिक्षित और उच्च वर्ग के उन लोगों से था जो अपनी बोलचाल की भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का बहुत अधिक प्रयोग करते थे। हिन्दुस्तानी के इस रूप का जन-समुदाय में प्रचलन नहीं था। कम्पनी ने इसी 'हिन्दुस्तानी' के प्रचार-प्रसार के लिए कुछ प्रयास किए। फोर्ट विलियम कालेज ने भी इसी हिन्दुस्तानी की शिक्षा अपने कालेज में जारी रखी। इस प्रकार फोर्ट विलियम कालेज ने कम्पनी की भाषा-नीति को ही अपनाकर हिन्दुस्तानी के प्रचार-प्रसार के लिए कदम उठाए।

यह ध्यान देने की बात है कि जहाँ कम्पनी ने अरबी-फारसी से बोझिल हिन्दुस्तानी का समर्थन किया वहाँ ईसाई धर्म-प्रचारक जिस भाषा का प्रयोग कर रहे थे वह शुद्ध और ठेठ हिन्दी थी। इस प्रकार कम्पनी जिस हिन्दुस्तानी का प्रयोग करती थी, वह उसके भीतर तक ही सीमित था और बाहर हिन्दुस्तानी ठेठ हिन्दी ही मानी जाती थी। सन् 1824 तक कम्पनी और कालेज दोनों ने हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू का प्रयोग एक ही अर्थ में किया था। कम्पनी ने भाषा के जिस प्रयोग को मान्यता दी थी और जिस भाषा-नीति को अपनाया था वह भाषा के क्षेत्र में कई विरोधों और गलतफहमियों को उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुई। इसके परिणामस्वरूप ही हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी का वाद-विवाद खड़ा हुआ। कम्पनी की भाषा-नीति का जो दुष्परिणाम निकला उसके बारे में डा० सरनामसिंह ने ठीक ही लिखा है—"अंग्रेजी शासन की स्थापना से भाषा के क्षेत्र में एक विस्फोटक भावना का प्रजनन हुआ। धर्म की आड़ से कूट-नीतिक चालों को पोषित करने का अवसर लेकर शासकों ने अपना उल्लू सीधा करने की चेष्टा की। उन्होंने 'हिन्दुस्तानी' शब्द से एक ऐसे विष का [illegible] किया, जो बढ़ता और फैलता गया। हिन्दी और उर्दू के सम्बन्ध में उसने

निश्चित भेद-दृष्टि हो गई।"[1]

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह समझा जा सकता है कि कम्पनी अपनी भाषा-नीति के विषय में सच्ची एवं ईमानदार नहीं थी। भाषा के क्षेत्र में वह ऐसी स्थिति पैदा करना चाहती थी जिससे सामान्य जनता को कठिनाई हो और उनकी भाषा-सम्बन्धी भावना को ठेस पहुंचे। कम्पनी ने जिस भाषा-नीति को अपनाया उसका पोषण कम्पनी द्वारा स्थापित फोर्ट विलियम कालेज ने किया।

फोर्ट विलियम कालेज और हिन्दी

कम्पनी ने अपना शासन स्थापित करने के बाद अपने सैनिक और असैनिक कर्मचारियों के लिए देशी भाषाओं के अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं की थी। जब लार्ड वैलेजली (1798-1805) भारत आए तब उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। वैलेजली ने कम्पनी के कर्मचारियों की नैतिक दशा सुधारकर उनमें अनुशासनपूर्ण शिक्षा-प्रणाली आरम्भ करने और देश-विषयक ज्ञान प्राप्त करने के लिए कदम उठाना चाहा। वे कम्पनी को एक राजनीतिक एवं सुदृढ़ संस्था बनाना चाहते थे। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने सन् 1800 ई० में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की।

राजनीतिक और प्रशासनिक उद्देश्यों के अतिरिक्त इस कालेज की स्थापना से भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिन्दी, बंगला और उर्दू को बहुत ही प्रोत्साहन मिला। यह कालेज सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी विषयों का प्रधान केन्द्र बन गया। आधुनिक भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक और व्यवस्थित अध्ययन की ओर भी सरकार ने विशेष ध्यान दिया। मुख्य रूप से कालेज की गतिविधियों को दो भागों—शिक्षण-सम्बन्धी और भाषा-सम्बन्धी—में विभक्त किया जा सकता है। इस कालेज में पूर्वी और पश्चिमी साहित्य, अन्तर्राष्ट्रीय कानून, अंग्रेज़ी कानून, हिन्दू कानून, नीति-विज्ञान तथा नागरिक शासन के अन्तर्गत आने वाले विधान और नियम, अर्थशास्त्र, भूगोल, गणित, प्रकृति-विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा नक्षत्र-विज्ञान आदि सभी विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इस कालेज में अरबी, फारसी, संस्कृत, हिन्दुस्तानी, बंगला, तेलुगु, मराठी, तमिल, कन्नड़, मलयालम और सभी भारतीय भाषाओं को पढ़ाने की व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त यूरोप की अनेक भाषाएं तथा ग्रीक, लेटिन आदि भी यहां पढ़ाई जाती थी। इस कालेज के द्वारा अनेक भारतीय भाषाओं में, विशेषतः फारसी, बंगला, अरबी और हिन्दुस्तानी में अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किए गए।

1. हिन्दीभाषा की आधुनिक समस्याएं, डा० सरनामसिंह शर्मा पृ० 5

कालेज द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों में साहित्यिकता का अभाव भले ही हो, परन्तु यह एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व था कि भारतीय भाषाओं में अनेक नवीन विषयों का प्रारम्भ हुआ और उनके शब्द-भण्डारों में वृद्धि हुई। संस्कृत और हिन्दी के अनेक ग्रन्थ पहली बार प्रकाशित हुए। भारतीय भाषाओं के अध्यापन के लिए भारत के ही विद्वान नियुक्त किए जाते थे और कुछ विषयों के पठन-पाठन के लिए यूरोपीय विद्वान भी नियुक्त थे।

हिन्दुस्तानी विभाग के सर्वप्रथम अध्यक्ष डा० जान गिलक्राइस्ट थे। वे 1783ई० में भारत आए और 1787ई० से उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया। कम्पनी के समस्त कर्मचारियों में वे ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दुस्तानी का गम्भीर अध्ययन किया। इस कारण से उन्हें 1798 ई० में सरकार ने ओरिएंटल सेमिनरी का अध्यक्ष नियुक्त किया और 1800 में लार्ड वैलेज़ली ने उन्हें हिन्दुस्तानी विभाग का अध्यक्ष बनाया। इस पद पर वे 1804 तक काम करते रहे और फिर वे इंग्लैंड चले गए। उनके बाद कई अन्य प्रोफेसरों की नियुक्ति अध्यक्ष-पद पर हुई। इस विभाग में अनेक मुंशी और पंडित भी कार्य करते रहे—जिनमें श्री लल्लूलाल, श्री सदल मिश्र, श्री नरसिंह तथा गंगाप्रसाद शुक्ल के नाम उल्लेखनीय हैं।

यह पहले लिखा जा चुका है कि कम्पनी की भाषा-नीति के अनुरूप कालेज में जिस भाषा को प्रोत्साहन दिया जाता था, वह वस्तुतः 'हिन्दुस्तानी' कहलाती थी। उसमें अरबी-फारसी का बाहुल्य रहता था और उसका मूल ढांचा हिन्दी पर ही आधारित था। गिलक्राइस्ट महोदय हिन्दी और हिन्दुस्तानी में भेद नहीं मानते थे और उनके अनुसार 'हिन्दुई' या 'हिन्दवी' शब्द 'हिन्दुओं की भाषाओं' के द्योतक थे। लिखने में उनके लिए फारसी लिपि का ही प्रयोग किया जाता था। कालेज की हिन्दी-सम्बन्धी नीति श्री गिलक्राइस्ट के भाषा-सम्बन्धी विचार पर ही आधारित थी। गिलक्राइस्ट के अनुसार हिन्दी की अपेक्षा हिन्दुस्तानी शब्द ही अधिक उपयुक्त था। उनके अनुसार हिन्दुस्तानी की तीन शैलियां थीं—1. दरबारी या फारसी शैली, 2. हिन्दुस्तानी शैली, 3. हिन्दवी शैली। वे फारसी शैली को दुरूह तथा हिन्दवी शैली को गंवारू अर्थात् 'वल्गर' मानते थे। इनमें वे हिन्दुस्तानी शैली को ही प्राथमिकता देते थे।[1]

गिलक्राइस्ट के अनुसार हिन्दवी, अरबी, फारसी का मिश्रित रूप ही हिन्दुस्तानी है। परन्तु उनकी यह हिन्दुस्तानी वस्तुतः उर्दू ही थी। गिलक्राइस्ट वास्तव में उर्दू के बड़े पोषक कहलाने के अधिकारी हैं। उन्हींकी प्रेरणा से उर्दू परिपूर्ण होकर फारसी के स्थान पर सरकारी भाषा बनने की परिपूर्ण योग्य हुई।

1. फोर्ट विलियम कालेज, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० 168

उनकी प्रेरणा से कम्पनी के अन्य कर्मचारी भी उर्दू पढ़ने लगे थे। गिलक्राइस्ट ने हिन्दुस्तानी के नाम से असल में उर्दू का ही प्रचार किया। स्वयं गिलक्राइस्ट ने अनेक पाठ्य-पुस्तकें हिन्दुस्तानी ग्रामर, हिन्दुस्तानी फाइलोलजी आदि हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में लिखी। उनकी 'ए ग्रामर आफ द हिन्दुस्तानी लेंग्वेज' में व्याकरण-सम्बन्धी सिद्धान्त तो हिन्दी भाषा पर आधारित हैं, परन्तु उसकी पारिभाषिक शब्दावली तथा उद्धरण आदि उर्दू के हैं।

जहां तक लिपि का प्रश्न है, गिलक्राइस्ट रोमन और फारसी लिपि दोनों के पक्ष में थे। वे नागरी लिपि का बहिष्कार भी नहीं कर पाए। यह उनका विचार था कि हिन्दुस्तानी का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के कारण फारसी भाषा और लिपि का स्थान अत्यावश्यक था। गिलक्राइस्ट स्वयं अरबी और फारसी भाषाओं के विद्वान थे। उन्होंने अपनी रुचि के अनुसार तत्कालीन हिन्दी को अरबी, फारसी की ओर मोड़ दिया। गिलक्राइस्ट की भाषा-नीति का दुष्प्रभाव हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार पर पड़ना स्वाभाविक था। उनके हिन्दुस्तानी विभाग में 'हिन्दुई' नागरी लिपि से परिचित पण्डित नही के बराबर थे। कालेज की व्यवस्था मे भाषा-मुंशी और 'पण्डितों' का स्थान सदैव गौण रहा। उनकी उपस्थिति आवश्यक नही समझी जाती थी।[1]

गिलक्राइस्ट की भाषा-नीति से हिन्दी को यथेष्ट रूप से विकसित होने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वास्तव में फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग द्वारा हिन्दुस्तानी के नाम पर 'उर्दू' को विकसित करने के लिए अनेक कदम उठाए जा रहे थे। सन् 1804 ई० में डा० गिलक्राइस्ट के कालेज छोड़कर जाने के बाद भी उनकी भाषा सम्बन्धी यह भ्रांतिपूर्ण नीति जारी रही। 1823 मे हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष के रूप मे प्राइस की नियुक्ति हुई। उस समय तक कालेज मे 'हिन्दुस्तानी' के स्थान पर हिन्दी-अध्ययन का प्रारम्भ हो गया। विलियम प्राइस अपने को हिन्दी प्रोफेसर कहते थे और हिन्दी और हिन्दुस्तानी मे लिपि और शब्दों का मुख्य अन्तर मानते थे।[2] प्राइस की भाषा-सम्बन्धी नीति से कालेज के संचालकों को भी अपनी भाषा-नीति में परिवर्तन करना पड़ा। प्राइस की प्रेरणा से गिलक्राइस्ट द्वारा जनित भाषा-सम्बन्धी भ्रांतियो को दूर करने के लिए प्रयत्न हुआ। प्राइस के बाद कालेज की गतिविधियों मे कोई विशेष प्रगति नही हुई और 1854 ई० में कालेज बन्द कर दिया गया। सारांश मे यह कहा जा सकता है कि फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग द्वारा जो भाषा-नीति अपनाई गई थी उससे असल में उर्दू को अत्यधिक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० 361
2. खड़ी बोली का आन्दोलन, शितिकंठ मिश्र, पृ० 71

प्रोत्साहन मिला। अठारहवीं शती के अन्त तक तो इस देश में हिन्दी-उर्दू के विभेद का प्रश्न ही उत्पन्न हुआ था, परन्तु कालेज की नीति से हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू को जो प्रश्रय मिला, उससे आगे चलकर भाषा के सवाल को लेकर भयानक परिणाम निकले।

फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना से हिन्दी को बिल्कुल कोई लाभ नहीं हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। कालेज हिन्दी की उपेक्षा एक प्रकार से नहीं कर सका, क्योंकि उन दिनों अंग्रेजी राज्य का विस्तार पूर्ण रूप से हिन्दी-भाषी प्रदेश—बिहार, अवध और संयुक्त प्रान्त—में हो चुका था, जहां कि सामान्य जनता की भाषा हिन्दी थी। हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू को प्रश्रय देने से खड़ी बोली के विकास की नींव अवश्य पड़ गई थी। भले ही कालेज ने 'हिन्दुस्तानी' में अरबी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य रखना चाहा तो भी एक प्रकार से खड़ी बोली को ही विकसित होने का उससे अवसर मिला। कालेज ने खड़ी बोली में गद्य रचनाओं के लिए प्रोत्साहन दिया। कालेज द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तकों द्वारा हिन्दी के प्रचार में किसी सीमा तक सहायता अवश्य मिली। इस प्रकार फोर्ट विलियम कालेज की भाषा-सम्बन्धी नीति के भ्रमपूर्ण होते हुए भी उससे हिन्दी को थोड़ा-बहुत लाभ अवश्य हुआ।

ईस्ट इंडिया कंपनी की भाषा-नीति के परिणामस्वरूप उर्दू को सरकारी क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया था। फोर्ट विलियम कालेज में भी भाषा-संबंधी जिस नीति का अनुसरण किया गया था, उससे भी उर्दू की सरकारी स्थिति अधिक दृढ़ हो गई थी। मुगल शासन में तथा उसके अन्त के कुछ वर्षों बाद तक भी हिन्दी आंशिक रूप से फारसी के साथ-साथ सरकारी कामकाज की भाषा रही थी, परन्तु सन् 1836 ई० के बाद इस सामान्य नीति में परिवर्तन कर दिया गया। बिहार, उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश आदि हिन्दीभाषी प्रदेशों में फारसी के स्थान पर उर्दू को लादने के परिणामस्वरूप हिन्दी को राजकाज से अलग कर दिया गया था। सम्भवतः यह ब्रिटिश शासकों की चाल थी। वे उर्दू को प्रोत्साहन देकर मुसलमानों को प्रसन्न रखना चाहते थे। उधर मुसलमानों में भी एक ऐसा दल विद्यमान था, जो देश में प्रजातन्त्रवाद की अपेक्षा अंग्रेजों के शासन को अधिक पसन्द करता था।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि यद्यपि उर्दू देश के जन-साधारण की भाषा नहीं थी, तथापि अंग्रेजों ने उसे सरकारी क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान देकर हिन्दी के प्रति घोर अन्याय किया था। कचहरियों में उर्दू को बलपूर्वक थोपकर अंग्रेजों ने ऐसा वातावरण तैयार किया, जिससे भाषा के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता

पनपी तथा जिसके साथ घातक परिणाम देश को भुगतने पड़े।[1]

भाषा के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता का जन्म

अंग्रेजी सरकार की भाषा-नीति के परिणामस्वरूप देश में साम्प्रदायिकता को जन्म मिला। भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के पहले हिन्दी को अति-महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद मुसलमानों की सामान्य दशा बिगड़ने लग गयी थी। राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से वे पिछड़ गए। ब्रिटिश शासक मुसलमानों को विजित शत्रु के रूप में समझते थे। शिक्षा आदि में पिछड़ा होने के कारण उन्हें सरकारी नौकरियाँ भी प्राप्त होने में कठिनाइयाँ थीं। सन् 1857 की क्रांति के बाद सामान्यतया अंग्रेजों का मुसलमानों के प्रति कड़ा रुख हो गया। संभवतः अंग्रेज लोग मुसलमानों को ही इस विद्रोह का मुख्य कारण समझते थे, किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न थी। इस क्रांति में हिन्दुओं ने भी समान रूप से भाग लिया था।

धीरे-धीरे अंग्रेजों की इस नीति में कुछ परिवर्तन आया। वे सोचने लगे कि हिन्दू और मुसलमानों को एक-दूसरे के प्रति शत्रु बनाए रखने से शासन की जड़ मजबूत हो सकती थी। अतः वे अब 'फूट डालो और राज करो' वाली नीति को अपनाने लगे थे। मुसलमानों के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार हो गया। अंग्रेजों की शासन-नीति का समर्थन करने वाले कुछ मुसलमान नेता भी उन्हें मिल गए। अंग्रेज इन मुसलमानों को प्रसन्न रखना चाहते थे। इसके परिणामस्वरूप उनकी भाषा-नीति ने भी भाषा के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता के बीज बो डाले। पहले से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भाषा-नीति और फोर्ट विलियम कालेज द्वारा हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू को जो प्रश्रय और प्रोत्साहन मिला था, उससे भाषा के प्रश्न पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा था। अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता को उभारने के लिए देश पर उर्दू को लादने के प्रयास किए। मुसलमानों को इसके लिए उकसाया और हिन्दी को हिन्दीभाषी प्रदेशों से भी निकालकर भाषा के प्रश्न पर पूर्ण रूप से साम्प्रदायिक एवं राजनीतिक रंग चढ़ा दिया।

वास्तव में यह अंग्रेजों की एक चाल थी। स्वयं अंग्रेज ही इसके लिए उत्तरदायी थे। यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाए तो यह स्पष्ट है कि उर्दू को अलग भाषा के रूप में पनपाने का श्रेय जान गिलक्राइस्ट आदि को ही है। उन्होंने ही हिन्दुस्तानी विभाग में हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग भाषा मानकर उनके लिए अलग-अलग पण्डितों और मुंशियों की नियुक्ति की। कंपनी सरकार की भाषा-नीति ने धीरे-धीरे देश में साम्प्रदायिकता को पनपने का अवसर दिया।

1. डा० विश्वनाथ शर्मा : हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास, पृ० 142

भाषा का संप्रदायों से सम्बन्ध जोड़ दिया गया। हिन्दू और मुसलमानों के बीच भाषा के प्रश्न को लेकर अनेक वाद-विवाद हुए। बस, यहीं से हिन्दी और उर्दू-विवाद की वह घटना शुरू होती है जिसका भारत की भाषा-समस्या पर बहुत भयानक प्रभाव पड़ा है।

हिन्दी बनाम उर्दू का झगड़ा

हिन्दी और उर्दू के झगड़े के मूल में कई कारण थे। वस्तुतः हिन्दी-उर्दू-विरोध की बुनियाद तो लिपि-भेद ही है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के अनुसार "सोलहवीं शती में मुसलमान कवियों के द्वारा हिन्दी को जाने या अनजाने फ़ारसी लिपि में लिखने के प्रयत्न में ही इस झगड़े के सूक्ष्म अंकुर निहित थे।"[1] हिन्दी और उर्दू-विवाद का दूसरा कारण नाम-भेद है। उर्दू के समर्थकों का कहना था कि हिन्दी एक कल्पित और नया नाम है और वह उर्दू के विरोध-स्वरूप ही गढ़ लिया गया है। ऐसे लोगों का यह दावा था कि हिन्दी इस देश की भाषा नहीं है, परन्तु हिन्दी के पक्षपाती यह कहते थे कि उर्दू कोई अलग भाषा नहीं है बल्कि वह हिन्दी की ही एक साहित्यिक शैली मात्र है। हिन्दी-उर्दू-विवाद का एक तीसरा आधार शब्द-रचना और साहित्यिक प्रतिमान है। उर्दू के हिमायती जानबूझकर अपनी भाषा में अरबी-फ़ारसी के शब्द ठूंस देते थे। अरबी-फ़ारसी की ओर अत्यधिक झुकाव के कारण उनके साहित्यिक प्रतिमान और प्रतीक बिलकुल अभारतीय हो गए। उर्दू में भारतीय संस्कृति, सदर्भ और विश्वास का बिलकुल बहिष्कार कर दिया गया, जिससे उर्दू का रूप-रंग विदेशी हो गया। श्री पद्मसिंह शर्मा ने उचित ही कहा है—"भाषा-भेद का प्रारम्भ उर्दू लेखकों ने किया और इन्हीं ही की कृपा से भाषा पर मजहबी रंग भी चढ़ा।"[2]

हिन्दी-उर्दू के विवाद में व्याकरण-भेद भी मुख्य कारण था। सम्भवतः इस भेद की नींव जान गिलक्राइस्ट के समय पंडितों और मौलवियों के द्वारा पड़ी थी। पंडित शुद्ध रूप में संस्कृत को हिन्दी का आधार मानने लगे थे, जबकि मौलवी उर्दू के लिए फ़ारसी-अरबी की सहायता लेते रहे। इसके अतिरिक्त छन्द और शैली-भेदों के कारण भी हिन्दी-उर्दू की खाई बढ़ती गई। इन सब कारणों से हिन्दी और उर्दू के बीच में अलगाव की स्थिति पैदा की गई।

हिन्दी-उर्दू के वाद-विवाद का एक दूसरा प्रमुख कारण राजनीतिक भी है। उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में कुछ मुसलमान राजनीतिक नेताओं ने मुसलमानों में यह भावना प्रचारित की कि बहुसंख्यक हिन्दू अपने धर्म और

1. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० 222-223
2. हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, श्री पद्मसिंह शर्मा, पृ० 39

संस्कृति का प्रचार गंभीरता से करने लग जाएंगे तो शायद इस देश में मुसलमानों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। इस भावना के प्रचार के कारण मुसलमानों में यह आशंका पैदा होने लगी और वे अपने धर्म और संस्कृति की सुरक्षा के विचार से उर्दू की ओर अधिक आकृष्ट होने लगे। स्वार्थी राजनीतिज्ञों के चंगुल में पड़कर मुसलमान हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा मानकर उसके प्रति उदासीन और विमुख हो गये। इस संदर्भ में ब्रिटिश सरकार की 'फूट डालो और राज करो' नीति ने भी भारत की राजनीतिक गतिविधि में साम्प्रदायिक और धार्मिक ईर्ष्या एवं घृणा का बीज बोया। इस राजनीतिक षड्यन्त्र का परिणाम यह हुआ कि भाषा के क्षेत्र में हिन्दी और उर्दू को अलग भाषाएं मानने के लिए वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ।

हिन्दी-उर्दू वाद-विवाद मूलतः हिन्दीभाषी क्षेत्रों, पश्चिमोत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रान्त में प्रारम्भ हुआ। 1837 ई० में जब अदालतों में देशी भाषाओं के प्रयोग की छूट मिली तब जानबूझकर 'उर्दू' को थोप दिया गया। इसके परिणामस्वरूप हिन्दी को अदालतों में प्रवेश कराने के लिए एक व्यापक आन्दोलन चला। शिक्षा के क्षेत्र में भी सरकार की ओर से यह प्रयत्न किया गया कि शिक्षा के क्षेत्र में भी उर्दू को ही प्रमुख स्थान दिया जाए। इन प्रान्तों में हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी गई थी, जबकि उर्दू के विद्यार्थियों के लिए हिन्दी किसी रूप में अनिवार्य नहीं की गई। उर्दू के समर्थकों के द्वारा यह तर्क दिया गया कि "भारत के प्रत्येक वर्ग के लोग सैकड़ों वर्षों से फारसी लिपि का प्रयोग कर रहे हैं तथा ढाई सौ वर्षों से उर्दू इन प्रान्तों की जन-बोली है। नागरी में कठिनाई यह है कि उसके लिखने में अधिक समय लगता है।"[1] उर्दू के समर्थकों में मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खान भी थे जिन्होंने शिक्षा-आयोग के सामने यह गवाही दी और यहां तक कह डाला कि "समाज के केवल छोटी श्रेणियों के लोग ही हिन्दी पढ़ते हैं या वे लोग जो व्यापार करते हैं।" इस प्रकार हिन्दी-उर्दू का विवाद बढ़ा और उसने ईर्ष्या और वैमनस्य का रूप ले लिया।

सन् 1872 में लार्ड मेयो ने मुसलमानों को जो शिक्षा-सम्बन्धी रियायतें दीं, उनसे उर्दू को बड़ा प्रोत्साहन मिला। उर्दू के पनपने के पूरे अवसर और साधन इस प्रकार मिल गए; किन्तु सरकार की ओर से हिन्दी को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। यह स्थिति हिन्दी और उर्दू के बीच गहरी खाई उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुई।

हिन्दी-उर्दू का वाद-विवाद काफी समय तक चलता रहा। हिन्दी के समर्थकों और उर्दू के समर्थकों ने अपने-अपने तर्क दिए। कुछ अंग्रेज विद्वानों ने

1 सन् 1882 के शिक्षा-आयोग (पश्चिमोत्तर प्रान्त) का प्रतिवेदन, पृ० 421

भी इन वाद-विवादों में भाग लिया। उनमें हिन्दी के समर्थकों में ग्राउस साहब तथा उर्दू के पक्षपातियों में बीम्स साहब का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन दोनों विद्वानों में उत्पन्न हिन्दी-उर्दू-विवाद का पूरा विवरण सन् 1865 से 1868 तक 'रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल' में प्रकाशित होता रहा। जान बीम्स उर्दू को एक सभ्य तथा प्रगतिशील भाषा मानते थे। उनके विचार में उर्दू एक सम्पन्न भाषा है, जबकि हिन्दी को वे एक अनिश्चित तथा दस-बारह ठेठ बोलियों का एक समूह-मात्र मानते थे। दूसरी ओर ग्राउस साहब का यह मत था कि उर्दू का पचास-साठ साल पहले अस्तित्व ही नहीं था, जबकि हिन्दी को वे सदियों से चली आ रही जनभाषा के रूप में स्वीकार करते थे। इस प्रकार यह विवाद प्रत्येक क्षेत्र में दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा था।[1]

हिन्दी के समर्थकों में डा० शिवप्रसाद सिंह जैसे मध्यममार्गी भी थे जो हिन्दी की फारसी शैली को अपनाने में कोई आपत्ति नहीं समझते थे, यदि नागरी लिपि को मान्यता मिल जाए; परन्तु हिन्दी के कट्टर समर्थक डाक्टर शिवप्रसाद सिंह के इस विचार से संतुष्ट नहीं हुए।

यह पहले बताया जा चुका है कि जब ब्रिटिश शासन इस देश में स्थापित हुआ तब राजकाज की भाषा और अदालतों की भाषा फारसी ही बनी रही। उन्नीसवीं शती के प्रथम चरण में देश में, विशेषतः बंगाल में, भाषा के प्रश्न पर कुछ प्रतिक्रियाएं हुईं। उन दिनों कुछ विशिष्ट भारतीय हिन्दू फारसी से मुक्त होने के लिए अंग्रेजी का समर्थन करने लग गए थे। भारतीय मुसलमानों ने इसको षड्यन्त्र माना और दावा किया कि अंग्रेजी फारसी का स्थान ग्रहण नहीं कर सकेगी। वे फारसी को इस्लामी संस्कृति का प्रतीक मानते थे और कभी नहीं चाहते थे कि फारसी को अदालतों से हटा दिया जाए। किन्तु हिन्दुओं की दृष्टि से दोनों विदेशी भाषाओं—फारसी और अंग्रेजी—में अंग्रेजी ही अच्छी थी। तत्कालीन अंग्रेजी के हिन्दू समर्थकों में राजा राममोहन राय प्रमुख थे।

जब ब्रिटिश शासन शुरू हुआ तब अदालतों में और सरकारी कामकाज में प्रमुख रूप से फारसी भाषा और आंशिक रूप से हिन्दी का प्रयोग होता था। उस समय की अनेक विज्ञप्तियों और आदेशों से इस बात का पता चलता है—"अंग्रेजों ने मुसलमान शासकों की भाषा-सम्बन्धी नीति को अपनाया। अदालती भाषा फारसी रही, परन्तु द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग जारी रहा। राजकीय आदेश, सूचनाएं तथा अन्य सार्वजनिक पत्र फारसी में लिखे जाते थे और नीचे उसका हिन्दी अनुवाद दे दिया जाता था। वह नागरी अक्षरों में लिखी जाती थी, क्योंकि उस समय इससे सरकारी काम चलता होता था, इसलिए

1. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास, डा० शिवराज वर्मा, पृ० 148-149

उस भाषा को हिन्दी मानना पड़ेगा।"[1]

कंपनी के अधिकारियों ने सन् 1830 ई० में भारतीय अदालतों में देशी भाषाओं के प्रयोग को मान्यता दी और 1836 के इश्तहारनामे में यह स्पष्ट कहा गया कि अदालतों की भाषा हिन्दी होगी और लिपि नागरी के स्थान पर फारसी भी हो सकती है।[2]

यद्यपि 1830 की सरकारी विज्ञप्ति और 1836 के इश्तहारनामे के द्वारा देशी भाषाओं और हिन्दी को अदालतों में स्थान दिया गया तो भी उनका पालन करने में एक वैधानिक कठिनाई उपस्थित हो गई थी। भारत की अदालतों में फारसी को कानून द्वारा प्रतिष्ठित किया गया था इसलिए उसे कानून द्वारा हटाया जा सकता था। इसके लिए 20 नवम्बर, सन् 1831 को एक कानून बनाया गया, जिससे अदालतों मे देशी भाषाओं का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसके अनुसार बंगाल में बंगला, उड़ीसा में उड़िया, गुजरात में गुजराती तथा आसाम में असमी भाषा को कानूनी स्वीकृति मिली। उस समय न्यायिक कामकाज के लिए देशी भाषाओं मे फारसी शब्दों की बहुलता रहती थी। इसी कानून के अनुसार संयुक्तप्रान्त (उत्तरप्रदेश), बिहार तथा मध्यप्रान्त (मध्यप्रदेश) की अदालती भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकृत किया जाना चाहिए था, परन्तु ऐसा नहीं किया गया अपितु सरकार ने हिन्दी के स्थान पर फारसी लिपि में लिखित उर्दू को इन प्रान्तों की अदालतो मे स्थान दिया। इस प्रकार कंपनी ने राजभाषा फारसी को तो हटाया ही, क्योंकि वह उस समय साधारण जनता के लिए बोझिल थी, परन्तु इसके साथ-साथ लोकभाषा हिन्दी को भी अपने अधिकार से वंचित कर दिया।[3]

उस समय के अदालती कर्मचारी, जिनमें अधिकतर मुसलमान और कायस्थ थे, यही चाहते थे कि फारसी के स्थान पर नागरी लिपि के प्रयोग का आदेश दे दिया हो तो उन्हे बड़ी कठिनाई होगी तथा इससे अदालतों के कार्य मे बाधा पड़ेगी। उनका यह तर्क था कि सरकार केवल नागरी लिपि को ही लागू करेगी तो उसके लिए नये कर्मचारी ढूंढने पड़ेंगे। सरकार को कर्मचारियों की यह मांग अनुकूल लगी और उसे मानते हुए संयुक्तप्रान्त, बिहार और मध्यप्रान्त तीनों में उर्दू को ही परिणामतः एकमात्र अदालती भाषा मान लिया। इस स्थिति से भाषा तो देशी हो गई, परन्तु लिपि पूर्ववत् ही रही। उर्दू के अधिकांश समर्थक मुसलमान थे और उनके लिए भाषा का प्रश्न कोरा प्रशासकीय प्रश्न नहीं था,

1 स्वतंत्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास, पृ० 6
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 408
3. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास, डा० शिवराज वर्मा, पृ० 15)

वह भावनोत्पादक और एक हद तक धार्मिक भी था।[1]

कचहरियों में देशी भाषा और फ़ारसी लिपि के प्रयोग के लिए जो सरकारी सहूलियत मिली उससे कचहरी के कर्मचारियों को बड़ी सुविधा हो गई। श्री चन्द्रवली पाण्डेय के शब्दों में—"कचहरी के सभी प्राणी फ़ारसी में अभ्यस्त थे। फ़ारसी लिपि में लिखते रहने की उन्हें आदत हो गई थी। अस्पष्ट और भ्रमपूर्ण होने के कारण वह मसिजीवियों के अधिक काम की साबित हुई। उससे पैसा भी हाथ में आने लगा और शान भी बढ़ गई।[2] यह विचित्र विडम्बना थी कि जब तक देश में फ़ारसी का प्रचलन रहा तब तक देशी भाषा होने के कारण हिन्दी और उसकी लिपि नागरी दोनों को स्थान मिला था, किन्तु जब फ़ारसी के स्थान पर 'उर्दू' का प्रचलन हुआ तो हिन्दी का बचा-खुचा प्रयोग भी नष्ट हो गया।

कचहरियों में उर्दू के प्रयोग के विरुद्ध आवाज़ उठी, क्योंकि संयुक्तप्रांत, मध्यप्रान्त और बिहार के निवासियों की मातृभाषा मुख्यत: हिन्दी थी और उर्दू को इन प्रान्तों की कानूनी भाषा मानने के लिए वे तैयार नहीं थे, क्योंकि अदालती भाषा नाम के लिए उर्दू थी, परन्तु वह फ़ारसी के जटिल शब्दों से इतनी बोझिल थी कि उसको समझने में सामान्य जनता को बड़ी कठिनाई होती थी। यह मांग ज़ोर पकड़ने लगी कि अदालतों की भाषा सरल, सुबोध और नागरी लिपि में लिखित हिन्दी होनी चाहिए। इस मांग ने एक व्यापक आन्दोलन का रूप ले लिया। हिन्दी के लिए सार्वजनिक रूप से प्रस्ताव पारित किए गए और सरकार के पास स्मृतिपत्र भेजे गए। इसका फल यह हुआ कि सन् 1873 में सरकार ने यह आदेश जारी किया कि बिहार की अदालतों और दफ्तरों में सब विज्ञप्तियां और घोषणाएं हिन्दी भाषा में जारी की जाएं। परन्तु इस आदेश का कार्यान्वयन ईमानदारी के साथ नहीं किया गया जिसका यह परिणाम हुआ कि सरकारी अमला पूर्ववत् उर्दू का ही प्रयोग करता रहा। आदेश के प्रति विरोध-भावना भी दिखलाई गई। इस प्रतिक्रिया में हिन्दू और मुसलमान कर्मचारी दोनों ही एकमत थे। कुछ परिवारों का पुश्तैनी पेशा सरकारी नौकर हो जाता है, सरकार चाहे कोई हो, वे अपने बच्चों को दफ्तरों में काम करने के लिए तैयार करते हैं। इस प्रवृत्ति के अनुसार हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उर्दू पढ़ते थे और अपने बच्चों को भी उस भाषा की कामचलाऊ शिक्षा देते थे, जिससे कि वे वयस्क होने पर कचहरियों तथा अन्य दफ्तरों में अहलमद बन जाएं। ऐसी परिस्थिति में विरोध स्वाभाविक था। नये आदेश का

1. स्वतंत्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास, रामगोपाल, पृ॰ 19
2. बिहार में हिन्दुस्तानी, आचार्य चन्द्रवली पाण्डेय, पृ॰ 24

हानिकारक प्रभाव केवल वर्तमान अमले पर ही नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ी पर भी पड़ता, जो उर्दू सीख रही थी। एक अद्भुत मनोरंजक कशमकश पैदा हो गई। एक ओर वे हिन्दी-हितैषी आन्दोलनकारी थे, जो मातृभाषा की भावना से प्रेरित होकर उसे सरकारी आसन पर बैठाने के लिए व्यग्र थे और दूसरी ओर वे लोग थे, जिन्हें यह भय था कि हिन्दी के आ जाने से उनकी तथा उनके पुत्रों तथा सम्बन्धियों की पुश्तैनी जीविका छिन जाएगी।[1] परन्तु सरकारी आदेश जो हो चुका था, और अब जब यह पता चला कि उसका पालन नहीं हो रहा है, तो अप्रैल, 1874 में एक परिपत्र द्वारा अमले से पुनः आग्रह किया गया कि वह 1873 के आदेश का पालन करे, परन्तु फिर भी हिन्दी का बहिष्कार जारी रहा।

बिहार में यह मांग ज़ोर पकड़ने लगी कि प्रान्त की अदालती भाषा हिन्दी ही होनी चाहिए। इसके लिए सार्वजनिक सभाएं की गईं। सरकार के पास बड़े आवेदन-पत्र दिए गए कि बिहार की अदालतों और दफ्तरों में नागरी चलाई जा सकती है और चलाई जानी चाहिए। इस परिवर्तन का विरोध कायस्थ और मुसलमान कर रहे हैं, जिनका अदालती भाषा पर एकाधिकार है। अतः लिपि-परिवर्तन की आज्ञा को कार्यान्वित करने में दबाव से काम लेना पड़ेगा। सरकार ने 1875 में फिर एक परिपत्र सम्पूर्ण विभागीय अधिकारियों के पास भेजा, परन्तु परिणाम कुछ भी नहीं निकला। सरकार अपने आदेश की अवहेलना पर भी कड़ाई से काम नहीं लेना चाहती थी, क्योंकि वह अपने अमले के प्रति सामान्यतः उदारता रखती थी, परन्तु उसने देखा कि आन्दोलन शिथिल नहीं हुआ, बल्कि अधिक विस्तृत हो रहा है, तो बंगाल के लेफ्टीनेंट गवर्नर सर ऐशले को इस विषय पर विशेष ध्यान देना पड़ा। उन्होंने सोचा कि सरकारी आदेश का पूर्ण पालन तभी संभव हो सकेगा, जब वे केवल नागरी लिपि में लिखे जाएं तथा जनता की ओर से जो कागज़ अदालतों में प्रेषित किए जाएं, वे भी केवल इसी लिपि में हों। इस आदेश ने उर्दू को बिलकुल बहिष्कृत कर दिया। उसमें स्पष्ट शब्दों में अंकित था कि फारसी लिपि में कोई कागज़ न तो अदालतों से जारी किया जाए और न जनता से अदालतों में स्वीकार किया जाए। पुलिस अफसरों को आदेश दिया गया कि यदि वे जनवरी, 1881 तक नागरी लिखना-पढ़ना न सीखेंगे तो उन्हें हटा दिया जाएगा और उनकी जगहें हिन्दी जानने वालों को दे दी जाएंगी।

पहले इस आदेश के प्रति भी टालमटोल की गई, परन्तु जब यह आभास होने लगा कि इस बार सरकार अपनी धमकी पर दृढ़ है, तो धीरे-धीरे उर्दू भाषा तथा फारसी लिपि का स्थान हिन्दी तथा नागरी ने ले लिया। ऐसी स्थिति में

1. स्वतन्त्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास, रामगोपाल, पृ० 23

मध्यप्रान्त की कचहरियों में भी हिन्दी का प्रचार 1881 में आरंभ हुआ।

जिस प्रकार बिहार की अदालतों में संघर्ष हुआ था उसी प्रकार संयुक्त प्रान्त में, जिसमें आज के उत्तरप्रदेश के आगरा, इलाहाबाद, बनारस, मेरठ, रुहेलखण्ड के अतिरिक्त दिल्ली, सागर, जबलपुर और अजमेर भी शामिल थे, भी इसके लिए व्यापक संघर्ष हुआ। सन् 1836 तक तो इस प्रान्त की अदालतों में फारसी भाषा के साथ-साथ नागरी लिपि के प्रयोग की छूट थी, उर्दू का तो नाम तक भी नहीं था; परन्तु 1837 के आदेश के अनुसार वहां की अदालती भाषा भी उर्दू स्वीकृत हुई थी। उक्त आदेश से उर्दू का व्यापक रूप से प्रचलन प्रारंभ हो गया, लेकिन तत्कालीन अदालती भाषा फारसी के शब्दों के कारण अति बोझिल हो गई थी, जिससे जनता को समझने में बड़ी कठिनाई होती थी।

सन् 1840 से 1854 तक यह क्रम जारी रहा और अदालतों में उर्दू ही जारी रही। सन् 1854 और 1856 में सरकार ने जिला अधिकारियों को यह आदेश दिया कि गांवों के राजस्व विभाग के सभी कागजात नागरी लिपि में लिखित हिन्दी में होने चाहिए। इस प्रकार हिन्दी को प्रान्त की राजस्व विभाग की अदालतों में स्थान मिल गया, लेकिन इससे हिन्दी के समर्थकों को पूरा आश्वासन नहीं मिला।

संयुक्तप्रान्त की अदालतों में हिन्दी को प्रवेश दिलाने के लिए आन्दोलन जारी रहा।

उन्नीसवीं शती के आठवें दशक के आरंभ तक हिन्दी-आन्दोलन की जड़ें मजबूत हो गईं। हिन्दीभाषी शिक्षित जनता में जोश बढ़ता जा रहा था जिसका प्रदर्शन विभिन्न उपायों से किया जाता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने आन्दोलन को अभूतपूर्व शक्ति प्रदान की और वे इसके प्रतीक और नेता माने जाने लगे।[1] उन्होंने सन् 1882 में शिक्षा-आयोग के प्रश्नपत्र का उत्तर दिया जिसमें हिन्दी के विषय में निम्न उद्गार और सुझाव दिए—"सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग होता है। यही ऐसा देश है जहां न तो अदालती भाषा शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की।...हिन्दी का प्रयोग होने से जमींदार, साहूकार और व्यापारी और सभीको सुविधा होगी, क्योंकि सभी जगह हिन्दी का ही प्रयोग है।" भारतेन्दु ने उस वर्ग के लोगों का खण्डन भी किया जो सुसभ्य वर्ग की भाषा उर्दू और असभ्य ब्राह्मणों की भाषा हिन्दी मानते थे।

सन् 1873-74 की वार्षिक प्रांतीय भाषा रिपोर्ट में यह बताया गया कि प्रान्त के 71 प्रतिशत विद्यार्थी हिन्दी माध्यम से पढ़ने के इच्छुक हैं। इससे हिन्दी-

1. स्वतंत्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास, रामगोपाल, पृ० 35

आन्दोलन को और भी अधिक बल मिला। फिर भी सरकार ने उक्त रिपोर्ट के तथ्यों की अवहेलना करते हुए सन् 1877 में आदेश निकाला जिसके अनुसार यह कहा गया कि सरकारी नौकरियां केवल उनको ही उपलब्ध होंगी जो उर्दू या फारसी भाषा के साथ 'वर्नाकुलर' अथवा 'एंग्लो-मिडिल परीक्षा' उत्तीर्ण होंगे। सरकार की यह नीति बिलकुल गलत थी। वास्तविकता यह थी कि हिन्दी उस समय की बहुत प्रचलित भाषा थी। हिन्दी की व्यापकता के सम्बन्ध में दिसबर, 1875 में प्रकाशित श्री एस० एच० कॅलॉग द्वारा लिखित 'ए ग्रामर आफ दि हिन्दी लैंग्वेज' में विद्वान लेखक ने हिन्दी को भारत के अति विशाल जनसमूह की भाषा स्वीकार किया तथा उर्दू को हिन्दी का ही फारसीकृत रूप मानते हुए उसके प्रभाव को नगण्य माना। सन् 1877 के उपर्युक्त सरकारी आदेश से हिन्दी के समर्थकों को आघात पहुंचना एक स्वाभाविक बात थी।[1]

सन् 1880 तक आते-आते हिन्दी-आन्दोलन को प्रान्त के सभी व्यक्तियों का समर्थन मिलता गया। इस आन्दोलन को सांप्रदायिक रूप देने की कोशिश की गई, परन्तु कुछ मुसलमानो ने भी इस आन्दोलन का समर्थन किया। उनमे हैदराबाद के तत्कालीन विद्वान शमसुल उलमा मौलवी सैयद अली का नाम विशेष उल्लेखनीय है। हिन्दीप्रेमी जनता में हिन्दी के प्रति आस्था बढ़ती गई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस आन्दोलन का पूरा-पूरा नेतृत्व किया। चेतना की एक नई लहर दौड़ पड़ी। ऐसा लगा कि सारा हिन्दी-प्रदेश हिन्दी की स्थापना के लिए उमड़ पड़ा है। उर्दू-विरोधी नारे सर्वत्र सुनाई देने लगे। भारतेन्दुजी के नेतृत्व में लेखकों और पत्रकारों का एक बड़ा दल इस कार्य के लिए निकल पड़ा। पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने 'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान' का नया नारा लगाना शुरू किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विविध पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन धड़ाधड़ होने लगा। हिन्दी-उर्दू-विवाद एवं नागरी (हिन्दी)-आन्दोलन पर विभिन्न मौलिक निबन्ध निकलने लगे।

बंगाल के तत्कालीन गवर्नर कैम्पबेल साहब ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षाओ मे हिन्दी को भी स्थान देने का प्रयत्न किया था, परन्तु अधिकारियों के द्वारा उर्दू के कारण इसका विरोध किया गया। इसी विरोध के प्रत्युत्तर में सन् 1874 मे बंगाल मैगजीन से 'कामन हिन्दुस्तानी' नामक निबंध 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के प्रथम अंक मे उद्धृत किया गया। इस निबन्ध मे कहा गया था कि यह विरोध हमारे राष्ट्रीय जीवन की हत्या है। इस लेख में राजा शिवप्रसाद पर भी तीखे व्यंग्य का प्रहार किया गया था।

अंग्रेज सरकार ने एक और चाल चलाई और सन् 1893 में उसने भारतीय

1. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास, डा० शिवराज वर्मा, पृ० 133

भाषाओं के लिए रोमन लिपि को अपनाने का प्रश्न खड़ा कर दिया। प्रारंभ में दो-तीन वर्ष तक प्रस्ताव की केवल चर्चामात्र रही, परन्तु 1896 में यह बात दृढ़ता के साथ फैली कि संयुक्तप्रान्त में फारसी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि अपनाई जाएगी। इससे उर्दू के पक्षपातियों को भी गहरा धक्का लगा। क्योंकि उस समय उर्दू ही फारसी लिपि में लिखित अदालतों की भाषा थी। हिन्दी प्रेमी भी इस प्रस्ताव से विचलित हुआ कि रोमन लिपि को अपनाने से हिन्दी का भविष्य अन्धकार में हो जाएगा। इसलिए नागरी प्रचारिणी सभा ने, जिसकी स्थापना 1893 में हिन्दी और नागरी लिपि के प्रचार के लिए हुई थी, विरोध करने का एक व्यापक कार्यक्रम बनाया। इस कार्य के लिए सभा ने सबसे पहले 'नागरी कैरेक्टर' नामक एक पुस्तक अंग्रेज़ी में तैयार की, जिसमें भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि की अनुपयुक्तता पर प्रकाश डाला। इससे ब्रिटिश सरकार को भारतीयों की रोमन लिपि-विरोधी भावना का अनुभव हुआ। सरकार ने इस विवाद का हल करने के लिए एक समिति नियुक्त की, परन्तु उसने भी रोमन लिपि के पक्ष में ही अपना निर्णय दिया जिससे सार्वजनिक भावनाओं को ठेस पहुंची। नागरी प्रचारिणी सभा ने इसका सक्रिय विरोध किया।

अब हिन्दी-आन्दोलन का नेतृत्व पंडित मदनमोहन मालवीयजी के हाथों में आ गया। पंडितजी हिन्दी के समर्थकों में सर्वप्रमुख नेता थे। उन्होंने हिन्दी भाषा तथा नागरी-विषयक ऐतिहासिक तथा अन्य सामग्री एकत्रित की और कठिन परिश्रम के बाद एक पुस्तिका अंग्रेज़ी में तैयार की। 'कोर्ट कैरेक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्सज' पुस्तिका में इस तथ्य पर अधिक बल दिया गया कि स्वयं विभिन्न अंग्रेज अधिकारियों तथा विशेषज्ञों ने उन्नीसवीं शती के आरंभ से ही समय-समय पर यह स्वीकार किया है कि हिन्दी को ही देश की अदालती भाषा बनने का अधिकार है। उन्होंने नागरी लिपि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और यह सिफारिश की है कि यदि नागरी लिपि के द्वारा अदालती काम होगा तो जनता के एक विशाल भाग को सुगमता हो जाएगी। हिन्दी के पक्ष की पूर्ण और सर्वांगीण वकालत केवल इसी पुस्तिका मे मिल सकती है। उन्होंने जनगणना के प्रतिवेदनों तथा शिक्षा-विभाग के वार्षिक प्रतिवेदनों से आंकड़े लेकर यह सिद्ध किया कि हिन्दी भाषा बोलने तथा लिखने-पढ़ने वालों की जनसंख्या उर्दू वालों की संख्या से कई गुनी अधिक है। उन्होंने प्रकाशित पुस्तकों के भी आकड़े एकत्र किए और यह दिखाया कि इन प्रकाशनों मे हिन्दी पुस्तकों की संख्या चार-पांच गुनी अधिक है। इस पुस्तिका का तर्कसिद्ध सार यह था कि हिन्दी को उसके उचित पद से अलग रखकर सरकार अन्याय कर रही है। पुस्तिका तैयार हो जाने के बाद लेफ्टिनेण्ट गवर्नर के पास डेपुटेशन ले

जाने की तैयारी की गई। एक अभ्यर्थना-पत्र लिखा गया और उसे सार्वजनिक रूप देने के लिए उसपर विभिन्न ज़िलों के हिन्दी समर्थकों के हस्ताक्षर प्राप्त किए गए।[1]

1898 में मालवीयजी के नेतृत्व में 17 सदस्यों का एक प्रतिनिधिमण्डल प्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर जनरल सर एण्टोनी मैक डानुएल से मिला और उन्हें एक याचिका प्रस्तुत की। गवर्नर ने यह स्वीकार किया कि यद्यपि वह अदालतों की भाषा के शीघ्र परिवर्तन के पक्ष में नहीं हैं, फिर भी वे यह मानते हैं कि यदि नागरी लिपि के प्रयोग को छूट दे दी जाए तो इससे जनता का हित होगा। इस प्रकार उन्होंने सभा को याचिका पर पूरी जांच तथा विचार करने का आश्वासन दिया।

उर्दू के पक्षपाती भी चुप नहीं रहे। उन्होंने भी सार्वजनिक सभाएं आदि करके उर्दू का पक्ष-समर्थन किया और सरकार के पास अपने प्रतिनिधिमण्डल भेजे। अब अदालतों के लिए हिन्दी-उर्दू का प्रश्न पूर्णतया राजनीतिक बन गया और सरकार भी इसी दृष्टिकोण से देखने लगी। सर सैयद अहमद खां जैसे मुस्लिम नेता हिन्दी के प्रबल विरोधी बन गए। सरकार की नीति मुसलमानों को खुश करने की थी तथा वह उर्दू की पक्षपाती थी, इससे हिन्दी-उर्दू का विवाद अधिक उग्र हो गया। सरकार ने प्रशासन के तीन प्रमुख विभागों, राजस्व बोर्ड, हाईकोर्ट के रजिस्ट्रार तथा न्याय विभाग के कमिश्नर से इस सम्बन्ध में उनकी सम्मति मांगी। अन्त में उन विभागों की सम्मति आ जाने पर सरकार ने 18 अप्रैल, 1900 को निम्नलिखित निर्णय दिया :

(1) सभी लोग अपनी इच्छानुसार अपनी याचिकाएं अथवा शिकायतें नागरी या फारसी लिपि में प्रस्तुत कर सकते हैं। (2) सभी सम्मन, घोषणाएं तथा इस प्रकार के अन्य पत्र जो अदालतों तथा राजस्व बोर्ड के दफ्तरों से जारी किए जाते हैं, अब फारसी तथा नागरी दोनों लिपियों में होंगे। इन कागज़ों में रिक्त स्थान भी दोनों लिपियों में अक्षरों में भरे जाएंगे। (3) भविष्य में (उन दफ्तरों को छोड़कर, जिनमें सब काम अंग्रेज़ी में होता है) सभी दफ्तरों में क्लर्क या अधिकारी के पद पर केवल ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति की जाएगी, जो फारसी तथा नागरी लिपि दोनों भली-भांति पढ़-लिख सकते हैं।[2]

सरकार का उपर्युक्त प्रस्ताव हिन्दी के स्वाभिमान के लिए संतोषप्रद नहीं था। उसमें हिन्दी को अधिकारपूर्ण सम्मान नहीं दिया गया था, बल्कि हिन्दी

1. स्वतंत्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास, रामगोपाल; पृ० 48
2. वही, पृ० 52

के प्रति दया दिखलाई गई थी। केवल हिन्दी जनता के लिए सुविधा का प्रबन्ध किया गया था। उर्दू-प्रेमियों ने इस नई व्यवस्था का विरोध किया और विरोध सभाएं कीं और कहा कि सरकार का उक्त प्रस्ताव उर्दू पर एक प्रकार का आक्रमण है जिससे उर्दू का महत्त्व कम हो जाएगा। जब मुस्लिम नेता उक्त सरकारी निर्णय के विरोधी बन गए तब हिन्दी के पक्षपाती सरकार के प्रस्ताव के समर्थक बन गए। सरकार ने उक्त निर्णय को वापस नहीं लिया। इस प्रकार उन्नीसवीं शती के अन्त तक प्रबल विरोध के बावजूद भी हिन्दी को अदालतों में स्थान मिल गया। किन्तु भाषा का प्रश्न राजनीतिक होने के कारण, विरोध और प्रतिरोध ने हिन्दी-उर्दू प्रश्न को हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न बना दिया।

राष्ट्रीय चेतना और सार्वदेशिक भाषा की आवश्यकता

19वीं शती में भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक क्रांति हुई। देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति के अति शोचनीय हो जाने के कारण देश की सामान्य जनता में निराशा की लहर दौड़ गई थी। प्रारंभ में अंग्रेजों का आगमन भारतीय जीवन में परिवर्तन के रूप में स्वीकार्य हो गया था, परन्तु बाद में जनता में यह धारणा पक्की हो गई कि अंग्रेज हमारे ही भारतीय सिपाहियों और सेना के बल पर हमारे ही देश पर शासन करने पर तुले हैं। अंग्रेजों की आर्थिक नीति इस देश को लूटने की थी। उनकी आर्थिक नीति से उद्योगधंधों की हालत बुरी हुई और देश के कारीगर भूखों मरने लगे। दुर्भिक्षों आदि का भी देश के आर्थिक जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। देश में सभी प्रकार से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई जिसके कारण जनता में तीव्र असन्तोष हो गया। सरकार जनता को दबाने के लिए दमन का सहारा ले रही थी। अंग्रेजों के कुशासन और दमन के विरुद्ध सन् 1857 में एक बहुत बड़ा विद्रोह हुआ। इसको सरकार ने बड़ी कठोरता के साथ दबा दिया। विद्रोह के समय और उसके बाद अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचारों की कटु स्मृतियां भारतीयों के हृदय पर अंकित हो गई थीं। इससे भारतीयों के मन में अंग्रेजों के प्रति व्यापक घृणा की भावना फैल गई और इससे सारे देश में राष्ट्रीय चेतना की लहर दौड़ी। जनता में प्रतिकार की भावना पैदा हुई और प्रतिकार की भावना ने राष्ट्रीय चेतना को तीव्र कर दिया। राष्ट्रीय चेतना ने एक व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन को जन्म दिया।

राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव देश के राजनीतिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ा था। भाषा के क्षेत्र में भी लोग राष्ट्रीय दृष्टि से देखने लगे। भारत की राष्ट्रीयता का भाषा के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित हो गया था। इस

राष्ट्रीय आन्दोलन से देश में सामान्य भाषा की आवश्यकता महसूस हुई। भारतीय भाषाओं के प्रति अंग्रेज सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति और 1857 के आन्दोलन के बाद सम्पूर्ण देश में फैलती हुई स्वराष्ट्र एवं स्वतंत्रता की भावना ने इस देश के विचारकों एवं राजनीतिक कर्णधारों के मन में सारे देश के लिए एक सर्वसुलभ 'सार्वदेशिक भाषा' को मानने के लिए बाध्य किया। राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ राष्ट्रभाषा का भाव भी उभरने लगा।

1857 के आन्दोलन की असफलता के मूल में यह भी एक कारण माना गया कि उपयुक्त सामान्य भाषा या 'सार्वदेशिक भाषा' के अभाव में आन्दोलन के संदेश को न तो भारत के करोड़ों लोगों तक पहुंचाया जा सका और देशी भाषाओं में उचित शिक्षा के अभाव के कारण जनमानस को ही अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध तैयार नहीं किया जा सका। देश के एक कोने की समस्या, भावना या विचार को दूसरे प्रदेशों तक पहुंचाना आवश्यक था, तभी लोगों को संघर्ष के लिए संगठित किया जा सकता था। विभिन्न भाषा-भाषी लोगों को एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक सूत्र में बांधने के हेतु उनके बीच विचार-विनिमय के लिए किसी एक भाषा-माध्यम का होना नितान्त आवश्यक हो गया था। उस समय अखिल भारतीय स्तर पर जो भाषाई माध्यम उपलब्ध थे (संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी) उनमें से कोई भी ऐसा नहीं था जो कि भारत की करोड़ों जनता को राष्ट्रीय संदेश पहुंचा सके। भारतीय स्वतंत्रता के लिए व्याकुल दूरदर्शी भक्त नेता इस बात को अच्छी तरह समझ चुके थे कि जब तक भारत के गांवों में रहने वाले करोड़ों देशवासियों तक आजादी की भावना और विदेशी शासन के प्रति विरोध की भावना का प्रचार नहीं होगा तब तक उन्हें उन संघर्षों में सक्रिय भाग लेने के लिए तैयार नहीं किया जा सकेगा।

भारतीय जनता को अपने पिछले संघर्षों से यह बात स्पष्ट हो गई थी कि अंग्रेजों की सेवा में लगे हुए शिक्षित भारतीयों से उनका काम नहीं चलेगा। वे लोग सरलता से राष्ट्रवादियों का साथ नहीं दे सकेंगे, यह स्पष्ट हो गया। ऐसी स्थिति में देश के राष्ट्रीय नेताओं के सामने यह विकट प्रश्न उपस्थित हुआ कि सर्वसाधारण तक पहुंचने के लिए एक सामान्य या सार्वदेशिक भाषा को अपनाया जाए। यद्यपि उस समय अंग्रेजी के माध्यम से यह संपर्क का कार्य चल ही रहा था, पर न तो यह सर्वसाधारण वर्ग तक उनके संदेश को ले जा सकते थे और न स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान की प्रबल भावना ने ही इसे स्वीकार करना उचित समझा। भारत की सार्वदेशिक भाषा भारतीय ही होनी चाहिए, इसका समर्थन सबने किया।

यद्यपि अपने निरन्तर संघर्ष से भारतीय नेता शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं को भी शिक्षा के माध्यम के रूप में मान्यता दिलवाने में सिद्धान्ततः

पर्याप्त सफल हो चुके थे तो भी राष्ट्रभाषा का प्रश्न उपस्थित होते ही उनके सामने सबसे बड़ी समस्या यह उत्पन्न हुई कि देश की एक दर्जन से भी अधिक भाषाओं में से राष्ट्रीय संदेश की वाहिका के रूप में अंतर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए किस भाषा को स्वीकार किया जाए। यद्यपि शिक्षा के द्वारा भाषाएं अपने-अपने क्षेत्र में राष्ट्रीय भावना का सन्देश पहुंचाने में समर्थ थीं, पर वे दूरदर्शी नेता तो उस दिन का स्वप्न देख रहे थे जिस दिन संपूर्ण भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र होगा और संसार के अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों की भांति उसकी भी एक सार्वदेशिक राष्ट्रभाषा होगी।[1]

एक सार्वदेशिक भाषा की आवश्यकता 1857 की जनक्रांति के बाद ही विशेष रूप से महसूस की गई, क्योंकि इस विशाल देश में लोकमानस के स्तर पर आन्दोलन चलाने के बाद भारत के इतिहास में पहली बार यह बात अनुभूत की गई थी। इसके पहले कभी भी ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी। अखिल भारतीय स्तर पर भाषाई आदान-प्रदान करने की आवश्यकता बहुत कम पड़ती थी। जनसामान्य में किसी एक भाषा के प्रचार का प्रश्न कभी भी नहीं उठा था। हर भाषा का प्रचार अपने प्रदेश में होता रहा है। जैसे फारसी के दबाव की प्रतिक्रिया से देशी भाषाओं का विकास हुआ, वैसे ही अंग्रेजी के शिक्षण की अनिवार्यता की नीति की प्रतिक्रिया से निज भाषा-प्रेम उत्पन्न हुआ। चूंकि संपूर्ण देश राजनीतिक इकाई में बन्द हो चुका था, अतः संपर्क के लिए देश में एक सार्वदेशिक भाषा की आवश्यकता की अनुभूति होने लगी। राष्ट्रीय नेताओं को यह बात स्पष्ट रूप से मालूम हुई कि यदि भारत के विभिन्न प्रान्तों में आजादी के लिए संगठित प्रयत्न आरंभ करने हैं तो एक सामान्य भाषा के बिना देश में संगठन होना असंभव है। इस संदर्भ में सभी अपने को भारतीय समझते थे। अतः कोई भी भारतीय भाषा इस कार्यभार को सहन कर सकने के लिए सक्षम हो, उसे वे अपना पूर्ण सहारा देने को तत्पर थे। देश में स्वतंत्रता का सन्देश पहुंचाने का स्वार्थ सबसे बड़ा तात्कालिक स्वार्थ था और उस दिन भारतीय शासन-सत्ता के कार्यभार को चलाना दीर्घकालीन स्वार्थ, था, जिस दिन देश की राजनीतिक मुक्ति के साथ ही उसे विदेशी भाषा से मुक्ति मिलेगी। स्वतंत्र राष्ट्र का राज्य जनता की भाषा में चलाया जाएगा। विभिन्न भाषा-भाषी देश में सभी लोगों के बीच में संपर्क का कार्य करने के लिए एक सार्वदेशिक भाषा का चयन करके उसे अभी से तैयार करना होगा और उसे देश के कोने-कोने तक पहुंचाना होगा। राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में इस व्यापक कल्पना को लेकर राष्ट्रीय नेता सभी प्रकार की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठ रहे थे। उस समय देश के नेताओं और विचारकों

1. डा० देवीदत्त शर्मा, डा० कृष्ण अशोक : भारत की सपर्क भाषा, पृ० 58

के सामने किसी प्रकार के भाषाई आधिपत्य अथवा भाषाई लाभ अथवा संकीर्ण प्रान्तीयता की भावना जैसी कोई बात नहीं थी।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का चयन

सभी भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही ऐसी भाषा थी जिसकी सार्वदेशिकता ने आसानी से उसे राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया। राष्ट्र के नेता हिन्दी को छोड़कर राष्ट्रीय भाषा के रूप में किसी दूसरी भाषा की कल्पना नहीं कर सकते थे। जिन राष्ट्रीय उद्देश्यों से एक सार्वदेशिक भाषा की आवश्यकता उन्हें महसूस हुई उसकी पूर्ति के लिए उन्हें हिन्दी के अलावा कोई दूसरी भाषा नजर नहीं आई। हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करने वालों में अहिन्दी-प्रदेश के नेता ही अग्रिम पंक्ति में थे। इसी एक तत्त्व के आधार पर राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के चयन में अहिन्दीभाषी नेताओं ने अपनी विशाल राष्ट्रीय चेतना का ही परिचय दिया है। सर्वप्रथम सारे देश के लिए एक राष्ट्रभाषा हिन्दी की उदार कल्पना करने वालों में सबसे मूर्धन्य हैं बंगाल के स्वनामधन्य श्री केशवचन्द्र सेन, जिन्होंने 1873 में अपने पत्र 'सुलभ समाचार' (बंगाली) में लिखा—"यदि भाषा एक न होने पर भारतवर्ष में एकता न हो तो उसका उपाय क्या है? समस्त भारतवर्ष में एक भाषा का प्रयोग करना इसका उपाय है। इस समय भारत में जितनी भी भाषाएं प्रचलित हैं, उनमें हिन्दी भाषा प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इस हिन्दी भाषा को यदि भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बनाया जाए तो अनायास ही (यह एकता) शीघ्र ही सम्पन्न हो सकती है।"

यह देखकर आश्चर्य होता है कि राष्ट्रवाणी के रूप में हिन्दी की घोषणा कर उसके व्यापक प्रचार के लिए ठोस कदम उठाने वाले सभी अहिन्दीभाषी थे। राष्ट्रवाणी के रूप में हिन्दी का विकास उन चिन्तकों, मनीषियों, भविष्य-द्रष्टाओं द्वारा हुआ जो अधिकतर हिन्दीतर प्रदेश के थे। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का विचार सर्वप्रथम बंगाल में ही उदित हुआ और प्रारम्भ से अन्त तक इसे वहां के मूर्धन्य नेताओं का सक्रिय सहयोग एवं नैतिक बल प्राप्त होता रहा। बंगला के प्रसिद्ध साहित्यकार एवं वन्देमातरम् राष्ट्रगीत के रचयिता स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चैटर्जी ने विश्वास के साथ भविष्यवाणी की थी कि हिन्दी एक दिन भारत की राष्ट्रभाषा होकर रहेगी, 'क्योंकि हिन्दी भाषा की सहायता से भारत के विभिन्न प्रदेशों में जो ऐक्य-बन्धन स्थापित कर सकेगा, वही भारत-बन्धु कहलाने योग्य है।' कवीन्द्र-रवीन्द्र ने भी हिन्दी का समर्थन किया है—"यदि हम प्रत्येक भारतीय नैसर्गिक अधिकारों के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, तो हमें राष्ट्रभाषा के रूप में उस भाषा को स्वीकार करना चाहिए जो देश के सबसे बड़े भूभाग में बोली जाती है और जिसे स्वीकार करने की सिफारिश महात्मा

गांधीजी ने हम लोगों से की है। इसी विचार से हमें एक भाषा की भी आवश्यकता है, और वह हिंदी है।"[1]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना और स्वाधीनता आन्दोलन के विधिवत् रूप ग्रहण करने के पूर्व ही अहिन्दीभाषियों द्वारा हिन्दी के माध्यम से राष्ट्रीय रंगमंच निर्माण का कार्य सुचारु रूप में प्रारम्भ हो चुका था। राष्ट्रीय जागरण और स्वाधीनता-संग्राम का रूप जैसे-जैसे प्रौढ़तर होता गया वैसे-वैसे राष्ट्रभाषा के रूप मे हिन्दी के विकास की संभावनाएं भी प्रशस्त होती गई। राष्ट्रीय जागरण से सम्बद्ध सभी संघटनों ने हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया।

राजनीतिक आन्दोलन और हिन्दी का समर्थन

सन् 1885 में अखिल भारतीय स्तर की राजनीतिक संस्था कांग्रेस का जन्म हुआ। सन् 1885 से 1905 तक कांग्रेस एक सुशिक्षित एवं उच्चवर्ग की संस्था मानी जाती थी। कांग्रेस के सदस्य अंग्रेजी सरकार को भारत के लिए एक वरदान मानते थे। शुरू में कांग्रेस के सदस्यों का ध्यान अंग्रेजी की भाषानीति की ओर नहीं गया। वे केवल भारत की शासन प्रणाली मे उच्च सुधार चाहते थे। कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने वाले सदस्य अधिकतर अंग्रेजी वेशभूषा में रहते थे और अंग्रेजी भाषा में ही अपने भाषण और व्याख्यान दिया करते थे। ब्रिटेन का लोकमत उन दिनों भारत के राजनीतिक वातावरण के अनुरूप था, लेकिन ऐसा वातावरण बहुत दिन तक रह नहीं सका। देश में राजनीतिक जागृति दिनोंदिन बढ़ रही थी।

बीसवीं शती के प्रथम दशक में ही भारत में राजनीतिक आन्दोलनों का तांता-सा लग गया। लार्ड कर्ज़न की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण परिस्थिति पहले से अधिक गम्भीर हो गई। उसके उद्दण्ड और कठोर व्यवहार के कारण भारतीयो की कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी। सभी राजनीतिक नेता अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति और अमानुषिक अत्याचारों के विरुद्ध स्वर उठाने लगे। शिक्षित वर्ग बौखला हो उठा। समाज-सुधारक और धार्मिक नेता अंग्रेजों-दासता से मुक्ति पाना अपना अधिकार समझने लगे। इस प्रकार स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए राजनीतिक आन्दोलन दिनों-दिनों तीव्र होता गया। भारतीय क्रान्तिकारियों को यह पक्का विश्वास हो गया कि केवल शांतिमय आन्दोलनों से भारत को आजादी नही मिल सकती और भारत की राष्ट्रीय आकांक्षाएं कभी पूर्ण नहीं हो सकती। अंग्रेजी शासन शक्ति पर आधारित होने के कारण उसका अंत शक्ति

1. कलकत्ता, हिन्दी क्लब बुलेटिन. सितंबर, 1903

के आधार पर ही किया जा सकता है, यह विचार जोर पकड़ने लगा। इस विचार से देश की राष्ट्रीय भावना में उग्रता दिखाई देने लगी। इस उग्र राष्ट्रीय नीति के नेता स्वदेशी को अपनाने और विदेशी के बहिष्कार के लिए दृढ़ संकल्प हो गए। इसी संदर्भ में स्वदेशी वस्तु, स्वराज्य, स्वभाषा और राष्ट्रीय शिक्षा को स्वाधीनता-प्राप्ति का आवश्यक अंग समझा जाने लगा। जहां राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र होता गया वहां सभी दिशाओं में स्वदेशीकरण की मांग भी प्रबल होती गई। विदेशी शिक्षा और विदेशी माध्यम का बहिष्कार होने लगा। अंग्रेजी माध्यम द्वारा भारतीयों को शिक्षा दिए जाने की बात को भारतीयों पर अन्याय समझा जाने लगा। इस राजनीतिक पृष्ठभूमि पर राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन ने भी जोर पकड़ा। अंग्रेजी भाषा को अवांछनीय समझा जाने लगा। राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन राजनीतिक असहयोग आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। देश-भर में राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई। राष्ट्रीय शिक्षा की विचारधारा अबाध गति से चलती रही और उसका राजनीतिक आन्दोलनों को चलाने में बड़ा हाथ रहा। इन सभी शिक्षण-संस्थाओं का राष्ट्रीय विचारधारा की प्रेरक शक्ति के रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस प्रकार इन राजनीतिक और राष्ट्रीय आन्दोलनों से भारतीय भाषाओं के प्रति, विशेषकर हिन्दी के प्रति, लोगों का प्रेम जाग्रत् हुआ। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में गौरवान्वित होने का अवसर भी मिला। इसी राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आगे चलकर देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था कांग्रेस ने हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा घोषित करने का साहस किया।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्त्व को सभी राष्ट्रीय नेताओं ने महसूस किया। यद्यपि स्वभाषा का आंदोलन इसके पहले भी प्रारम्भ हो चुका था तो भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्त्व की स्वीकृति उग्र राष्ट्रवादी स्वदेशी आन्दोलनों के द्वारा इसी संदर्भ में हुई। राष्ट्रीय संघर्ष में भारत की एक भाषा (हिन्दी) को महत्व देने की बात सभी लोगों ने महसूस की थी। श्री किशोरीदास वाजपेयी ने लिखा है—"इस संघर्ष के फलस्वरूप सच्ची राष्ट्रीयता का जागरण हो रहा था। राष्ट्रभाषा की चर्चा जोरों से चल रही थी। अनेक बंगाली, गुजराती, पंजाबी और महाराष्ट्रीय नेता यह उद्योग कर रहे थे कि अपने राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए, जो अन्तरप्रान्तीय व्यवहार का माध्यम बन सके और आगे चलकर जब देश स्वतंत्र हो, यही अपनी राष्ट्रभाषा अंग्रेजी भाषा का स्थान ग्रहण करके समस्त देश की केन्द्रीय सरकार की भाषा बने।"[1]

1 राष्ट्रभाषा का इतिहास, पृ० 18-19

एक भारतीय भाषा का महत्व केवल स्वदेश में ही नहीं, विदेश में भी भारतीय क्रान्तिकारी अनुभव करने लगे थे। इन्ही दिनों विदेशों में भारतीय क्रान्तिकारी दलों की भी स्थापना हो चुकी थी। उनमें महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब, गुजरात आदि सभी प्रदेशों के युवा संगठित हो गए थे। उनमें राष्ट्रीयता और राष्ट्रप्रेम की भावना तीव्रतम हो गई थी। राष्ट्रप्रेम के अन्तर्गत राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनकी आस्था भी बढ़ गई। वीर सावरकर के नेतृत्व में विदेश में संगठित एक सशक्त क्रान्तिकारी दल ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रयोग का संकल्प किया था।

सभी राजनीतिक आन्दोलनों का सीधा सम्बन्ध जनता से था और इसलिए जनता की भाषा को महत्त्व देने के पक्ष में आवाज बुलन्द हुई। राष्ट्रीय संघर्ष में हिन्दी का संघर्ष भी जुड़ गया। उत्तर भारत के उन प्रान्तों में, जिनकी जनता की भाषा हिन्दी थी, हिन्दी को अदालत की भाषा के रूप मे मान्यता देने के लिए संघर्ष चला, वहां बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी की पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए हिन्दी का संघर्ष राष्ट्रीय संघर्ष का एक अंग बन गया। सन् 1917 में लोकमान्य तिलक आदि नेताओं ने होमरूल आन्दोलन चलाया। इन्ही दिनों में गांधीजी भी कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे। उन्होंने कांग्रेस को सर्वसाधारण के सहयोग की प्रेरणा दी। गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि स्वाधीनता-प्राप्ति के आन्दोलन को सफल बनाने के लिए सभी भारतीय भाषाओं को अपनाने की आवश्यकता है। गांधीजी की प्रेरणा से अनेक राष्ट्रीय शिक्षणालय स्थापित किए गए। जिनमें भारतीय भाषाओं और हिन्दी को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। इस प्रकार राजनीतिक नेताओं को विश्वास हो गया कि स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए एक भारतीय भाषा की नितान्त आवश्यकता है।

भारत की जिन राजनीतिक संस्थाओं एवं नेताओं ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का समर्थन कर हिन्दी के आन्दोलन को मूल्यवान योगदान दिया, उनमें अखिल भारतीय कांग्रेस और उसके नेताओं का अन्यतम स्थान है।

कांग्रेस द्वारा हिन्दी का समर्थन

भारत में जिस राजनीतिक चेतना का सूत्रपात हुआ था उसके परिणामस्वरूप अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उद्देश्य में उसे सफलता मिली। कांग्रेस के जन्म के पहले देश में कुछ ऐसे संगठन भी थे जिनका उद्देश्य केवल सुशिक्षित वर्ग को संगठित करके शासन में सुधार करना था। इनमें सबसे प्राचीन संगठन 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन' था जिसकी स्थापना कलकत्ता में 1851 में हुई थी। अखिल भारतीय स्तर पर एक संगठन की स्थापना श्री सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने कलकत्ता में की जिसका नाम 'नेशनल

लीग' रखा गया। इन सभी संस्थाओं की स्थापना से यह बात स्पष्ट हो गई थी कि देश में राष्ट्रीय जागृति आ चुकी थी और अखिल भारतीय स्तर पर किसी संगठन का विचार भारतवासियों में दृढ़ हो चुका था। इस विचार को कार्यान्वित करने का श्रेय श्री एलन आस्ट्रेवियन ह्यूम नामक एक अंग्रेज को है। उन्होंने 'इण्डियन नेशनल यूनियन' नाम की एक राजनीतिक संस्था की स्थापना सन् 1884 में की। इसका उद्देश्य भारत में राष्ट्रीय विचारधारा के व्यक्तियों को संगठित करना था। दिसम्बर, 1885 में इस संस्था का अधिवेशन बम्बई में हुआ तथा इंडियन नेशनल यूनियन का नाम बदलकर 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' कर दिया गया। धीरे-धीरे यह संस्था शुद्ध रूप से भारत की एकमात्र मुख्य राजनीतिक सत्ता हो गई।

प्रारम्भ में कांग्रेस के नेताओं ने अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास रखा था। अतः उन्होंने अंग्रेजों के प्रति उदार नीति अपनाई। बीसवीं शती के प्रथम दशक में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनों में नई प्रवृत्तियों का प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति हुई। यह विश्वास पैदा हो गया कि अंग्रेजी के बिना भी उच्च शिक्षा दी जा सकती है। शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयकरण की इस भावना से देश में स्वराज्य की भावना पैदा हो गई। सन् 1906 के कांग्रेस अधिवेशन में दादाभाई नौरोजी ने स्वराज्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया। फिर कांग्रेस की नीति स्वराज्य के मार्ग पर अधिक दृढ़ हो गई। इसी सन्दर्भ में गांधीजी का पदार्पण भारतीय राष्ट्रीय जगत् में हुआ। उन्होंने देश की राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ किया था। पंजाब में जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद देश में विक्षोभ की लहर दौड़ पड़ी और गांधीजी ने अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध एक अहिंसात्मक युद्ध की घोषणा कर दी। सारे देश में असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ। स्वदेशी आन्दोलन के सन्दर्भ में स्वभाषा का महत्व भी महसूस किया जाने लगा। कांग्रेस के नेतृत्व में हिन्दी को एक अखिल भारतीय महत्त्व की भाषा समझा जाने लगा। चूंकि कांग्रेस का नेतृत्व गांधीजी के नेतृत्व में था, अतः भाषा के प्रश्न पर उनके विचारों का व्यापक प्रभाव पड़ा। सन् 1924 में कांग्रेस का उन्तालीसवां अधिवेशन बेलगांव में हुआ। इसके सभापति गांधीजी ने कांग्रेस के कार्यक्रमों में हिन्दी के प्रचार-कार्य को भी सम्मिलित कराया। इसीके परिणामस्वरूप कांग्रेस के 40वें अधिवेशन में कानपुर में हिन्दी-सम्बन्धी निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया।

"यह कांग्रेस तय करती है कि (विधान 33वीं धारा के नीचे लिखे अनुसार सुधारा जाए) कांग्रेस का, कांग्रेस की महासमिति का और कार्यकारिणी समिति

का कामकाज आम तौर पर हिन्दुस्तानी में चलाया जाएगा।"[1]

कांग्रेस के द्वारा ऐसा महत्त्वपूर्ण निर्णय करना हिन्दी के व्यापक प्रचार के लिए बड़ा ही सहायक बना। इस प्रकार कांग्रेस और महासमिति की कार्यवाही के लिए हिन्दी अपनाई जाने लगी। इसके बाद हिन्दी को और भी अधिक प्रोत्साहन मिला। हिन्दीभाषी कार्यकर्ता अधिकतर हिन्दी में ही भाषण देने लगे। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि कांग्रेस के अधिवेशनों का विवरण जो अभी तक केवल अंग्रेजी में ही छपता था, केवल हिन्दी मे छपने लगा। इस प्रकार धीरे-धीरे हिन्दी को निर्विवाद रूप से 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' की मान्यता दी जाने लगी।

सन् 1936 में कांग्रेस का अधिवेशन फाइजपुर मे हुआ। इसके सभापति पण्डित जवाहरलाल नेहरू थे। कांग्रेस अधिवेशन के विराट् मण्डप में डा० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में 'राष्ट्रभाषा सम्मेलन' का भी आयोजन किया गया। इसमें महात्मा गांधी, पुरुषोत्तमदास टण्डन और काका साहब कालेलकर आदि नेताओं ने भाग लिया। इस सम्मेलन मे सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि हिन्दुस्तान के ही विभिन्न प्रान्तों मे राष्ट्रभाषा हिन्दी जानने वालों की इतनी बड़ी संख्या है कि देश का अन्तर्प्रान्तीय काम राष्ट्रभाषा हिन्दी द्वारा ही होना उचित और हितकर है, अन्तर्प्रान्तीय कार्यों में अंग्रेजी भाषा का व्यवहार हमारे गौरव के विपरीत और राष्ट्रीय भावों की जागृति और उनके प्रचार के लिए हानिकर है। इसके बाद 1938 मे कांग्रेस के हरिपुरा में होने वाले अधिवेशन में एक और राष्ट्रभाषा सम्मेलन हुआ। इसकी अध्यक्षता श्री जमनालाल बजाज ने की। इस प्रकार कांग्रेस के अधिवेशनों मे हिन्दी का प्रबल समर्थन होता रहा तथा हिन्दी की राजनीतिक स्थिति दृढ़ हो गई।

कांग्रेस जैसे अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन द्वारा अहिन्दीभाषी प्रान्तों में हिन्दी का व्यापक प्रचार हुआ। अब हिन्दी का राजनीतिक आन्दोलन के साथ गहरा सम्बन्ध हो गया। पण्डित किशोरीदास वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है—"सन् 1901 से 1910 तक राष्ट्रभाषा की जो प्रगति हुई थी, उसमे अत्यधिक प्रेरणा राजनैतिक आन्दोलन से मिली थी। 1910 से 1920 तक फिर हिन्दी की प्रगति बड़े वेग से हुई, जो उसी जागरण का फल थी। 1921 से 23-24 तक महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन चला। इससे तो राष्ट्र भाषा की नीव पाताल तक चली गई और उस नीव पर अन्य प्रासाद की आधी इमारत भी खड़ी हो गई। फिर 1924 से 1930 तक राष्ट्रभाषा का प्रसार विद्युत् वेग से देश मे हुआ।···1931-34 के राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक बार राष्ट्रभाषा की भावना में शक्ति भर दी।···1942 से 44 तक जो राष्ट्रीय संघर्ष

1. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, महात्मा गांधी, पृ० 26

चला, उससे राष्ट्रभाषा का प्रवाह अत्यधिक वेगवान हो गया। अब तक भारत का कोई भी प्रदेश राष्ट्रभाषा से शून्य न रहा था।"[1]

इस प्रकार संपूर्ण भारत में राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण स्थापित हुआ। राष्ट्रभाषा हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार में कांग्रेस का योगदान अद्वितीय रहा है। कांग्रेस के सभी नेताओं ने हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा स्वीकार किया और इसके व्यापक प्रचार और प्रसार के लिए भरसक प्रयास किया। कांग्रेस के अहिन्दीभाषा नेताओं ने भी हिन्दी को देशव्यापी भाषा बनाने में पूरा सहयोग दिया। कांग्रेस के लोकप्रिय नेता सुभाषचन्द्र बोस के निम्नलिखित उद्‌गारों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कांग्रेस के सभी नेता हिन्दी के प्रबल समर्थक थे—"देश की एकता के लिए एक भाषा का होना जितना आवश्यक है, उससे अधिक आवश्यक है देश-भर के लोगों में देश के प्रति विशुद्ध प्रेम तथा अपनापन होना। अगर आज हिन्दी भाषा मान ली गई है तो वह इसलिए नहीं कि वह किसी प्रान्त विशेष की भाषा है, बल्कि इसलिए कि वह अपनी सरलता, व्यापकता तथा क्षमता के कारण सारे देश की भाषा हो सकती है।"[2]

यह निर्विवाद सत्य है कि कांग्रेस ने हिन्दी को बढ़ावा दिया और उसे राष्ट्रभाषा के रूप मे प्रतिष्ठापित करने में प्रयास किया। हिन्दी की राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने में कांग्रेस का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा था। हिन्दी जगत् इन राजनीतिक नेताओं का सदैव ऋणी रहेगा।

राजनीतिक नेताओं की हिन्दी सेवा

कांग्रेस जैसी अखिल भारतीय संस्था के द्वारा राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को जो मान्यता दी गई उसके फलस्वरूप हिन्दी-आन्दोलन को बड़ा ही बल प्राप्त हुआ। हिन्दी के साथ जो व्यापक राष्ट्रीय चेतना जुड़ी थी, उस चेतना को जाग्रत् करने मे अनेक राजनीतिक नेताओं ने बड़ी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। प्रान्तीयता की भावना से ऊपर उठकर राष्ट्रीय चेतना के आवेश मे आकर इन राष्ट्रीय नेताओं ने मुक्त कंठ से हिन्दी का समर्थन किया। इन राजनीतिक नेताओं की हिन्दी-सेवा अविस्मरणीय रहेगी।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है जिसे मैं प्राप्त करके रहूंगा' ऐसा

1 राष्ट्रभाषा का इतिहास, पृ० 84-85
2. हिन्दी आन्दोलन—हिन्दी और राष्ट्रीय एकता, पृ० 32

नारा देने वाले बालगंगाधर तिलक भारतीय राष्ट्रीयता के मूर्धन्य नेता थे। तिलक प्रारंभ से ही स्वदेशीपन के सशक्त समर्थक थे। राष्ट्रीय आन्दोलनों में तिलक द्वारा राष्ट्रभाषा के प्रश्न को भी बड़ा बल मिला। उनका विचार था कि हिन्दी ही ऐसी एकमात्र भाषा है जो राष्ट्रभाषा हो सकती है। हिन्दी का समर्थन करते हुए उनका कथन है—"यह आन्दोलन उत्तर भारत में केवल एक सर्वमान्य लिपि के प्रचार के लिए नहीं है। यह तो उस आन्दोलन का एक अंग है, जिसे मैं राष्ट्रीय आन्दोलन कहूंगा और जिसका उद्देश्य समस्त भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रीय भाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिए समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण अंग है। अतएव यदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाना चाहें तो सबके लिए समान भाषा से बढ़कर सशक्त अन्य कोई बल नहीं है।"[1]

तिलक जहां हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानते थे वहां देवनागरी को हिन्दी की लिपि मानते थे। तिलक ने राष्ट्रीय चेतना को प्रबल करने के लिए सन् 1903 में 'हिन्दी केसरी' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारंभ कर दिया। जन-साधारण तक अपने विचारों को पहुंचाने के लिए 'हिन्दी केसरी' का प्रकाशन करके तिलक ने इस बात का परिचय दिया कि देश के सामान्य जन तक पहुंचने के लिए केवल 'हिन्दी' ही एक सरल और सशक्त माध्यम है। तिलक ने, जो पहले अंग्रेजी में भाषण दिया करते थे, बाद में हिन्दी में भाषण देकर सभी राजनीतिक नेताओं के सम्मुख अपना आदर्श प्रस्तुत किया। राष्ट्रभाषा हिन्दी के आन्दोलन को सशक्त बनाने में तिलक का बड़ा योगदान रहा है।

लाला लाजपतराय

'पंजाब केसरी' के नाम से सुप्रसिद्ध लाला लाजपतराय कांग्रेस के मूर्धन्य नेता थे। वे एक महान देशभक्त, शिक्षाशास्त्री और ओजस्वी वक्ता थे। साथ ही वे महान मानवप्रेमी एवं प्रभावशाली पत्रकार भी थे। उन्होंने पंजाब के प्रमुख अंग्रेजी पत्र पंजाबी के साथ ही उर्दू दैनिक 'वन्देमातरम्' तथा अंग्रेजी साप्ताहिक 'दि पीपुल' की स्थापना की। कट्टर आर्य समाजी होने के कारण वे हिन्दू हितों के संरक्षक थे। इस कार्य में उन्होने महामना मदनमोहन मालवीय का भी साथ दिया। लालाजी उग्र राष्ट्रीय विचारधारा के प्रमुख नेता थे। उन्होंने अपने राष्ट्रीय विचारों की मूल प्रेरणा आर्य समाज से प्राप्त की थी। पंजाब के क्रान्ति-कारी नेता लालाजी को अपना 'गुरु' मानते थे।

पंजाब में हिन्दी के प्रचार का पूरा श्रेय लालाजी को ही है। जब उर्दू-हिन्दी

1. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 57, सम्वत् 2009, अंक 1, पृ॰ [illegible]

का विवाद बड़े ज़ोरों से चल रहा था तब लालाजी ने हिन्दी का बड़ा समर्थन किया और उन्हीं के प्रयत्न से पंजाब के शिक्षा-क्षेत्र में हिन्दी को स्थान मिला। उन्होंने अनेक शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की जिनमें हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य बनाया गया। लालाजी की प्रेरणा से ही पंजाब विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान मिला। पंजाब विश्वविद्यालय में आधुनिक भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन देने के हेतु जो नियम बनाए गए उन्हीं के अन्तर्गत हिन्दी की 'रत्न', 'भूषण' और 'प्रभाकर' परीक्षाओं का प्रचलन हुआ। इन परीक्षाओं में हजारों की संख्या में विद्यार्थी बैठे और पंजाब में हिन्दी के लिए बड़ा ही अनुकूल वातावरण बन गया।

पंडित मदनमोहन मालवीय

कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं में पंडित मदनमोहन मालवीय का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। मालवीयजी का राष्ट्रीय जीवन एक पत्रकार के रूप में प्रारंभ हुआ। उनके सभी राष्ट्रीय कार्यकलापों में हिन्दी-प्रचार का कार्य सर्वप्रथम रहा। सन् 1886 के कांग्रेस अधिवेशन में श्री मालवीयजी के भाषण से प्रभावित होकर कालाकांकर के राजा ने अपने हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' का उन्हें संपादक बनाया। उनकी हिन्दी-सेवा का कार्य यहीं से प्रारंभ हुआ। बाद में उन्होंने हिन्दी साप्ताहिक 'अभ्युदय' प्रारंभ किया जो आठ साल के बाद दैनिक के रूप में निकलने लगा। इसके अतिरिक्त मालवीय जी ने सन् 1910 में प्रयाग से 'मर्यादा' नामक हिन्दी मासिक पत्रिका और सन् 1933 से 'सनातन धर्म' नामक हिन्दी पत्र भी प्रारंभ कर दिया। मालवीयजी की प्रेरणा से और भी कई हिन्दी पत्रिकाओं का जन्म हुआ।

मालवीयजी की सेवा पत्रकारिता के अतिरिक्त शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण रही है। वे राष्ट्रीय शिक्षा को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते थे और उसमें हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य मानते थे। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए मालवीय जी ने 1917 में 'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' की स्थापना की। इस संस्था में प्रत्येक विद्यार्थी के लिए हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य था। इस विश्वविद्यालय में हिन्दी का अध्ययन करने के लिए अहिन्दी-प्रदेशों से सैकड़ों विद्यार्थी आए।

19वीं शती के अंतिम चरण में हिन्दी के लिए जो व्यापक संघर्ष हुआ उसके प्रमुख नेता महामना मालवीयजी ही थे। मालवीयजी के अथक परिश्रमों के परिणामस्वरूप ही अदालतों में नागरी को प्रवेश मिला। अदालतों में हिन्दी के प्रवेश का श्रेय मालवीयजी को ही है। इससे हिन्दी की राजनीतिक स्थिति दृढ़ हुई।

मालवीयजी ने सन् 1893 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना में

पूर्ण सहयोग दिया। विविध प्रकार से मालवीयजी की सेवा ने हिन्दी में सारा जीवन अर्पित किया था। देश की सर्वप्रमुख राजनीतिक संस्था कांग्रेस से भी उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्नीसवीं शती के अंतिम और बीसवीं शती के प्रथम चरण में मालवीयजी के द्वारा हिन्दी-आन्दोलन को बड़ा बल प्राप्त हुआ।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

पंडित मालवीयजी के उत्तराधिकारी के रूप में पुरुषोत्तमदास टण्डनजी ने जो तन-मन से हिन्दी की सेवा की है वह अप्रतिम है। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कर्णधार थे और उनके द्वारा हिन्दी-प्रचार के कार्य को बड़ी गति मिली। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जन्मदाताओं मे से थे। पंडित मालवीयजी के अन्यतम सहायक के रूप में उन्होंने सम्मेलन की स्थापना और उसके उद्देश्यों को कार्यान्वित करने में बहुत ही सराहनीय कार्य किए। साहित्य सम्मेलन के विविध अधिवेशनों के अनेक बार वे सभापति बने और उन्हीकी प्रेरणा से गांधीजी का सम्मेलन से सम्बन्ध स्थापित हुआ।

गांधीजी और टण्डनजी में हिन्दी और हिन्दुस्तानी के प्रश्न को लेकर मतभेद हुआ। टण्डनजी हिन्दी और नागरी लिपि के प्रबल समर्थक रहे। चूंकि गांधीजी 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक थे अतः वे सम्मेलन से त्यागपत्र देकर अपने पक्ष और नीति पर अडिग रहे। सम्मेलन के द्वारा हिन्दी-प्रचार के कार्य को तीव्र करने में टण्डनजी का बड़ा हाथ रहा है। टण्डनजी ने अपना सारा जीवन हिन्दी की सेवा और हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि मे अर्पित किया। टण्डनजी की प्रेरणा से अनेकानेक हिन्दी-प्रेमी हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र मे जुट गए। इस प्रकार टण्डनजी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रहरी, सजग राष्ट्रीय नेता और कुशल साहित्यकार थे।

डा० राजेन्द्रप्रसाद

हिन्दी-सेवी राष्ट्रीय नेताओं में देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादजी का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। गांधीजी के परम भक्त होने के कारण बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने देश के अन्य राजनीतिक कार्यों मे जिस प्रकार रुचि दिखाई, उसी प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार मे भी विशेष दिलचस्पी दिखाई। कलकत्ता मे स्थापित बिहारियो की एक छोटी-सी साहित्यिक संस्था 'हिन्दी भाषा परिषद' से उनका पहला संपर्क हुआ। फिर हिन्दी आन्दोलन के प्रमुख कर्णधारों से उनका संबंध स्थापित हुआ। हिन्दी साहित्य सम्मेलनों और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के साथ उनका घनिष्ठ संबंध हुआ। विविध हिन्दी सम्मेलनों के ये सभापति रहे और देश की अधिकांश हिन्दी सेवी संस्थाओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध

रहा। गांधीजी के सच्चे अनुयायी के रूप में राजेन्द्र बाबू ने 'हिन्दुस्तानी' का समर्थन किया और हिन्दी और हिन्दुस्तानी में कोई अन्तर नहीं माना। हिन्दी साहित्य सम्मेलन से इनका मतभेद होने पर भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में वे निरन्तर उत्साह लेते रहे।

हिन्दी के प्रति इनका सबसे बड़ा योगदान और रचनात्मक कार्य तो इनके भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष बनने के बाद महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में भाषा के प्रश्न को दूरदर्शिता से सुलझाकर हिन्दी को उचित स्थान दिलाने का श्रेय डा० राजेन्द्रप्रसाद को है। भारतीय संविधान के हिन्दी रूपान्तर तैयार करवाने और संविधान की भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक कोष तैयार करवाने में उन्होंने बड़ा ही स्तुत्य कार्य किया है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति के पद से डा० राजेन्द्रप्रसाद ने जो हिन्दी की सेवा की है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके कार्यकाल में सरकारी स्तर पर हिन्दी को मान्यता मिली और हिन्दी की अभिवृद्धि हुई। सरकारी कामकाज में हिन्दी को स्थान दिलाने वाले राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ही थे। केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के हिन्दी प्रशिक्षण के पीछे भी इन्हीकी प्रेरणा थी। हिन्दी को राजभाषा का दर्जा देकर उसके व्यापक प्रचार के लिए बाबूजी ने जो उचित कदम उठाए, वे हिन्दी-आन्दोलन को सक्रिय बनाने में सबसे अधिक सहायक सिद्ध हुए।

काका साहब कालेलकर

हिन्दी-प्रचार आंदोलन को जिन अहिन्दीभाषी नेताओं से विशेष बल मिला, उनमें काका साहब कालेलकर का नाम प्रमुख है। उन्होंने राष्ट्रभाषा के प्रचार को राष्ट्रीय जीवन का अंग मानते हुए सदैव उसका समर्थन और ठोस प्रचार किया। राष्ट्रभाषा की समस्या पर गंभीर विचार के बाद ही इन्होंने हिन्दी अर्थात् हिन्दुस्तानी को भारत की राष्ट्रभाषा के योग्य माना और उसके लिए दिन-रात प्रयत्न किया। दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार के वे कर्णधार रहे। फिर गुजरात में रहकर हिन्दी-प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाया।

काका साहब राष्ट्रभाषा हिन्दी के संबंध में गांधीजी के सच्चे अनुयायी थे, इसलिए वे हिन्दुस्तानी के कट्टर समर्थक थे। जब गांधीजी ने साहित्य सम्मेलन से हिन्दुस्तानी के प्रश्न को लेकर अपना संबंध विच्छेद कर दिया तब काका साहब भी हिन्दुस्तानी के दूसरे समर्थक नेताओं के साथ सम्मेलन से अलग हुए। जब 1942 में वर्धा में हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना हुई तो काका साहब ने हिन्दुस्तानी के प्रचार के लिए सारे देश का भ्रमण किया। काका साहब की सेवाओं से हिन्दी-आन्दोलन शक्तिशाली बना।

सेठ गोविन्ददास

अन्यतम देशभक्त और राष्ट्रभाषा के प्रहरी के रूप में सेठ गोविन्ददास जी ने राजनीति और साहित्य-साधना आदि क्षेत्रों में महान सफलता प्राप्त की। सेठजी ने साहित्य की सभी विधाओं पर उच्चकोटि का साहित्य लिखा। वे हिन्दी के मूर्धन्य नाटककार के रूप मे माने जाते हैं। अपने युवाकाल मे ही कई हिन्दी पत्रिकाएं प्रारम्भ कर सेठजी ने हिन्दी के प्रति अपने अगाध प्रेम को प्रस्तुत किया था।

सन् 1916 से ही राष्ट्रभाषा आन्दोलन में सेठजी ने भाग लेना शुरू किया। जिस समय भारतीय संविधान सभा मे हिन्दी के प्रश्न पर गहरा मतभेद उत्पन्न हुआ, उस समय हिन्दी-हिन्दुस्तानी नाम की समस्या को हल करने में सेठजी ने बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिलाने में जिन लोगों ने प्रयास किया उनमें सेठजी का नाम सर्वप्रमुख है। सेठजी ने कई प्रकार से हिन्दी की निरन्तर सेवा की है। भारतीय लोकसभा के सदस्य के रूप में उन्होंने हिन्दी के प्रसार के लिए जो कदम उठाए, वे हिन्दी को राजभाषा का सम्माननीय स्थान दिलाने में सहायक सिद्ध हुए। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप मे उन्होंने हिन्दी को गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में सतत् प्रयत्न किया।

यहां हमने हिन्दी-आन्दोलन को शक्ति पहुंचाने वाले कुछ राजनीतिक नेताओं का उल्लेख किया है। महात्मा गांधीजी ने हिन्दी-आन्दोलन का नेतृत्व करके हिन्दी के प्रचार-प्रसार में जो महान सेवा की है, उसकी चर्चा हम अलग से (अगले अध्याय) करेंगे। इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक नेताओं के नाम गिनाए जा सकते हैं, जिन्होंने हिन्दी का प्रबल समर्थन किया और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित करने में अपना अमूल्य सहयोग दिया। (डा० शानवती दरबार ने अपनी पुस्तक 'भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा' में इसका विस्तृत विवेचन किया है।)

4

हिन्दी आन्दोलन और गांधीजी का नेतृत्व

हिन्दी के साथ महात्मा गांधी का नाम उसी अमिट अमरता के साथ जुड़ा हुआ है जिस प्रकार देश की आजादी के साथ। दक्षिण अफ्रीका में अपने सत्याग्रह के सफल परीक्षणों के बाद स्वदेश लौटते ही एक ओर उन्होंने देश की स्वाधीनता के कार्यक्रम का शंखनाद किया, तो दूसरी लोकमानस और उसकी स्वतंत्रता पर भी बल दिया, क्योंकि उनका अनुभव था कि पराधीनता चाहे वह राजनैतिक क्षेत्र की हो अथवा भाषाई क्षेत्र की, दोनों ही एक-दूसरे की पूरक और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सदा परमुखापेक्षी बनाए रखने वाली हैं।[1]

भारत के राजनैतिक जीवन में प्रवेश करने के पूर्व ही गांधीजी का यह दृढ़ विश्वास था कि जब तक अंग्रेजी के प्रति मोह बना रहेगा तब तक भारत स्वाधीन नहीं होगा और जब तक हिन्दी का प्रचार सम्पूर्ण भारत में नहीं होगा तब तक देश की राष्ट्रीय एकता भी मजबूत नहीं होगी। फरवरी, 1916 में मालवीयजी के निमंत्रण पर वे काशी पधारे। उनका एक व्याख्यान नागरी प्रचारिणी सभा में और दूसरा हिन्दू विश्वविद्यालय में हुआ था। इन दोनों व्याख्यानों में गांधीजी ने हिन्दी के प्रचलन और प्रयोग पर ज़ोर दिया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में उन्होंने कहा—"आप शायद नहीं जानते कि मेरे साथ तीस-पैंतीस स्त्री-पुरुष हैं। उन सबकी प्रतिज्ञा है कि वे बराबर हिन्दी का अभ्यास करेंगे। इस सभा के जो अधिकारी वकील हैं, उनसे मैं पूछता हूं कि आप अदालत में अपना काम अंग्रेजी में चलाते हैं, तो मैं कहूंगा कि हिन्दी में चलाए। जो युवक पढ़ते हैं, उनसे भी मैं कहूंगा कि वे इतनी प्रतिज्ञा करें कि हम आपस का पत्र व्यवहार हिन्दी में करेंगे। साहित्य-विहीन जाति को स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। इसलिए लोगों को चाहिए कि वे अंग्रेजी के उच्च विचार और नये ख्याल लोगों के सामने रखें। कल डाक्टर जगदीशचन्द्र बसु व्याख्यान देंगे। यदि वे बंगला में व्याख्यान देंगे तो मेरा कोई झगड़ा नहीं है, पर यदि अंग्रेजी में दें तो उनसे मेरा झगड़ा है। नागरी प्रचारिणी सभा का कर्तव्य है कि जो पुस्तकें डाक्टर जगदीशचन्द्र बसु ने अंग्रेजी में लिखी है, उनका वह हिन्दी में अनुवाद करे। जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो, वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई

1. गोविन्ददास : गांधी हिन्दी दर्शन, पृ० 306

भाषा ठहर नहीं सकती। हमारा मुख्य काम हिन्दी सीखना है, पर तो भी हम अन्य भाषाएं भी सीखेंगे।"[1]

गांधीजी यह अच्छी तरह समझते थे कि देश की जनता के भीतर अगर अपनी भाषाओं के लिए स्वाभिमान पैदा नहीं हुआ तो हमारा समस्त जीवन स्वाभिमान से हीन रह जाएगा। गांधीजी का यह दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएं ही होनी चाहिए और राजनैतिक संगठनों का काम भी भारतीय भाषाओं में चलना चाहिए। 6 फरवरी, 1914 को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में बोलते हुए उन्होंने कहा—"अंग्रेजी भाषा हमारे राष्ट्र के पांव में बेड़ी बनकर पड़ी हुई है···जरा सोचकर देखिए कि अंग्रेजी भाषा में अंग्रेज बच्चों के साथ होड़ कराने में हमारे पर कितना वजन पड़ता है। पूना के कुछ प्रोफेसरों से मेरी बात हुई। उन्होंने बताया कि चूंकि हर भारतीय विद्यार्थी को अंग्रेजी की मार्फत ज्ञान संपादन करना पड़ता है, इसलिए उसे अपने बेशकीमती बरसों में से, कम से कम, छह वर्ष अधिक बरबाद करने पड़ते हैं। हमारे स्कूलों और कालेजों से निकलने वाले विद्यार्थियों की संख्या में इस छः का गुणा कीजिए और फिर देखिए कि राष्ट्र के कितने हजार वर्ष बरबाद हो चुके हैं। हमपर आरोप लगाया जाता है कि हममें पहल करने का माद्दा नहीं है। हो भी कैसे सकता है? यदि हमें एक विदेशी भाषा पर अधिकार पाने के लिए जीवन के अमूल्य वर्ष लगा देने पड़ें, तो फिर और हो क्या सकता है?"[2]

गांधीजी के भीतर ज्यों-ज्यों राष्ट्रीयता की आग सुलगती जाती थी, त्यों-त्यों वे देश की एकता को मजबूत करने के रास्ते खोजने लगते थे और ज्यों-ज्यों उनके भीतर भारत की राष्ट्रीय एकता की चिन्ता बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों उनका ध्यान हिन्दी पर केन्द्रित होता जाता था। मई, 1917 ई० में उन्होंने अपना एक छोटा-सा निबन्ध प्रकाशित करवाया था, जिसमें उन्होंने कहा था—"हिन्दी ही हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है, यह बात निर्विवाद सिद्ध है। यह कैसे हो, केवल यही विचार करना है। जिस स्थान को अंग्रेजी भाषा आजकल लेने का प्रयत्न कर रही है और जिसे लेना उसके लिए असंभव है, वही स्थान हिन्दी को मिलना चाहिए, क्योंकि हिन्दी का उसपर पूर्ण अधिकार है। यह स्थान अंग्रेजी को नहीं मिल सकता, क्योंकि वह विदेशी भाषा है और हमारे लिए बड़ी कठिन है। अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी सीखना बहुत सरल है। बंगला, बिहारी, उड़िया, मराठी,

1. संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड 16, पृ० 211-212
2. वही, खण्ड 13, पृ० 213

गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी और सिन्धी हिन्दी की बहिनें हैं। उक्त भाषाओं के बोलने वाले थोड़ी-बहुत हिन्दी समझ तथा बोल लेते हैं। इन सबको मिलाने से संख्या प्रायः 22 करोड़ हो जाती है। जिस भाषा का इतना प्रचार है, उसकी बराबरी करने के लिए अंग्रेजी, जिसे एक लाख हिन्दुस्तानी भी ठीक-ठीक बोल नहीं सकते, क्योंकर समर्थ हो सकती है!"[1]

गांधीजी के विचार में हिन्दी सीखना हर एक भारतीय के लिए एक राष्ट्रीय धर्म है। राष्ट्रनिर्माण के रचनात्मक कार्यों में उन्होंने हिन्दी-प्रचार को भी स्थान दिया। सन् 1917 ई० में उन्होंने एक परिपत्र निकालकर हिन्दी सीखने के काम को बहुत अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने कहा—"जो स्थान इस समय अनुचित ढंग से अंग्रेजी भोग रही है, वह स्थान हिन्दी को मिलना चाहिए। इस विषय में मतभेद होने का कोई कारण न होने पर भी मतभेद होना दुर्भाग्य की बात है। शिक्षित वर्ग को एक भाषा अवश्य चाहिए और वह हिन्दी ही हो सकती है। हिन्दी के द्वारा करोड़ों व्यक्तियों में आसानी से काम किया जा सकता है। इसलिए उसे उचित स्थान मिलने में जितनी देर हो रही है, उतना ही देश का नुकसान हो रहा है।"[2]

सन् 1917 ई० में भरुच में होने वाले गुजरात शिक्षा परिषद् के अधिवेशन के सभापति-पद से गांधीजी ने जो भाषण दिया उसमें उन्होंने बहुत ही स्पष्ट कर दिया कि भारत की राष्ट्रभाषा कौन-सी बन सकती है। गांधीजी के विचार में राष्ट्रभाषा के लिए निम्नलिखित लक्षण होने चाहिए :

1. अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।
2. यह जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत-से लोग उस भाषा को बोलते हों।
3. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवहार हो सकना चाहिए।
4. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।
5. उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।

"अंग्रेजी भाषा में इनमें से एक भी लक्षण नहीं है। पहला लक्षण आखिर में देना चाहिए था, लेकिन मैंने उसे पहला स्थान दिया है, क्योंकि ऐसा आभास होता है, मानो अंग्रेजी भाषा में यह लक्षण है। ज्यादा विचार करने पर हम देखेंगे कि आज भी अमलदारों के लिए यह भाषा सरल नहीं है। यहां के शासन-विधान की कल्पना यह है कि अंग्रेज़ लोग कम होते जाएंगे, और सो भी इस हद

1. संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड 13, पृ० 424
2. वही, पृ० 425

तक कि आखिर में एक वायसराय और अंगुलियों पर गिने जाने वाले कुछ अंग्रेज अमलदार ही यहां रह जाएंगे। यही तादाद आज भी हिन्दुस्तानियों की ही है और वह बढ़ती ही जाएगी। इन लोगों के लिए हिन्दुस्तान की किसी भी भाषा के मुकाबले अंग्रेजी मुश्किल है, इस बात को तो सभी कोई कबूल करेंगे।

"दूसरे लक्षण पर विचार करने पर हमें पता चलता है कि जब तक अंग्रेजी भाषा को हमारा जनसमाज बोलने न लग जाए, जब तक यह मुमकिन न हो, तब तक हमारा धार्मिक व्यवहार अंग्रेजी में चल ही नहीं सकता। समाज में अंग्रेजी का इस हद तक फैल जाना नामुमकिन मालूम होता है।

"तीसरा लक्षण अंग्रेजी में हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह भारतवर्ष के बहुजन-समाज की भाषा नहीं है। चौथा लक्षण भी अंग्रेजी में नहीं है, क्योंकि सारे राष्ट्र के लिए वह उतनी आसान नहीं।

"पांचवें लक्षण का विचार करने से हमें पता चलता है कि आज अंग्रेजी भाषा को जो सत्ता प्राप्त है, वह क्षणिक है। चिरस्थायी स्थिति तो यह है कि हिन्दुस्तानी में जनता के राष्ट्रीय कामों में अंग्रेजी भाषा की जरूरत कम ही रहेगी। हां, अंग्रेजी साम्राज्य के व्यवहार में उसकी जरूरत होगी। यह दूसरी बात है कि वह साम्राज्य के राज्य-व्यवहार (डिप्लोमेसी) की भाषा होगी। उस व्यवहार के लिए अंग्रेजी की जरूरत रहेगी। हम कहीं भी अंग्रेजी भाषा से द्वेष नहीं करते। हमारा आग्रह तो यही है कि हम उसे उसकी मर्यादा से बाहर बढ़ने देना नहीं चाहते। साम्राज्य की भाषा तो अंग्रेजी ही रहेगी, और इस कारण हम अपने मालवीयजी, शास्त्रीजी और बैनर्जी वगैरह को उसे सीखने के लिए बाध्य करेंगे और यह विश्वास रखेंगे कि दूसरे देशों में हिन्दुस्तान की कीर्ति फैलाएंगे, किन्तु राष्ट्र की भाषा अंग्रेजी नहीं हो सकती। अंग्रेजी को राष्ट्र-भाषा बनाना देश में 'एस्पेरेण्टो' को दाखिल करना है। अंग्रेजी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की कल्पना हमारी निर्बलता की निशानी है। 'एस्पेरेण्टो' का प्रयास निरे अज्ञान का सूचक होगा। तो फिर किस भाषा में ये पांच लक्षण मिलते हैं ? हमें यह कबूल कर ही लेना होगा कि हिन्दी भाषा में ये सब लक्षण हैं।"[1]

गांधीजी के विचार में अंग्रेजी की शिक्षा देने से देश गुलामी की गर्त में पड़ जाएगा। अंग्रेजी शिक्षा के सम्बन्ध में उनका मन्तव्य इस प्रकार है—"करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। उसने इसी इरादे से अपनी योजना बनाई थी, ऐसा मैं सुझाना नहीं चाहता;

1. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड 14, पृ॰ 28-29

लेकिन उसके काम का नतीजा यही निकलता है।...यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने देश में अगर मुझे इन्साफ पाना हो तो मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना पड़े। यह कुछ कम दंभ है? यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है? इसमें मैं अंग्रेजों का दोष निकालूं या अपना? हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग हैं। प्रजा की हाय अंग्रेजी पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम लोगो पर पड़ेगी।"[1]

गांधीजी अंग्रेजी माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा का जितना विरोध करते थे, इसका ज्वलंत प्रमाण गांधीजी के इस कथन से मिल जाता है—"अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिये दी जाने वाली शिक्षा को बन्द कर दूं। हमारे लड़कों और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरन्त बदलवा दू या उन्हें बर्खास्त करा दूं। मैं पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी का इन्तजार नहीं करूंगा, वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे अपने-आप चली आएंगी। यह एक ऐसी बुराई है, जिसका तुरन्त इलाज होना चाहिए।"

राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में गांधीजी का दृढ मत यह था कि राष्ट्रभाषा का प्रयोग न करना राष्ट्र की हत्या करने के बराबर है। राष्ट्रसेवा के लिए राष्ट्रभाषा का प्रयोग बहुत ही आवश्यक है। गांधीजी ने कहा—"देश-सेवा करने के लिए उत्सुक सब हैं, परन्तु राष्ट्र-सेवा तब तक संभव नहीं, जब तक कोई राष्ट्र-भाषा न हो। दुःख की बात है कि हमारे बंगाली भाई राष्ट्रभाषा का प्रयोग न करके राष्ट्रीय हत्या कर रहे हैं, जबकि इसके बिना देश की आम जनता के हृदयों तक नहीं पहुंचा जा सकता। इस अर्थ मे बहुत लोगों के द्वारा हिन्दी को काम में लाया जाना मानवतावाद के क्षेत्र की बात हो जाती है।"[2]

सन् 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन मे सभापति-पद से गांधीजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का समर्थन करते हुए जो भाषण दिया वह ऐतिहासिक महत्त्व का भाषण रहा। इस भाषण मे व्यक्त गांधीजी के उद्‌गारों ने हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन को नई शक्ति प्रदान की। इस भाषण में गांधीजी ने यह घोषित किया कि हिन्दी के बिना हमारा स्वराज्य निरर्थक है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्बन्ध मे गांधीजी के इन्दौर-भाषण का सारांश इस प्रकार है—"यह भाषा का विषय बड़ा भारी और बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यदि सब नेता सब काम छोड़कर केवल इसी विषय पर लगे रहें, तो बस है।"

"शिक्षित वर्ग, जैसा कि माननीय पंडितजी (मालवीयजी) ने अपने पत्र

1. महात्मा गांधीजी : हिन्द स्वराज्य, 1909
2. महात्मा गांधीजी : अमृत बाजार पत्रिका, 2.9.1918

मे दिखाया है, अंग्रेज़ी के मोह में पड़ गया है और अपनी राष्ट्रीय मातृभाषा से उसे असन्तोष हो गया है।

" हमे ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष मे राजकीय सभाओं में, कांग्रेस में, प्रान्तीय भाषाओ में और अन्य समाज और सम्मेलनो में अंग्रेज़ी का एक भी शब्द सुनाई नही पड़े। हम अंग्रेज़ी का व्यवहार बिलकुल त्याग दें।··· आप हिन्दी को भारत की राष्ट्र भाषा बनने का गौरव प्रदान करें।

" हिन्दी भाषा की व्याख्या का थोड़ा-सा ख्याल करना आवश्यक है। मैं कई बार व्याख्या कर चुका हूं कि हिन्दी भाषा वह भाषा है, जिसको उत्तर में हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिन्दी एकदम संस्कृतमयी नहीं है। न वह एकदम फारसी शब्दों से लदी हुई है। देहाती बोली मे मैं जो माधुर्य देखता हूं, वह न लखनऊ के मुसलमान भाइयों की बोली में है, न प्रयाग के पंडितों की बोली में पाया जाता है। भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहज में समझ ले।

" हिन्दू-मुसलमानो के बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिन्दी व उर्दू भाषा के भेद मे है। हिन्दुओं की बोली से फारसी शब्दों का सर्वथा त्याग और मुसलमानों की बोली से संस्कृत का सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनों का स्वाभाविक संगम गंगा-जमुना के संगम-सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिन्दी-उर्दू के झगड़ों में पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे। लिपि की कुछ तकलीफ जरूर है। मुसलमान भाई अरबी लिपि में ही लिखेंगे, हिन्दू बहुत करके नागरी में लिखेंगे। राष्ट्र में दोनों को स्थान मिलना चाहिए। अमलदारों को दोनों लिपियों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इसमें कुछ कठिनाई नही है। अन्त में जिस लिपि मे ज्यादा सरलता होगी, उसकी विजय होगी।

" आज भी हिन्दी से स्पर्धा करने वाली कोई दूसरी भाषा नहीं है। हिन्दी-उर्दू का झगड़ा छोड़ने से राष्ट्र भाषा का सवाल सरल हो जाता है। हिन्दुओं को फारसी के शब्द थोड़े-बहुत जानने पड़ेंगे। इस्लामी भाइयों को संस्कृत शब्दों का ज्ञान-संपादन करना पड़ेगा। ऐसे लेन-देन से इस्लामी भाषा का बल बढ़ जाएगा और हिन्दू-मुसलमानों की एकता का एक बहुत बड़ा साधन हमारे हाथ में आ जाएगा। अंग्रेज़ी भाषा का मोह दूर करने के लिए इतना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा कि हमे लाज़िम है कि हम हिन्दी-उर्दू का झगड़ा न उठावें।"[1]

गांधीजी ने इन्दौर-सम्मेलन के मंच से अपनी हिन्दी-विषयक कल्पना की जो व्याख्या प्रस्तुत की, वह लोगों को बहुत पसन्द आई। इसी सम्मेलन में

1. संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड 14, पृ० 279-80

यह प्रस्ताव (इस प्रस्ताव का आशय यह था कि प्रति वर्ष छह दक्षिण भारतीय युवक हिन्दी सीखने को प्रयाग भेजे जाएं और हिन्दी भाषा-भाषी छह युवकों को दक्षिणी भाषाएं सीखने तथा साथ-साथ वहां हिन्दी का प्रचार करने के लिए दक्षिण भारत में भेजा जाए।) भी पास हुआ कि दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार के कार्य को अधिक लगन के साथ किया जाए। उस समय दक्षिण के चारों राज्य एक ही मद्रास प्रान्त के अंग थे और गांधीजी राष्ट्रभाषा की दृष्टि से मद्रास की कठिनाई को सबसे ऊपर मानते थे। सबसे कठिन मामला द्रविड़ भाषाओं के लिए है। वहां तो कुछ प्रयत्न ही नहीं हुआ है। हिन्दी भाषा सीखने वाले शिक्षकों को तैयार करना चाहिए। दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार के लिए इन्दौर सम्मेलन ने छः सदस्यों की एक समिति बनाई जिसमें गांधीजी और टण्डनजी भी थे। इसी सम्मेलन में दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार के लिए महाराज होलकर और सेठ सर हुकुमचन्द ने दस-दस हजार रुपयों की राशि दान में दे दी। सम्मेलन में पारित प्रस्ताव के अनुसार हिन्दी सीखने के लिए दक्षिण के छः नवयुवक उत्तर भारत बुलाए गए। इन्दौर सम्मेलन के बाद गांधीजी ने एक छोटा-सा लेख समाचार-पत्रों को भेजा जिसमें उन्होंने हिन्दी-प्रचार समिति की स्थापना का उल्लेख किया। सम्मेलन के बाद गांधीजी ने दक्षिण के कुछ प्रमुख नेताओं के साथ लिखा-पढ़ी की और अखबारों में लेख भी लिखे।

गांधीजी के हिन्दी-सम्बन्धी विचारों को पढ़कर दक्षिण के कुछ उत्साही देश-प्रेमी युवकों का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने हिन्दी पढ़ने की इच्छा प्रकट करते हुए गांधीजी से प्रार्थना की कि हिन्दी पढ़ाने के लिए एक सुयोग्य अध्यापक को दक्षिण में भेजा जाए। इस प्रार्थना पर गांधीजी चुप नहीं रह सकते थे, न वे इस बात का इन्तजार कर सकते थे कि दक्षिण जाने को तैयार युवक कब और कहां मिलेंगे। निदान, हिन्दी की सेवा के लिए उन्होंने अपने सबसे छोटे और मेधावी पुत्र स्वर्गीय देवदास गांधी को मद्रास भेज दिया।

मद्रास में हिन्दी का पहला वर्ग मई, सन् 1918 में ही खुला और उसका उद्घाटन समारोह 'होमरूल लीग' के दफ्तर गोखले हॉल में मनाया गया। इस समारोह की अध्यक्षता डा० सी० पी० रामास्वामी अय्यर ने की थी और उसका उद्घाटन श्रीमती एनी बेसेंट ने किया था। अध्यक्ष और उद्घाटिका, दोनों ने दक्षिण में हिन्दी-प्रचार-योजना की भूरि-भूरि प्रशंसा की और लोगों का आह्वान किया कि वे इस योजना को हर तरह से सफल बनाएं।

इन्दौर सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार दक्षिण के छः युवकों को हिन्दी सीखने के लिए प्रयाग जाना था। हिन्दी-प्रचार के लिए, हिन्दी सीखने के लिए गांधीजी से प्रेरित होकर प्रयाग जाने वालों में पं० हरिहर शर्मा, श्रीवन्देमातरम्

सुब्रह्मण्यम, श्री हरिप्रसाद द्विवेदी (वियोगी हरि) प्रमुख थे। गांधीजी की प्रेरणा से जब देवदास ने मद्रास में हिन्दी का प्रचार किया तब हिन्दी पढ़ने के लिए मद्रास के कुछ बहुत अच्छे लोग आए। मद्रास में जो हिन्दी-कार्य प्रारंभ हुआ उसका समर्थन श्रीमती एनी बेसेंट की पत्रिका 'न्यू इण्डिया' ने किया। इसके अतिरिक्त मद्रास के सुप्रसिद्ध दैनिक 'हिन्दू' और तमिल के विख्यात दैनिक 'आनन्द विकटन' ने भी हिन्दी का समर्थन किया। इन्दौर सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार गांधीजी की प्रेरणा से उत्तर भारत से हिन्दी-प्रचार के लिए जो युवक दक्षिण गए उनमें पण्डित अवधनन्दन, पं० रामानन्द शर्मा, पं० ऋषिकेश शर्मा, पं० रघुवरदयाल शर्मा, पं० देवदत्त विद्यार्थी तथा पंडित रामगोपाल शर्मा विशेष उल्लेखनीय हैं। दक्षिण में हिन्दी-प्रचार के काम में जब तीव्रता आई तब आर्थिक सहायता भी उस काम के लिए प्राप्त हुई।

गांधीजी ने हिन्दी-प्रचार के कार्य को देश के तीन सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में स्थान दे दिया। गांधीजी अपनी भाषा-नीति का प्रचार बहुत पहले से ही करते आ रहे थे, लेकिन इन्दौर सम्मेलन के बाद उन्होंने हिन्दी के कार्य को राष्ट्रीय व्रत बना दिया और हर अवसर पर लोगों को यह समझाते रहे कि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाए बिना हमारी राष्ट्र-शक्ति कुंठित रहेगी। मद्रास मे हिन्दी-प्रचार को बढ़ावा देने के लिए गांधीजी भाषणों एवं लेखों का प्रयोग करते ही रहते थे। उन्होंने अपने दो भाषणों मे यह स्पष्ट किया—"जब आप भारत की राष्ट्रभाषा अर्थात् हिन्दी सीख लेंगे, तो आपके सामने हिन्दी में भाषण करने में मुझे बहुत खुशी होगी। यह आपके ऊपर है कि यदि चाहें तो मद्रास और अन्य स्थानों पर हिन्दी सीखने की जो सुविधा उपलब्ध है, उसका लाभ उठाएं। कब तक आप शेष भारत से अपने को बिलकुल अलग रखेंगे ?"

16 जून, सन् 1920 ई० की 'यंग इण्डिया' में उन्होने लिखा था—"मुझे पक्का विश्वास है कि किसी दिन हमारे द्रविड़ भाई-बहन, गंभीर भाव से, हिन्दी का अध्ययन करने लगेंगे। आज अंग्रेजी भाषा पर अधिकार प्राप्त करने के लिए वे जितनी मेहनत करते है, उसका आठवां हिस्सा भी हिन्दी सीखने में करें, तो बाकी हिन्दुस्तान, जो आज उनके लिए बन्द किताब की तरह है, उससे वे परिचित होंगे और हमारे साथ उनका ऐसा तारतम्य स्थापित हो जाएगा, जैसा पहले कभी नही था···कोई भी साधारण आदमी एक साल में हिन्दी सीख सकता है। मैं अपने अनुभव से यह कह सकता हूं कि द्रविड़ बालक बहुत आसानी से हिन्दी सीख लेते हैं। यह बात शायद ही कोई जानता हो कि दक्षिण अफ्रीका मे रहने वाले सभी तमिल-तेलुगु-भाषी लोग हिन्दी में खूब अच्छी तरह बातचीत

गांधीजी को इस बात पर प्रसन्नता हुई कि सम्मेलन ने हिन्दी की परिकल्पना को स्वीकार कर लिया। गांधीजी ने हिन्दुस्तानी का समर्थन करते हुए यह स्पष्टीकरण दिया—"पहला प्रस्ताव इस तथ्य पर जोर देता है कि हिन्दी प्रान्तीय भाषाओं को नष्ट नहीं करना चाहती, किन्तु उनकी पूर्तिरूप बनना चाहती है और अखिल भारतीयता के सेवा-क्षेत्र में हिन्दी बोलने वाले कार्यकर्ताओं के ज्ञान तथा उपयोगिता को बढ़ाती है। यह भाषा भी हिन्दी है, जो लिखी तो उर्दू में जाती है, पर जिसे मुसलमान और हिन्दू दोनों समझ लेते हैं। इस बात को स्वीकार करके सम्मेलन ने इस सन्देह को दूर कर दिया है कि उर्दू लिपि के प्रति सम्मेलन की कोई दुर्भावना है। तो भी सम्मेलन की प्रामाणिक लिपि तो देवनागरी ही रहेगी। वह तो मुसलमानों के इस अधिकार को स्वीकार करता है कि अब तक जिस उर्दू लिपि में वे हिन्दुस्तानी भाषा लिखते आ रहे हैं, उसमें अब भी लिख सकते हैं।"

हिन्दी-हिन्दुस्तानी विवाद और गांधीजी

गांधीजी ने जिस हिन्दुस्तानी की परिकल्पना की थी उसमें बड़ी गहराई का चिन्तन है। गांधीजी इस भाषा को भारत की राष्ट्रभाषा का स्थान देना चाहते थे जो आम तौर पर उत्तर भारत के हिन्दू और मुसलमान दोनों के द्वारा बोली जाती है और देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों में लिखी जाती है। गांधीजी ने हिन्दुस्तानी की कल्पना भारत की सांस्कृतिक एकता को ध्यान में रखकर की थी। "मानसिक ऊहापोह के क्रम में गांधीजी का तर्क यह रहा होगा कि यदि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी राष्ट्रभाषा हुई, तो मुसलमान, क्रिस्तान और सिक्ख तथा पारसी उस भाषा को हिन्दुत्व की भाषा समझकर उससे घबराएंगे। इसी तरह यदि अरबी-फारसी से भरी हुई भाषा राष्ट्रभाषा बनाई गई, तो उसे हिन्दू स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि हिन्दू केवल हिन्दीभाषी प्रान्तों में ही नहीं बसते, वे अहिन्दीभाषी प्रान्तों में भी बसते हैं। अतएव वे इस निष्कर्ष पर आ गए कि जैसे भारत मिश्रित संस्कृतियों का देश है, उसी प्रकार उसकी राष्ट्रभाषा भी हिन्दी और उर्दू का मिश्रित रूप होगा। आजादी की लड़ाई के दिनों में हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या ही प्रधान थी। अतएव भारत के सभी प्रान्तों में ऐसे लोग थे, जो यह चाहते थे कि हिन्दी-उर्दू की एकता से अगर हिन्दू-मुस्लिम एकता की नींव पुष्ट होती है, तो उचित है कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी बना दी जाए।"[1]

गांधीजी की प्रेरणा से हिन्दुस्तानी सन् 1927 ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस

1. राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गांधीजी, रामधारीसिंह दिनकर, पृ० 102

की दफ्तरी भाषा मान ली गई थी और सन् 1938 में कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने इसी हिन्दुस्तानी के प्रयोग में दुबारा आस्था प्रकट की थी। जिस भाषा को कांग्रेस ने हिन्दुस्तानी के नाम से स्वीकार किया, वह मिली-जुली उर्दू-हिन्दी का आसान रूप था। हिन्दुस्तानी के विषय में कांग्रेस की मान्यता यह थी कि हिन्दुस्तानी वही ज़बान है, जो उत्तर हिन्दुस्तान में बोली और समझी जाती है और हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों में भी लोग इसे बहुत-कुछ समझते और बरतते हैं। इससे साहित्यिक (अदबी) रूप हिन्दी और उर्दू एक-दूसरे से दूर होते चले जा रहे हैं। जरूरत इस बात की है कि इन दोनों रूपों को भी एक-दूसरे के नजदीक लाया जाए, और देश के उन हिस्सों, जहां दूसरी ज़बानें बोली जाती हैं, हिन्दुस्तानी को राष्ट्र भाषा के तौर पर फैलाया जाए। इसलिए हम एक ऐसी सभा बनाना चाहते हैं, जो आसान हिन्दी और आसान उर्दू दोनों का साथ-साथ प्रचार करे और जिसका हर मेम्बर हिंदुस्तानी की इन दोनों शक्लों और लिपियों को जाने और जरूरत के वक्त बरत सके। इससे एक तो यह होगा कि सारे देश में एक आसान और साफ ज़बान चल जाएगी और दूसरे, होते-होते इसी आसान ज़बान में ऐसा अदब या साहित्य पैदा होने लगेगा, जिसमें ऊंचे ख्यालों और भावों को भी ज़ाहिर किया जा सकेगा।"[1]

गांधीजी ने हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में यह स्पष्टीकरण दिया—"हिन्दुस्तानी का मतलब उर्दू नहीं, बल्कि हिन्दी और उर्दू की वह खूबसूरत मिलावट है, जिसे उत्तरी हिन्दुस्तान के लोग समझ सकें और जो नागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती हो। यह पूरी राष्ट्रभाषा हो, बाकी अधूरी, पूरी राष्ट्रभाषा सीखने वालों को आज तो दोनों लिपियां सीखनी चाहिए और दोनों रूप जानने चाहिए। राष्ट्रभाषा प्रेम का निश्चय ही यह तकाज़ा है। जो इसे जानेगा वह कमाएगा और न जानने वाला खोएगा।"[2]

गांधीजी ने हिन्दुस्तानी के प्रचार का जो कार्य बड़ी गंभीरता से किया वह हिन्दी आन्दोलन का ही बड़ा सहायक रहा। गांधीजी के उद्देश्य को हिन्दू और मुसलमान दोनों में कुछ वर्गों ने गलत समझा। वास्तव में उन्होंने एक मिली-जुली सरल भाषा का प्रचार करवाना चाहा। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया—"हिन्दुस्तानी भाषा के प्रचार का काम हिन्दी-प्रचार का विरोध नहीं, बल्कि उसकी पूर्ति करने वाला है। निरी हिन्दी, यानी नागरी लिपि में लिखी जाने वाली संस्कृतमयी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं, न उर्दू लिपि में लिखी जाने वाली फारसीमयी भाषा राष्ट्रभाषा है। इसके बारे में मैं काफी लिख चुका हूं, इसलिए

1. हरिजन सेवक, 9.8.1942
2. 'राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी' पुस्तक की भूमिका, महाबलेश्वर, 9.5.1945

यहां दलीलें नहीं दूंगा। यहां तो सिर्फ यही कहूंगा कि हिन्दी जानने वाले को उर्दू सीखनी चाहिए और उर्दू जानने वाले को हिन्दी। तभी हम सच्ची राष्ट्र-भाषा पैदा कर सकेंगे।"[1]

गांधीजी की परिकल्पना जो हिन्दुस्तानी थी, उसके लिए उन्होंने नागरी और फारसी दोनों लिपियां मानी हैं। गांधीजी चाहते थे कि लोग दोनों लिपियों का प्रयोग करें। जिसको जो लिपि आती हो, उसका वह प्रयोग करे। गांधीजी के अनुसार, दोनों लिपियों को सीखना देश-प्रेम की भावना के आधार पर है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि अगर हम दोनों लिपियां सीखने से जी चुराते हैं, तो हमारी राष्ट्रीयता बिलकुल दिखावटी और थोथी है। अगर हममें देश-प्रेम की भावना है, तो हमें खुशी-खुशी दोनों लिपियां सीख लेनी चाहिए। गांधीजी ने लिखा—"जो नागरी लिपि के अलावा उर्दू लिपि सीखने की तकलीफ उठाएंगे, उन्हें कोई नुकसान पहुंचने वाला नहीं। उन्हें यह फायदा होगा कि वे उर्दू सीख जाएंगे। हमारे देश में बहुत-से लोग उर्दू जानते हैं। अगर आज हमारी विचारधारा टेढ़ी न चलती तो यह सीधी-सादी बात समझने के लिए किसी दलील की जरूरत ही न थी। उर्दू लिपि में कई कमियां हैं, मगर वह खूबसूरती और शान में दुनिया की किसी भी लिपि का मुकाबला कर सकती है। जब तक अरबी-फारसी जिन्दा है, उर्दू लिपि मर नहीं सकती, अगरचे उर्दू की आज अपनी स्वतंत्र हैसियत है और उसे बाहर की मदद की जरूरत ही नहीं। थोड़ी-सी तब्दीली करने से उर्दू लिपि शार्टहैण्ड का काम दे सकती है। नेशनल लिपि के तौर पर अगर पुराने बन्धन निकाले जाएं तो उर्दू लिपि में ऐसा फेर-फार किया जा सकता है कि बिना किसी तकलीफ के उसमें संस्कृत के श्लोक लिखे जा सकें।"[2]

यद्यपि गांधीजी हिन्दुस्तानी की दोनों लिपियों को मानते थे तो भी यह जानते थे कि दोनों में से नागरी लिपि सरल रहेगी। उर्दू लिपि और नागरी लिपि दोनों के बीच में वे संघर्ष पैदा करना नहीं चाहते थे व लिपि के मामले में उन्होंने उदार दृष्टिकोण अपनाया। नागरी लिपि के सम्बन्ध में गांधीजी की यह धारणा थी—"लिपियों में सबसे अव्वल दरजे की लिपि नागरी को ही मानता हूं। यह कोई छिपी बात नहीं है। यहां तक कि मैंने दक्षिण अफ्रीका से गुजराती लिपि के बदले में नागरी लिपि में गुजराती खत लिखना शुरू किया था। इसे मैं समय न मिलने के कारण आज तक पूरा न कर सका। नागरी लिपि में भी सुधार के लिए गुंजाइश है, जैसे कि करीब-करीब सब लिपियों में है; लेकिन यह

1. महात्मा गांधी : हिन्दी दर्शन, पृ॰ 170
2. महात्मा गांधीजी : हरिजन सेवक, [redacted] 9.1948

दूसरा विषय हो जाता है। यह इशारा जो मैंने किया है, सो यह बताने के लिए कि नागरी लिपि का विरोध मेरे मन में जरा भी नहीं है। लेकिन जब नागरी के पक्षपाती उर्दू लिपि का विरोध करते हैं, तब उसमें मुझे द्वेष की और सहिष्णुता यानी तअस्सुब की बू आती है। विरोधियों में इतना भी आत्मविश्वास नहीं है कि नागरी लिपि यदि सम्पूर्ण है, दूसरी लिपियों के मुकाबले में पूर्ण है, तो उसीका साम्राज्य अन्त में होगा। इस निगाह से देखा जाए तो मेरा फैसला निर्दोष लगना चाहिए और जरूरी भी।

"हिन्दुस्तानी के बारे में मेरा पक्षपात सही है। मैं मानता हूं कि नागरी और उर्दू लिपि के बीच अन्त में जीत नागरी लिपि की ही होगी। इसी तरह लिपि का ख्याल छोड़कर भाषा का ही ख्याल करें, तो जीत हिन्दुस्तानी की ही होगी, क्योंकि संस्कृतमयी हिन्दी बिलकुल बनावटी है और हिन्दुस्तानी बिलकुल स्वाभाविक। उसी तरह फारसीमयी उर्दू अस्वाभाविक और बनावटी है।"[1]

गांधीजी ने लिपि के मामले में उदार दृष्टिकोण अपनाया और लिपि के प्रश्न को लोगों की सुविधा के ऊपर छोड़ दिया। गांधीजी जानते थे कि दो लिपियों को रखते हुए भी आखिर में जो आसान होगी, वही चलेगी। उनका मतलब था कि उर्दू का बहिष्कार न हो और इस बहिष्कार में द्वेष था और उस द्वेष को मिटाने के लिए उन्होंने दोनों लिपियों की बात चलाई।

गांधीजी की हिन्दुस्तानी पर मुसलमानों की आपत्ति इस बात को लेकर थी कि अदबी हैसियत के अलावा हिन्दी की एक मजहबी और तहजीबी हैसियत भी है, जिसे मुसलमानों की पूरी जमात अपना नहीं सकती। इसके अलावा अब वह बहुत-से ऐसे अल्फाज अपने अन्दर शामिल कर रही है, जो बिलकुल उसीके हैं और वे लोग जो सिर्फ उर्दू जानते हैं, उन्हें आम तौर पर समझ नहीं सकते।

गांधीजी ने इस आक्षेप का उत्तर यह कहकर दिया था कि "अगर अगले जमाने के मुसलमानों ने हिन्दी को सीखा और उसे अदबी जबान की हैसियत दी, तो मौजूदा जमाने के मुसलमान उससे किनारा क्यों करें? बेशक उस जमाने की हिन्दी में आज की हिन्दी से कहीं ज्यादा मजहबी और तहजीबी हैसियत थी। तो क्या किसी भाषा की मजहबी और तहजीबी हैसियत से ही उस भाषा से हमें दूर रहना चाहिए? क्या मैं अरबी और फारसी से इसलिए बचूं कि उन जबानों की मजहबी और तहजीबी हैसियत है?···सीधे-सादे प्रचलित शब्दों की जगह संस्कृत शब्द रखने या तद्भव शब्दों को संस्कृत-तत्सम शब्दों का रूप देने का कृत्रिम तरीका निस्सन्देह निन्दनीय है।"[2]

1. गांधी दर्शन, पृ० 204
2. हरिजन सेवक, 23.5.36

गांधीजी की हिन्दुस्तानी से कुछ हिन्दी वाले भी नाराज थे। गांधीजी ने हिन्दुस्तानी के माध्यम से हिन्दू और मुसलमानों को एक करने का प्रयास किया और हिन्दी और उर्दू के झगड़े को मिटाना चाहा। जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन सिर्फ हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि ही का समर्थक साबित हुआ तब गांधी जी ने सम्मेलन से अपना सम्बन्ध काट दिया। गांधीजी जितने ही जोर से हिन्दुस्तानी का समर्थन कर रहे थे, सम्मेलन के लोग उतने ही जोर से उनका विरोध कर रहे थे। सम्मेलन से गांधीजी के इस्तीफा से पूरे देश में जो प्रति-क्रिया हुई, उसका गंभीर रूप गुजरात, महाराष्ट्र और मद्रास में हुआ। गांधीजी का विचार और भी दृढ़ हो गया। उन्होंने अब भी यह घोषणा की कि हमारी राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दी न रहकर हिन्दुस्तानी रहेगा। हमारी राष्ट्रभाषा एक लिपि में नहीं, दो लिपियों में लिखी जाएगी।[1] उन्होंने यहां तक कहा कि "हिन्दी और उर्दू नदियां हैं और हिन्दुस्तानी सागर है। हिन्दी और उर्दू दोनों को आपस में झगड़ा नहीं करना चाहिए। दोनों का मुकाबला तो अंग्रेजी से है।"

गांधीजी ने देश को चेतावनी दी थी कि अंग्रेजी को हटाना पहाड़ को हटाने के समान दुष्कर है। अतएव लोग हिन्दी-हिन्दुस्तानी विवाद में अपनी शक्ति का अपव्यय न करें, बल्कि एक होकर ऐसा उपाय करें जिससे शिक्षा और शासन के माध्यम का स्थान अंग्रेजी के कब्जे से छूटकर मातृभाषाओं और हिन्दी को मिल जाए। उन्होंने बार-बार इस बात पर भी जोर दिया था कि हिन्दी को अपनाने का अर्थ अपनी भाषाओं का तिरस्कार नहीं है। गांधीजी की कल्पना यह थी कि प्रत्येक भारतवासी अपनी मातृभाषा में दक्ष होगा। जिन भारतीयों का काम अपने प्रान्तों तक सीमित नहीं है, वे मातृभाषा के साथ हिन्दी भी सीखेंगे और जिनका सरोकार अन्तर्राष्ट्रीय कामों से रहेगा, उन्हें अच्छी अंग्रेजी भी सीखनी पड़ेगी। अपने जीवन-भर गांधीजी ने भारतीय भाषाओं को जगाने की कोशिश की और जीवन-भर वे लोगों को समझाते रहे कि हिन्दी को वे राष्ट्रभाषा के रूप स्वीकार कर लें।

1. राष्ट्रभाषा हिन्दी और गांधीजी, पृ० 215

5

संस्थाओं के द्वारा हिन्दी सेवा

भारत में स्वतंत्रता-आन्दोलन के साथ-साथ सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भी कई संस्थाओं ने धार्मिक एवं सामाजिक सुधार के लिए कई आन्दोलन चलाए। भारतीय जनता के सम्मुख उसके अतीत की गौरव-गरिमा का परिचय देकर नव-जागरण की भावना पैदा करने के लिए कई महान विचारकों और समाज-सुधारकों ने अथक प्रयास किए। भारतीय पुनरुत्थान मूल रूप से एक आध्यात्मिक आन्दोलन था। इससे हमारे जीवन के दृष्टिकोण को एक नई दिशा मिली। इन विभिन्न आन्दोलनों के पीछे ब्रिटिश शासन द्वारा उत्पन्न परिस्थितियां भी थी, जिनसे इनको पनपने मे सहायता मिली। इसके अतिरिक्त हिन्दू धर्म मे प्रचलित अन्धविश्वासों, रूढियो और कुरीतियों को दूर करने और ईसाई धर्म के बढ़ते हुए प्रचार को रोकने के लिए भी इन आन्दोलनों से भारतीय जन-जीवन के जागरण में अत्यधिक सहायता मिली। ये सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलन के साथ जुडे हुए थे। सामाजिक और धार्मिक सुधारवादी आदर्शों से प्रेरित होकर भी ये आन्दोलन राष्ट्रीय जागृति को पैदा करने मे सहायक सिद्ध हुए।

इन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आन्दोलनों से भारतीय जन-जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। जहा राष्ट्रीय आन्दोलनों ने स्वभाषा के प्रति जन-जागृति पैदा की वहां दूसरे सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों ने भी जन-भाषा और साहित्य को प्रोत्साहन देने मे पर्याप्त सहायता की। इन सभी आन्दोलनों के प्रवर्तक और संचालक नेताओं ने अंग्रेजी के मुकाबले में प्रादेशिक भाषाओं को, विशेषकर अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी को मान्यता दी और इन्हीं भाषाओं के माध्यम से अपने विचारों का प्रचार-प्रसार किया। इन आन्दोलनों के नेता सभी यह महसूस करते थे कि जनभाषा हिन्दी के माध्यम से ही उनके विचारो का सफल प्रचार हो सकता है। अतः उन्होंने हिन्दी को प्रोत्साहन दिया। जहां राष्ट्रीय धरातल पर हिन्दी को मान्यता देने के लिए जो आन्दोलन खड़ा हुआ, उसको इन विभिन्न सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों की सेवा से बड़ी शक्ति प्राप्त हुई। उन्नीसवी और बीसवी शती में इन विभिन्न सस्थाओ के द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी के आन्दोलनों को नई स्फूर्ति मिली। इनमें कुछ हिन्दी-प्रचार के लिए, खासकर कायम की हुई सस्थाएं भी हैं, जिनसे हिन्दी की निरन्तर सेवाएं

हो रही हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा में सहायता पहुंचाने वाली कुछ धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय यहां देंगे।

धार्मिक और सामाजिक संस्थाएं

ब्रह्मसमाज

भारत में राजनीतिक जागृति के सूत्रधार राजा राममोहन राय ने पाश्चात्य धर्म-प्रचारकों द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार के संदर्भ में भारतीयों के मन मे यूरोपीय धर्म एवं सभ्यता के प्रति होने वाले झूठे आकर्षण को रोकने के उद्देश्य से सन् 1828 में ब्रह्मसमाज की स्थापना की। इस संस्था के सदस्य एकेश्वरवाद के समर्थक और मूर्तिपूजा के विरोधी थे। इस संस्था की लोकप्रियता बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, बंबई और पंजाब मे दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से इस संस्था का स्थान बहुत ही श्रेष्ठ है। हिन्दुओं में जागरण लाने का श्रेय ब्रह्मसमाज को ही है। इस संस्था ने सामाजिक समानता और महिला जगत् के उद्धार के लिए महान कार्य किए।

ब्रह्मसमाज ने देश मे राष्ट्रीय भावना को भी जागृत किया और इस धारणा को व्यक्त किया कि देश की एक 'राष्ट्रभाषा' होनी चाहिए। ब्रह्मसमाज ईसाई धर्म के लिए चुनौती के रूप मे था। इसलिए उन्होंने अपने विचारों के प्रचार के लिए अधिकांश पुस्तकें हिन्दी मे ही छापीं। ब्रह्मसमाज के नेताओं ने हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में माना। इनमें प्रमुख थे—केशवचन्द्र सेन, राजनारायण बोस, भूदेव मुखर्जी और नवीनचन्द्र राय। नवीनचन्द्र राय ने पंजाब मे हिन्दी के माध्यम से समाज के विचारों का प्रचार किया और लाहौर से हिन्दी में दो पत्रिकाएं भी निकालीं। इन पत्रिकाओं से हिन्दी-प्रचार के कार्य को भी बल मिला। उन्नीसवी शती के हिन्दी-उर्दू-विवाद मे उन्होंने हिन्दी का ही समर्थन किया। श्री भूदेव मुखर्जी का कार्यक्षेत्र बिहार था। इन्होंने बिहार में हिन्दी मे पाठ्य-पुस्तकों का प्रचलन और बिहार की अदालतों मे हिन्दी और नागरी का प्रवेश कराया। समाज के अन्यतम नेता श्री केशवचन्द्र सेन हिन्दी के बड़े समर्थक थे। इन्हीकी प्रेरणा से महर्षि दयानन्द ने हिन्दी में भाषण देना शुरू किया और 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिन्दी में की।

ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने शुरू से ही यह कल्पना की थी, कि देश की संपर्क भाषा हिंदी ही हो सकती है। उनका यह पक्का विश्वास था, केवल हिन्दी मे ही अखिल भारतीय भाषा बनने की क्षमता है। उन्होंने कलकत्ता में सन् 1826 मे 'बंगदूत' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला जिसमे कुछ हिन्दी में भी छपते थे। राजा राममोहन राय की सेवा से हिन्दी का और उनसे प्रेरित होकर अन्य संस्थाओं ने भी हिन्दी का

आर्य समाज

ईसाई धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए और हिन्दू धर्म में प्रचलित रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं कुरीतियों को दूर करने के लिए जिन आन्दोलनों का जन्म हुआ, उनमें प्रमुख स्थान आर्य समाज का था। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती थे। अखिल भारतीय स्तर पर आर्य समाज ने सर्वप्रथम स्वभाषा, स्वदेश, स्वधर्म का आन्दोलन किया। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समाज के विचारों को देश के कोने-कोने तक पहुंचाने के लिए हिन्दी की क्षमता को पहचाना और अपने कार्यों एवं उद्देश्यों की सफलता के लिए खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग किया। "स्वामीजी ने आर्यसमाज के अपने प्रचारकों और अनुयायियों के लिए हिन्दी की शिक्षा और प्रयोग के नियमों की अनिवार्यता प्रदान की और अपने भाषणों, ग्रन्थ-लेखन, पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन, प्रचार-साहित्य एवं विज्ञापनों के द्वारा तथा हिन्दी-शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करके खड़ी बोली हिन्दी के विकास, उत्थान एवं प्रचार और प्रसार को अत्यधिक योग प्रदान किया।"[1]

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए जो महान कार्य किया है, वह हिन्दी के विकास के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। स्वामीजी की हिन्दी-सेवा के सम्बन्ध में श्री रामगोपाल ने उचित ही कहा है, "आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द ने अपने निजी उदाहरण से अपने अहिन्दीभाषी अनुयायियों को भी हिन्दी का प्रयोग करने की प्रेरणा दी। वह स्वयं गुजराती थे। उन्होंने हिन्दी सीखी और केवल उसे ही अपने व्याख्यानों तथा लेखनी का माध्यम बनाया। उनका उद्देश्य आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रसार करना था, परन्तु उनके तथा उनके अनुयायियों के धर्म-प्रचार से जो अधिक उत्तम चीज राष्ट्रीय जीवन को प्राप्त हुई, वह थी राष्ट्रभाषा का प्रचार।"[2]

डा० बहादुरचन्द छाबड़ा ने लिखा है—"हिन्दी को भारत-भर की एक व्यापक भाषा बनाने का सत्संकल्प सर्वप्रथम कदाचित् स्वामी दयानन्द सरस्वती के मानसपटल में प्रादुर्भूत हुआ था और उन्हीं के द्वारा इस ओर प्रथम प्रयास भी हुआ।" स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के अतिरिक्त अनेक धार्मिक ग्रन्थ हिन्दी में ही प्रकाशित किए। स्वामीजी के ग्रन्थों की महत्ता की चर्चा करते हुए डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त ने लिखा है—"हिन्दी में स्वामीजी का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश है। इस ग्रन्थ को हिन्दी साहित्य का निर्माता कहने में अत्युक्ति नहीं है। 19वीं शती के अंतिम और 20वीं शती के प्रारम्भ में

1. खड़ी बोली हिन्दी का सामाजिक इतिहास, श्री ललितमोहन अवस्थी, पृ० 152
2. स्वतन्त्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास, पृ० 57

उत्तर भारत के हिन्दी साहित्य क्षेत्र में जो उथल-पुथल और परिवर्तन हुआ, उसका मुख्य कारण आर्य समाज का आन्दोलन और सत्यार्थ प्रकाश है।"[1]

आर्य समाज की स्थापना के पश्चात् भारत के अनेक नगरो मे उसकी शाखाओं की स्थापना हुई। हजारों नर-नारी उसके सदस्य बने और उन्होने हिन्दी सीखी। आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों और वार्षिक अधिवेशनों मे केवल हिन्दी का प्रयोग होता था। हिन्दी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, हिन्दी सम्मेलन का आयोजन और धार्मिक परीक्षाओं का हिन्दी में संचालन करके आर्य समाज ने हिन्दी को घर-घर में पहुंचा दिया।

आर्य समाज ने हिन्दी के शिक्षण एवं उत्थान के लिए और अपने उद्देश्यो का प्रचार करने के लिए अनेक शिक्षण-संस्थाएं खोलीं। इन शिक्षण-संस्थाओं में हिन्दी के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था थी। इन संस्थाओं के द्वारा हिन्दी का प्रचार बहुत तेजी से हुआ। आर्य समाज ने कन्याओं की शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रकार की क्रान्ति पैदा की और स्थान-स्थान पर कन्या पाठशालाओं की स्थापना की गई, जहां हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दी जाने लगी।

आर्य समाज ने देश की शिक्षा-प्रणाली मे हिन्दी को सम्मिलित कराने के प्रयास किए थे और साथ ही न्यायालयों में भी हिन्दी के प्रयोग का आन्दोलन चलाया था। ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से हिन्दी को राज-कार्य में प्रयुक्त कराने के लिए भी अनेक स्थानों से अंग्रेज़ी सरकार के पास मेमोरेंडम भेजे गए।

हिन्दी के प्रचार और प्रसार के क्षेत्र में आर्य समाज के पत्र और पत्रिकाओं का योगदान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण रहा। आर्य समाज ने अपने उद्देश्यों और सिद्धान्तों के प्रचार और अपने विरोधियों के सिद्धान्तों के खण्डन आदि के लिए देश के विभिन्न स्थानों से लगभग पचास पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित की जिनमें से अनेक अब भी प्रकाशित हो रहे हैं। इनमें सर्वप्रथम पत्र 'आर्य दर्पण' था।

आर्य समाज ने केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेशो मे भी धर्म-प्रचार के साथ हिन्दी का प्रचार किया। उस समय दक्षिणअफ्रीका, अफ्रीका, केनिया, उगांडा, टांगानिका, मारिशस, फिज़ी, डच गयाना, ब्रिटिश गयाना और त्रिनिदाद आदि विदेशों मे भारतीय व्यापारियों, मज़दूरों आदि की अनेक बस्तिया थीं। आज भी उन देशों में ये बस्तियां कायम हैं। आर्य समाज ने 20वीं शताब्दी के आरम्भ से इन देशों की भारतीय बस्तियों मे आर्य समाजों की स्थापना की और हिन्दी-शिक्षण संस्थाओं का संचालन भी शुरू कर दिया। इस प्रकार देश मे ही नहीं, विदेश में भी हिन्दी प्रचार का श्रेय आर्य समाज को है।

1. हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन, पृ. 72

सनातन धर्म सभा

ब्रह्मसमाज, आर्य समाज आदि अनेक धार्मिक संस्थाओं की स्थापना के बाद देश में ऐसा वातावरण बनता जा रहा था जिससे हिन्दू धर्म की पुरानी मान्यताओं और रूढ़ियों का भंडाफोड़ किया जा रहा था। आर्य समाज ने तो स्पष्ट रूप से हिन्दू धर्म में प्रचलित अनेक रीति-रिवाजों का खुलकर खण्डन किया। इससे हिन्दू जाति का एक बहुत बड़ा भाग आर्य समाज को हिन्दू धर्म को विकृत और कलंकित करने वाला समझने लगा था। अतः आर्य समाज की प्रतिक्रिया के स्वरूप कुछ लोग संघटन बनाकर 19वीं शती के अन्तिम दशक में आर्य समाज आदि संस्थाओं का विरोध और उनके प्रभाव को कम करने के लिए प्रयत्न करने लगे। ऐसे लोगों के नेता पंडित दीनदयाल शर्मा ने सन् 1895 में सनातन धर्म सभा की स्थापना की। इस सभा की स्थापना का उद्देश्य हिन्दू धर्म में स्मृति, पुराण तथा अन्य शास्त्रों के अनुसार सुधार करना था। देश-भर में सनातन धर्म सभाओं की स्थापनाएं हुईं। संस्कृत और हिन्दी को प्रोत्साहन देना इनका उद्देश्य था। आर्य समाज की तरह सनातन धर्म सभा वालों ने भी अपने विचारों के प्रचार के लिए हिन्दी का माध्यम ही अपनाया। सभा की सैंकड़ों शाखाएं देश-भर में फैली थीं और उनके माध्यम से हिन्दी का प्रचार बढ़ा। इनके सारे प्रकाशन हिन्दी में ही छपते थे। सनातन धर्म सभा वालों ने भी आर्य समाज की तरह पंजाब, दिल्ली तथा उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तों में अनेक शिक्षण-संस्थाएं खोली जिनमें हिन्दी को उच्च स्थान दिया गया। जहां सभा के पत्र-पत्रिकाओं द्वारा देश की जनता पर धार्मिक व सामाजिक प्रभाव पड़ा, वहां हिन्दी-प्रचार-कार्य को भी बढ़ावा मिला।

सनातन धर्म सभा के प्रमुख नेताओं में गोस्वामी गणेशदत्त का नाम सर्वोपरि है। ये सनातन धर्म सभा के प्रमुख कर्णधार और पंडित मदनमोहन मालवीय के शिष्य थे। प्रारम्भ से ही इनका प्रमुख कार्यक्षेत्र हिन्दी-सेवा का था। इन्होंने पंजाब में हिन्दी की रात्रि पाठशालाएं स्थापित की जिनमें प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था की गई। गोस्वामीजी ने पंजाब में हिन्दी पढ़ाने के लिए लगभग दो सौ संस्थाओं की स्थापना की। इन्होंने सन् 1940 में लाहौर से हिन्दी दैनिक 'विश्वबन्धु' निकाला। इस पत्र से भी हिन्दी को व्यापक बनने में बड़ी सहायता मिली। पंजाब में हिन्दी के व्यापक प्रचार में गोस्वामीजी का योगदान बड़ा ही मूल्यवान रहा। उनके सतत प्रयत्नों से उत्तर भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में पनपने का अवसर मिला।

गोस्वामी गणेशदत्त के साथ-साथ सनातन धर्म सभा के अन्य नेताओं में श्रद्धाराम फिल्लौरी का नाम हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में विशेष रूप से उल्लेखनीय

है। पूरे पंजाब में फिल्लौरीजी ने अपने रोचक उपदेशों और व्याख्यानों द्वारा प्रचार-कार्य में अपूर्व योगदान दिया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पंजाब के जन-जीवन में हिन्दी-प्रचार का श्रेय आर्य समाज के साथ सनातन धर्म सभा को भी है।

प्रार्थना समाज

भारत के सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में आमूल परिवर्तन करने के उद्देश्य से बहुत-से समाज-सुधारकों ने कई आन्दोलन प्रारम्भ किए। महाराष्ट्र में सन् 1867 ई० में प्रार्थना समाज नामक संस्था की स्थापना हुई। इसने हिन्दू धर्म में आमूल सुधारों, अछूत जाति-पांति का विरोध, स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाह आदि के लिए प्रचार-कार्य शुरू कर दिया। इस संस्था ने महाराष्ट्र और उसके आसपास के प्रदेशों में अनेक सुधारात्मक कार्य किए। इस समाज के मुख्य नेता महादेव गोविन्द रानाडे थे, जो उस वक्त ब्रिटिश सरकार की सेवा के अधीन न्यायाधीश के पद पर कार्य करते थे। श्री रानाडे समाज-सुधार के कार्यों में बहुत अधिक रुचि लेते थे।

प्रार्थना समाज का प्रमुख कार्यक्षेत्र महाराष्ट्र रहा और इस समाज का सबसे अधिक प्रभाव महाराष्ट्र के शिक्षित वर्ग पर पड़ा। समाज के द्वारा आधुनिक शिक्षा का प्रचार और जनता में राष्ट्रीय चेतना का प्रचार हुआ। इस संस्था ने हिन्दी को भी प्रोत्साहन दिया।

थियोसोफिकल सोसाइटी

भारत के जनजीवन पर अधिक प्रभाव डालने वाले धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों मे थियोसोफिकल सोसाइटी का विशिष्ट स्थान है। इस सोसाइटी की स्थापना सन् 1875 में मदाम ब्लावत्स्की तथा कर्नल आलकोट द्वारा अमेरिका मे हुई थी। इन दोनो व्यक्तियों ने भारतीय धर्म, दर्शन और विचारधाराओं से प्रभावित होकर इस संस्था की स्थापना की और 1879 में उन्होंने भारत मे आकर सोसाइटी का कार्यालय बंबई मे स्थापित किया। सन् 1888 मे सोसाइटी ने अपना प्रधान अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय मद्रास के अडयार नामक स्थान पर और राष्ट्रीय कार्यालय बनारस मे कायम किया। श्रीमती एनी बेसेंट ने सन् 1893 से भारत मे रहकर सोसाइटी के सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार शुरू कर दिया। चूंकि इस संस्था के बहुत-से विचार आर्य समाज और ब्रह्मसमाज आदि के विचारों से मिलते-जुलते थे, इसलिए बहुत-से लोग इसकी ओर आकृष्ट हुए। इस संस्था की प्रेरणा से भारत के सुशिक्षित लोग अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को गौरव की दृष्टि से देखने लगे। सोसाइटी ने अनेक शिक्षण-संस्थाओ की स्थापना

की, जिनमें धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ भारतीयता, भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं पर बहुत अधिक बल दिया जाता था। इससे शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी को पनपने का भी अवसर मिला।

सोसाइटी ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए अपने साहित्य का प्रकाशन अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी किया। सोसाइटी के राष्ट्रीय कार्यालय के बनारस में होने से उसका प्रकाशन विभाग हिन्दी में अपना प्रचार-साहित्य आसानी से निकालता रहा। सोसाइटी ने आजादी के पूर्व और बाद में अपना जितना साहित्य हिन्दी में निकाला उसके माध्यम से हिन्दी का भी प्रचार हुआ। सोसाइटी के द्वारा हिन्दी की जो सेवा हुई, उसका मुख्य श्रेय श्रीमती एनी बेसेंट को है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन और चिंतन के प्रति बड़ी आस्था रखती थीं। स्वतन्त्रता-संग्राम में उनकी हार्दिक सहानुभूति के उपलक्ष्य में सन् 1917 में वे राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षा चुन ली गईं। श्रीमती बेसेंट ने अपने जीवन में भारतीय राष्ट्रीय भावना के अन्तर्गत राष्ट्रभाषा हिन्दी का भी बड़ा समर्थन किया। "सन् 1915 से 1921 तक उन्होंने गांधीजी के साथ दक्षिण में भ्रमण करके हिन्दी का प्रचार किया। वे इसे राष्ट्र-निर्माण का एक अंग मानती थीं। उन्होंने हिन्दी को सबसे अधिक प्रचलित एक भारतीय भाषा स्वीकार करते हुए उसे राष्ट्र की एकता का मुख्य साधन माना है।"[1]

हिन्दी की सेवा करने वाली सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं में दो और संस्थाओं के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—रामकृष्ण मिशन और राधास्वामी सम्प्रदाय। रामकृष्ण मिशन की स्थापना सन् 1897 ई० में हुई। मिशन ने अपने मुख्य उद्देश्य मानव-सेवा द्वारा अध्यात्म का प्रचार करने के लिए भारत की विभिन्न भाषाओं में अपना साहित्य प्रकाशित किया और कई पत्र-पत्रिकाएं निकालीं। उनमें हिन्दी को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। रामकृष्ण मिशन के बाद हिन्दी-सेवा के लिए राधास्वामी संप्रदाय का प्रमुख स्थान है। इसकी स्थापना उन्नीसवीं सदी के अन्तिम भाग में हुई और इसका प्रमुख केन्द्र आगरा रहा। इस संप्रदाय का मूल धर्मग्रन्थ 'राधास्वामी मत प्रकाशन' है। संप्रदाय ने हिन्दी में बहुत-से ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं। इस संप्रदाय की अनेक शाखाएं उत्तर भारत में स्थापित हुईं। संप्रदाय के सिद्धान्तों के प्रचार के साथ-साथ हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भी बड़ी सहायता मिली।

हिन्दी प्रचारक संस्थाओं की हिन्दी सेवा

आज हिन्दी को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसको यह स्थान प्रदान कराने में

1. भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा, ज्ञानवती दरबार, पृ० 388

मात्र हिन्दी के प्रचार-प्रसार में लगी विभिन्न स्वैच्छिक संस्थाओं का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इन संस्थाओं का इतिहास काफी लंबा है। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रादुर्भाव के दिनों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार को लक्ष्य करके कई संस्थाओं ने जन्म लिया। देश के विभिन्न प्रान्तों में हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण सृजित करने में तथा लोगों को हिन्दी-शिक्षण की सुविधाएं देने में निःस्वार्थ भाव से ये संस्थाएं प्रयत्नशील रही हैं। इनमें से अधिकतर संस्थाएं आज भी हिन्दी की निरंतर सेवा में संलग्न हैं। इन स्वैच्छिक संस्थाओं की सेवाओं का ज्ञान प्राप्त करना हर हिन्दी-प्रेमी का नैतिक धर्म है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि नागरी के प्रचार-प्रसार के राष्ट्रीय उद्देश्यों के लिए नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना 1893 में वाराणसी में हुई। प्रारम्भ में श्री गोपालप्रसाद खत्री, रामनारायण मिश्र और बाबू श्यामसुन्दर दास आदि इसके संरक्षक रहे। बाद के इसके प्रमुख संरक्षकों में महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, श्री अम्बिकादत्त व्यास, श्री राधाचरण गोस्वामी, श्री श्रीधर पाठक और श्री बदरीनारायण चौधरी आदि उल्लेखनीय व्यक्ति थे।

हिन्दी साहित्य का संरक्षण और पोषण और हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार सभा के प्रमुख लक्ष्य थे। हिन्दी के विकास के लिए सभा ने ठोस कार्य किए हैं। हिन्दी की प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की खोज, हिन्दी के वृहद् कोशों का निर्माण, हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास लेखन, साहित्य गोष्ठियों का आयोजन और अन्य शोधकार्य आदि विविध योजनाओं को सभा ने बड़ी सफलता के साथ कार्यान्वित किया है। सभा के अन्तर्गत एक वृहद् पुस्तकालय है जिसका नाम 'आर्य भाषा पुस्तकालय' है। इस पुस्तकालय में हिन्दी की प्राचीन से प्राचीनतम रचनाएं तथा नवीन से नवीनतम रचनाएं उपलब्ध हैं। हिन्दी साहित्य के उच्चस्तरीय शोध के लिए यह पुस्तकालय बड़ा ही सहायक है। हस्तलिखित ग्रन्थ खोज विभाग द्वारा अनुपलब्ध ग्रन्थों के अन्वेषण और खोज-कार्य की यहां व्यवस्था है। इस कार्य में सभा को कई मान्य विद्वानों का सहयोग भी प्राप्त हो रहा है।

सभा के पास एक प्रकाशन विभाग भी है जिसके द्वारा 'हिन्दी शब्दसागर', हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली' और 'संक्षिप्त शब्दसागर' जैसे महत्त्वपूर्ण कोशों का प्रकाशन भी हुआ है। सभा के प्रकाशन विभाग ने 'पृथ्वीराज रासो', 'परमाल रासो', 'बीसलदेव रासो' आदि अनेक ऐतिहासिक काव्यों को प्रकाशित कर हिन्दी जगत् का महान उपकार किया है। सभा की मुखपत्रिका 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' सबसे बड़ी प्राचीन साहित्यिक और शोध पत्रिका है जो गत 77

निरन्तर प्रकाशित हो रही है। सभा ने साहित्य की विविध विधाओं पर पांच सौ से अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं, जिनमे हिन्दी साहित्य का भण्डार संपुष्ट हुआ है। हिन्दी साहित्य की मौलिक और उत्तम रचनाओं पर पुरस्कार और पदक देने की योजनाएं चलाकर सभा ने साहित्य-सृजन को प्रेरणा दी है। प्रसिद्ध साहित्यकारों की जयंतियां और पुण्यतिथियों को मनाकर सभा ने उनके प्रति श्रद्धांजलियां भी अर्पित की हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दी की सर्वप्रथम संस्था है। आज हिन्दी को राज-भाषा पद प्राप्त करने का जो गौरव प्राप्त हुआ है, उसमें सभा का बहुत बड़ा हाथ है। हिन्दी के विकास में सभा का योगदान बड़ा ही प्रशंसनीय रहा है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना के लगभग 17 वर्ष के बाद सन् 1910 मे सभा के तत्वावधान में काशी के हिन्दी-प्रेमियों एवं हिन्दी-सेवियो की एक सभा बुलाई गई और यह निर्णय किया गया कि हिन्दी की सेवा में समूचे देश में संलग्न संस्थाओं के प्रतिनिधियों, हिन्दी के विद्वानों एवं प्रेमियों का एक विराट् अधि-वेशन किया जाए। फलस्वरूप एक विराट् सम्मेलन हुआ जिसकी अध्यक्षता महा-मना मालवीयजी ने की। इसी अधिवेशन मे हिन्दी भाषा और नागरी के प्रचार-प्रसार के लिए एक संस्था कायम करने का निर्णय हुआ। इसके परिणामस्वरूप प्रयाग मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सूत्रपात हुआ। सम्मेलन के प्रमुख सूत्रधार स्वर्गीय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन थे।

हिन्दी के व्यापक प्रचार व प्रसार के लिए सम्मेलन के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हैं :

1. हिन्दी साहित्य के सब अंगों की पुष्टि तथा उन्नति के लिए प्रयत्न करना।
2. राष्ट्रलिपि देवनागरी और राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करना।
3. नागरी लिपि को मुद्रण तथा लेखन की दृष्टि से अधिक विकसित करना।
4. हिन्दीभाषी राज्यों के सरकारी विभागों, विद्यालयों, कालेजों तथा अदालतो में हिन्दी भाषा के प्रयोग का प्रचार करना।
5. हिन्दी के विद्वानों तथा लेखको को सम्मानित करना तथा पारितोषिक, पुरस्कार, पदक तथा उपाधि आदि से उन्हें विभूषित करना।
6. हिन्दी भाषा द्वारा उच्च परीक्षाएं लेना आदि।

सम्मेलन की विविध परीक्षाओं मे हजारो की संख्या में परीक्षार्थी बैठे और आज भी बड़ी तादाद में बैठते हैं। इन परीक्षाओं को विश्वविद्यालयो और राज्यों

की सरकारों और केन्द्र सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त होने के कारण परीक्षाओं की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। सम्मेलन की ओर से देश के विभिन्न प्रदेशों में वार्षिक अधिवेशन किए जाते हैं। सम्मेलन भारतीय साहित्य, संस्कृति और भाषाओं से सम्बन्धित उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ छापता रहता है। सम्मेलन की ओर से हिन्दी की उच्चकोटि की मौलिक रचनाओं पर पुरस्कार देने की योजनाएं भी हैं। सम्मेलन की अपनी एक त्रैमासिक पत्रिका भी है। सम्मेलन के प्रकाशनों से हिन्दी भाषा और साहित्य की अभिवृद्धि हुई है और विद्वान लेखकों को प्रोत्साहन भी मिला है। भारत सरकार की ओर से हिन्दी साहित्य सम्मेलन को सन् 1963 में एक राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

सन् 1918 में इन्दौर में होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन की अध्यक्षता महात्मा गांधी ने की थी और इस सम्मेलन में दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार की एक बृहद् योजना प्रस्तुत की। गांधीजी की अपील पर सेठ हुकुमचन्द और नरेश यशवन्तराव होलकर ने दस-दस हजार रुपये की धनराशि प्रदान की और इस धनराशि से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना में सहायता प्राप्त हुई। दक्षिण में प्रथम प्रचारक के रूप में गांधीजी ने अपने पुत्र देवदास गांधी को दक्षिण भेजा। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रारंभिक उत्साही प्रचारकों में पंडित हरिहर शर्मा, पं० ऋषिकेश शर्मा, श्री शिवराम शर्मा, पं० देवदूत विद्यार्थी और पं० अवधनन्दन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के संरक्षकों में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का भी विशिष्ट स्थान है।

प्रारंभ में सारा कार्य दक्षिण भारत में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्त्वावधान में चलता रहा। गांधीजी की यह प्रबल इच्छा थी कि दक्षिण हिन्दी प्रचार का कार्य दक्षिणवासियों के द्वारा होना ही वांछित है। इसलिए सन् 1927 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मद्रास का नाम बदलकर 'दक्षिण भारत प्रचार सभा' रखा गया। सभी की चार शाखाएं दक्षिण में तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, केरल और कर्नाटक में स्थापित की गई। सभा का केन्द्रीय कार्यालय मद्रास में रखा गया। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार द्वारा भारतीय एकता को मजबूत बनाने और प्रान्तीय भाषाओं के सहयोग से हिन्दी भाषा का विकास करने के लिए जनता में हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण बनाना ही सभा का प्रमुख लक्ष्य रहा।

महात्मा गांधीजी ही सभा के आजीवन अध्यक्ष रहे। महात्माजी के बाद डा० राजेन्द्रप्रसाद इस सभा के अध्यक्ष बनाए गए। उनके मार्गदर्शन में सभा

की बड़ी प्रगति हुई। राजेन्द्रप्रसाद के निधन के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व० लालबहादुर शास्त्री सभा के अध्यक्ष चुने गए। उनके आशीर्वाद से सभा को 'राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था' की मान्यता और सभा में 'स्नाकोत्तर अध्ययन और अनुसंधान विभाग' खोलने का सुयोग भी प्राप्त हुआ। सभा हिन्दी की सेवा में निरन्तर प्रयत्नशील है। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी इस वक्त सभा की अध्यक्षा है।

सभा के कई विभाग हैं—परीक्षा विभाग, साहित्य विभाग, पत्रिका विभाग, प्रकाशन विभाग आदि। सभा की विविध परीक्षाओं में लाखों की संख्या में विद्यार्थी बैठे हैं। दक्षिण मे हिन्दी को घर-घर पहुंचाने का श्रेय सभा को है। सभा की ओर से 'हिन्दी प्रचार समाचार' मासिक पत्रिका और 'दक्षिण भारत' नामक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती हैं। सभा के प्रकाशन विभाग से हिन्दी-शिक्षण में सहायक अनेकानेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। हिन्दी के व्यापक प्रचार के लिए सभा ने दक्षिण भारत के प्रमुख केन्द्रों मे हिन्दी महाविद्यालय और हिन्दी प्रचारक विद्यालय खोल रखे हैं। हिन्दी को जनप्रिय बनाने के लिए सभा समय-समय पर अनेक विराट् उत्सवों का आयोजन भी करती है। सभा का स्नातकोत्तर अध्ययन और अनुसन्धान विभाग हिन्दी साहित्य में उच्च शिक्षा प्रदान करने में कार्यरत है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

सन् 1936 मे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनजी की प्रेरणा से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना वर्धा में हुई। देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में जिस समिति का गठन हुआ, उसमे महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री टण्डनजी, आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री काका साहब कालेलकर, पं० माखनलाल चतुर्वेदी और सेठ जमनालाल बजाज प्रमुख सदस्य थे। हिन्दी-प्रचार की यह संस्था राष्ट्रीय भावनाओं को उद्‌बुद्ध करने एवं सभी भारतीयों के हृदयों मे एकात्मकता-प्रस्थापन का उद्देश्य लेकर स्थापित हुई। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर 'एक हृदय हो भारत जननी' को उसने अपना उद्‌घोष वाक्य बनाया।

राष्ट्रभाषा की परीक्षाएं चलाना, राष्ट्रभाषा की शिक्षा का प्रबन्ध करना, पाठ्य-पुस्तकों आदि का निर्माण करना, उपयोगी साहित्य निर्मित करना, राष्ट्र-भाषा हिन्दी को समुचित शिक्षा के लिए देवनागरी लिपि मे लिखी जाने वाली राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार एवं विकास करना, सारे देश में तथा आवश्य-कतानुसार विदेशों मे भी हिन्दी के प्रति अनुराग उत्पन्न करने और बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना और हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि के लिए उपयोगी मौलिक

पुस्तकें लिखवाना तथा अन्य भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य का हिन्दी में अनुवाद करना तथा उन्हें प्रकाशित करना आदि समिति के प्रधान उद्देश्य हैं।

समिति ने सन् 1938 में एक प्रकाशन विभाग भी स्थापित किया जिसकी ओर से अनेक बहुमूल्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। देवनागरी के माध्यम से विभिन्न भारतीय भाषाओं को सीखने-सिखाने की दृष्टि से 'भारत भारती' नामक एक पुस्तकमाला समिति ने प्रकाशित की है। समिति के द्वारा दो मासिक पत्रिकाएं भी 'राष्ट्रभाषा' (1943) और 'राष्ट्र भारती' (1950) प्रकाशित होती हैं। समिति अनेक स्थानों पर विद्यालय भी चलाती है। समिति की विविध परीक्षाओं में लाखों की संख्या में विद्यार्थी बैठते हैं। समिति समय-समय पर राष्ट्रभाषा प्रचार-सम्मेलन का आयोजन भी करती है।

समिति का प्रचार-कार्य विदेशों में भी चल रहा है। इंग्लैण्ड, इंडोनेशिया, श्रीलंका, बर्मा, दक्षिण अफ्रीका, फिजी, चेकोस्लोवाकिया, मारिशस आदि स्थानों में समिति के केन्द्र चल रहे हैं। इसके अलावा भारत के पूर्वांचल में—मणिपुर, आसाम, नागालैण्ड, मिजोरम, बंगाल और उत्कल में हिन्दी-प्रचार कार्य के लिए समिति ने केन्द्र खोले हैं। प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन जो नागपुर में आयोजित हुआ, उसके सफल आयोजन में राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, वर्धा का बहुत बड़ा हाथ रहा है। प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर विश्व हिन्दी विद्यापीठ का शिलान्यास भी वर्धा में सम्पन्न हुआ। देश में हिन्दी के प्रचार-प्रसार मे संलग्न स्वैच्छिक संस्थाओं में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का एक विशिष्ट स्थान है।

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

गुजरात विद्यापीठ की स्थापना सन् 1920 में राष्ट्रीय शिक्षण संस्था के तौर पर हुई थी। तब से विद्यापीठ के ध्येयों में राष्ट्रभाषा हिन्दी का अभ्यास देवनागरी और उर्दू लिपियों में रखा गया है, जो अब भी जारी है। प्रारंभ में विद्यापीठ राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, वर्धा का साथ देता रहा। दिसम्बर, 1941 में जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन की व्याख्या संकुचित कर दी गई और उसमें से उर्दू लिपि को निकाल दिया गया, तब महात्मा गांधी ने मई, 1942 में हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा, वर्धा की स्थापना की। गांधीजी की प्रेरणा से हिन्दुस्तानी-प्रचार का कार्य 1944 में गुजरात विद्यापीठ से शुरु हुआ। गुजरात में हिन्दी-प्रचार का सारा कार्य गुजरात विद्यापीठ के तत्त्वावधान में हुआ। गुजरात विद्यापीठ अनेक परीक्षाएं चलाता है, जिनमें हजारों की संख्या में विद्यार्थी बैठते हैं।

गुजरात में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने का पूरा श्रेय गुजरात विद्यापीठ को है।

बंबई हिन्दी विद्यापीठ, बंबई

बंबई हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना सन् 1938 में बंबई नगर के कुछ हिन्दी-प्रचारकों के प्रयत्न से हुई। सरल और बोलचाल की भाषा के प्रचार हेतु प्रचारकों की ओर से बंबई हिन्दी विद्यापीठ का संचालन हुआ। हिन्दी के अध्ययन-केन्द्र चलाना, पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित करना तथा प्रचार-परीक्षाओं के परीक्षा-केन्द्र स्थापित करना, परीक्षाएं लेना संस्था की प्रारम्भिक गतिविधियां थीं और प्रचार-क्षेत्र बंबई नगर-उपनगर था। परन्तु शीघ्र ही इसमें आशातीत सफलता हुई और उस समय के 'बंबई प्रदेश' में विद्यापीठ की परीक्षाओं के केन्द्र सभी जिलों में स्थापित होने लगे। बंबई में विद्यापीठ का अपना विशाल केन्द्रीय कार्यालय है और अपना पुस्तकालय, मुद्रणालय भी है।

विद्यापीठ प्रमुख रूप से हिन्दी-प्रचार संस्था होते हुए भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। विद्यापीठ का एक मुख-पत्र भी है, जिसका नाम है 'भारती'। बंबई महानगर तथा उसके इर्दगिर्द के प्रदेशों में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में विद्यापीठ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे

मराठी-भाषी प्रदेश में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करने हेतु महात्मा गांधी जी की प्रेरणा से महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे की स्थापना हुई। आचार्य काका साहब कालेलकरजी की अध्यक्षता में तारीख 22 मई, 1937 को पूना में महाराष्ट्र के रचनात्मक कार्यकर्ताओं, राजनीतिक व सांस्कृतिक नेताओं आदि का सम्मेलन संपन्न हुआ और फिर महाराष्ट्र हिन्दी प्रचार समिति के नाम से एक संगठन बनाया गया। आठ साल तक यह समिति राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा से संबद्ध रही एवं संगठन-विषयक मतभेद के कारण इस संगठन ने सम्मेलन तथा वर्धा समिति से संबंध तोड़ लिया। बेलापुर में 12 अक्तूबर, 1945 को महाराष्ट्र के प्रमुख कार्यकर्ताओं की एक बैठक हुई जिसमें स्वतंत्र रूप से कार्य करने का निश्चय किया गया। संस्था 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे' के नाम से काम करने लगी।

सभा की नीति के आधारभूत सिद्धान्त इस प्रकार हैं—*1*. प्रदेशों में प्रादेशिक भाषाओं का स्थान और बना रहे, अंतर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए राष्ट्र-भाषा को प्रयुक्त किया जाए, 2. राष्ट्रभाषा-प्रचार राष्ट्र के नव-निर्माण, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकता के संवर्धन का एक रचनात्मक कार्य है, 3. राष्ट्रभाषा

का स्वरूप सर्व-संग्राहक हो और वह स्वरूप यों है—भारत में अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए जिस एक भाषा का उपयोग सदियों से आमतौर पर चलता आ रहा है, वह हमारी राष्ट्रभाषा है। इसके लिए हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी—तीनों नाम रूढ़ हैं, 4. राष्ट्रभाषा का विकास देश की प्रादेशिक भाषाओं के संपर्क और उनके विकास के साथ संपन्न होता रहे।

सभा का केन्द्रीय कार्यालय पूना में और विभागीय कार्यालय बंबई, नागपुर और औरंगाबाद में हैं। सभा की परीक्षाओं में लाखों की तादाद में विद्यार्थी शामिल होते हैं। सभा की परीक्षाओं को सरकारी मान्यता प्राप्त है। समूचे महाराष्ट्र में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे की सेवाएं श्लाघनीय हैं।

हिन्दी विद्यापीठ, देवघर

गांधीजी की प्रेरणा से राष्ट्रीय संग्राम में सम्मिलित स्थानीय मनीषियों ने सन् 1929 में देवघर में हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना की। देवनागरी लिपि में हिन्दी भाषा का विकास करना और राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित हिन्दी शिक्षा का प्रसार करना मुख्य उद्देश्य थे। इनकी पूर्ति के लिए 1935 में विद्यापीठ में कई विभाग—समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास एवं संगीत तथा भाषाओं में तेलुगु और बंगला के विभाग खोले गए और विद्यालय को गोवर्धन साहित्य महाविद्यालय के रूप में स्थापित किया गया। 1936 के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता डा० राजेन्द्रप्रसाद ने की थी। विद्यापीठ को अनेक विख्यात हिन्दी-सेवियों का सहयोग प्राप्त हुआ है। विद्यापीठ के वर्तमान संचालक बाबू गंगाशरण सिंह हैं जिनके मार्गदर्शन में विद्यापीठ के कार्यकलापों में व्यापकता आ गई है।

विद्यापीठ के पास एक विशाल मुद्रणालय भी है। विद्यापीठ की परीक्षाओं में बड़ी संख्या में विद्यार्थी शामिल होते हैं। विद्यापीठ के महाविद्यालय में अहिन्दी-भाषी क्षेत्र के बहुत-से विद्यार्थी हिन्दी-शिक्षण के लिए पहुंचते हैं। पूर्वांचल से नागालैण्ड, मणिपुर, अरुणाचल, मिसोरां आदि से विद्यार्थी आकर यहां से हिन्दी में शिक्षण पाते हैं। विद्यापीठ ने राष्ट्रीय स्तर पर अनेक सम्मेलनों का आयोजन किया है। राजभाषा सम्मेलन, भारतीय हिन्दी कार्यकर्ता शिविर आदि का सफल आयोजन विद्यापीठ द्वारा हुआ है।

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गोहाटी

सन् 1934 में महात्मा गांधी के अनुगामी उत्तरप्रदेश के जन-नेता व समाज-सेवक स्वर्गीय बाबा राघवदासजी ने बापू से आदेश लेकर असम में हिन्दी

प्रचार की नींव डाली। फलस्वरूप गोहाटी, शिवसागर और डिब्रूगढ़ में राष्ट्र-भाषा हिन्दी-प्रचार का काम शुरू हुआ। श्री बाबा राघवदासजी अपने आश्रम 'बरहज' से ही असम की प्रचार-व्यवस्था चलाते रहे। 1938 में 'असम हिन्दी प्रचार समिति' नामक एक संस्था कायम की गई। आगे चलकर इसका नाम पड़ा—'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति'। महात्मा गांधीजी, बाबा राघवदास, श्री काका साहब कालेलकर और श्री श्रीमन्नारायण आदि का संरक्षण भी समिति को प्राप्त हुआ।

समिति विविध स्तर की हिन्दी परीक्षाएं चलाती है। अनेक स्थानों पर समिति के द्वारा विद्यालयों का आयोजन भी किया गया है। असम मे हिन्दी-शिक्षण के कार्य को व्यापक रूप प्रदान करने में समिति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में लगी जिन संस्थाओं का परिचय ऊपर दिया गया है, उनके अतिरिक्त भी कई अन्य संस्थाएं हैं जो भारत में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। कुछ प्रमुख संस्थाओं के नाम नीचे दिए जा रहे हैं :

1. हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद।
2. मैसूर रियासत हिन्दी प्रचार समिति, बंगलौर।
3. मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद, बंगलोर।
4. केरल हिन्दी प्रचार सभा, त्रिवेन्द्रम।
5. कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, बंगलौर।
6. उड़ीसा राष्ट्रभाषा परिषद्, पुरी।
7. सौराष्ट्र हिन्दी प्रचार समिति, राजकोट।
8. मणिपुर हिन्दी परिषद्, इम्फाल आदि,

अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ

हिन्दी-प्रचार में संलग्न सस्थाओं का एक संयुक्त संघटन अखिल भारतीय हिन्दी संस्था सघ है जिसकी स्थापना 1964 मे हुई। देश मे पिछले सत्तर वर्षों से हिन्दी के प्रचार-प्रसार मे विविध प्रदेशों मे कार्यरत संस्थाओं के बीच में संपर्क स्थापित करने के लिए और प्रचार-कार्य और आपसी संबंध मे सहयोग, समानता, समन्वय और एकसूत्रता लाकर देश में हिन्दी-प्रचार के लिए एक राष्ट्रीय मंच स्थापित करना संघ का प्रमुख उद्देश्य है। राष्ट्रीय मंच की स्थापना के लिए मंच की ओर से 1972 मे प्रथम राजभाषा सम्मेलन और 1976 मे द्वितीय राजभाषा सम्मेलन का आयोजन किया गया। केन्द्र मे हिन्दी को और राज्य में वहां की प्रादेशिक भाषाओं को उचित स्थान देने के लिए ही मंच की स्थापना की है।

संस्था संघ ने विविध प्रदेशों में क्षेत्रीय हिन्दी कार्यकर्ता शिविरों का आयोजन करके हिन्दी-प्रचारकों को प्रोत्साहित किया। संघ की अनेक योजनायें हैं जिनमें भारतीय भाषाओं के वरिष्ठ साहित्यकारों की हिन्दी-प्रदेश में सद्भावना यात्राओं और हिन्दीतर भाषा-भाषी हिन्दी लेखकों की संगोष्ठियों के आयोजन प्रमुख हैं। संघ के द्वारा आयोजित राजभाषा सम्मेलन बहुत अधिक सफल हुए हैं। दोनों राजभाषा सम्मेलनों में केन्द्र मे हिन्दी और प्रदेशों में प्रान्तीय भाषाओं को राजभाषा के रूप में कार्यान्वित करने के लिए अनेक प्रस्ताव पारित हुए, जिनसे राजभाषा के रूप मे हिन्दी के प्रचार और प्रसार को व्यापक बनाने में मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। संघ की सेवा भी हिन्दी के प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण है।

नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली

भारतीय संविधान में देवनागरी में लिखित हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप मे स्वीकृत किया गया है। हिन्दी के साथ में नागरी के प्रचार-प्रसार का कार्य राष्ट्रीय एकता का कार्य माना गया है। नागरी केवल हिन्दी की ही लिपि नहीं है, संस्कृत तथा अन्य कई भारतीय भाषाओं की भी लिपि है।

देश की सभी भाषाओं की अपनी-अपनी लिपियों के साथ अतिरिक्त सहलिपि के रूप में नागरी का प्रचलन देश की भावात्मक एकता और अन्ततः मानव-मात्र की सांस्कृतिक निकटता का साधन हो सकता है—इस भावना से पूज्य विनोबाजी के निर्देशानुसार केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के प्रयास से सन् 1975 में नागरी लिपि परिषद् की स्थापना हुई। जिस प्रकार हिन्दी राष्ट्र की संपर्क-भाषा के रूप में सबको एकता के सूत्र में बांध सकती है, उसी प्रकार नागरी संपर्क-लिपि के रूप मे भारतीय भाषाओं को एकसूत्रता में बांध सकती है। नागरी को सामान्य लिपि या अतिरिक्त लिपि की बात देश में काफी समय से चल रही है। स्वर्गीय डा० श्रीमन्नारायण ने, जो नागरी लिपि परिषद् के प्रथम अध्यक्ष थे, देश मे नागरी के समर्थन मे जनमत को आकृष्ट करने के लिए कई क्षेत्रीय गोष्ठियों का आयोजन कराया था।

अखिल भारतीय स्तर पर परिषद् ने अनेक सम्मेलनों का आयोजन करके संपर्क-लिपि या सहलिपि के रूप में नागरी की उपयोगिता और उसकी सरलता की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट कराया है। विशेषकर अहिन्दी प्रदेशों मे नागरी के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट करना ही परिषद् का उद्देश्य है। इस संदर्भ मे परिषद् उस गलतफहमी का भी निराकरण कर चुकी है कि नागरी का प्रयोग अतिरिक्त लिपि के रूप में करने से किसी भी भाषा की अपनी लिपि को हानि नही पहुंचेगी। देश मे जिन बोलियों और भाषाओ के लिए अपनी कोई लिपि

नहीं है, उनके लिए नागरी का प्रयोग होना चाहिए—इस दिशा में परिषद् प्रयत्नशील है।

भारतीय भाषाओं को और विदेशी भाषाओं को नागरी के माध्यम से सिखाने के लिए परिषद् ने अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। जापानी, चीनी, इन्दोनेशियाई, फारसी, सिंहली और अरबी भाषाओं को नागरी के माध्यम से सिखाने के लिए परिषद् ने पुस्तकें तैयार की हैं। हिन्दी-प्रदेश के विविध केन्द्रों में नागरी के माध्यम से दक्षिण की भाषाओं को सिखाने के लिए वर्ग चलाने की योजना भी परिषद् ने बनाई है। पूरे देश में डाकियों को अल्पसमय में नागरी लिपि का परिज्ञान कराने की योजना भी परिषद् ने ले ली है। परिषद् की ओर से 'नागरी संगम' नाम की त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित है जिसके प्रधान संपादक हैं डा० मलिक मोहम्मद। वे परिषद् के वर्तमान अध्यक्ष भी हैं। नागरी को संपर्क-लिपि के रूप में लोकप्रिय बनाने में अनेक राष्ट्रीय नेताओं का भी सहयोग प्राप्त है।

पूरे देश में फैली हुई विविध हिन्दी प्रचारक और नागरी प्रचारक संस्थाओं ने अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा की मान्यता दिलवाने में बहुत बड़ा योगदान दिया है। समय-समय पर राजनीतिक क्षेत्रों में हिन्दी का विरोध हुआ, तब हिन्दी के राष्ट्रीय व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हुए हिन्दी के लिए अनुकूल जनमत प्राप्त करने की दिशा में इन संस्थाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। इन स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्यकर्ता राष्ट्रीय भावना और सेवा-भाव से प्रेरित होकर हिन्दी की सेवा में डटे रहे हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य के उन्नयन में इन संस्थाओं का बहुत बड़ा हाथ रहा है। जब से हिन्दी को राजभाषा का पद मिला, तब से इन संस्थाओं का कार्यक्षेत्र भी बहुत व्यापक हो गया है।

6

संविधान में हिन्दी

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् जब शासन की बागडोर भारतीयों के हाथों में आई तब शासन-प्रणाली को तय करने का सवाल उठा। सन् 1947 में ब्रिटिश सरकार ने भारत के लिए संविधान तैयार करने के लिए एक संविधान सभा की थी। संविधान सभा की प्रथम बैठक दिसंबर, 1946 में हुई। संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष के रूप में डा० राजेन्द्रप्रसाद को चुन लिया गया। संविधान सभा ने अपने कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए अनेक समितियों की स्थापना की। इनमें सबसे मुख्य 'प्रारूप समिति' थी, जिसने निरन्तर परिश्रम के बाद 21 जनवरी, 1948 को संविधान का प्रारूप तैयार कर लिया। इसपर नवंबर, 1948 में सभा द्वारा विचार-विमर्श हुआ। अन्ततः 26 नवंबर, 1949 को सभा द्वारा उसे अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया गया। 26 जनवरी, 1950 से भारत का यह संविधान लागू हुआ। इसी संविधान सभा में राजभाषा का प्रश्न भी उपस्थित हुआ।

स्वतंत्र भारत की राजभाषा को तय करने का सवाल उठा और शिक्षा के व्यापक प्रसार के लिए इसका माध्यम क्या हो, इसपर भी निर्णय करने की आवश्यकता महसूस हुई। इसके पहले इस देश में डेढ़-पौने दो सौ वर्षों तक अंग्रेज़ों की हुकूमत थी। सरकार की राजभाषा और शिक्षा-माध्यम के रूप में अंग्रेज़ी की सत्ता थी। इस कारण से कई शतियों में भारतीय भाषाओं को समुचित विकास करने का मौका नहीं मिला। देश के सभी कानून आदि अधिकारिक रूप में अंग्रेज़ी भाषा में ही थे। स्वतंत्र राष्ट्र में एक विदेशी भाषा को राजभाषा के रूप में बनाए रखने के औचित्य पर देश के राष्ट्रीय नेता विचार करने लगे और यह महसूस करने लगे कि अंग्रेज़ी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा को राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया जाए। अखिल भारतीय स्तर पर एक भारतीय भाषा का चयन करना इसलिए भी आवश्यक महसूस हुआ कि भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में, जहां अनेकानेक भाषाओं, बोलियों और उपबोलियों का प्रचलन है, भावात्मक एकता स्थापित करने के लिए संपर्क-भाषा नितान्त आवश्यक है।

19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही देश में धार्मिक, राजनीतिक एवं धार्मिक नेताओं एवं संस्थाओं द्वारा राष्ट्रभाषा की आवश्यकता के लिए व्यापक प्रयास

किए जा चुके थे। राष्ट्रभाषा आन्दोलन के परिणामस्वरूप देश में जो वातावरण बना, उससे संविधान सभा के सदस्य परिचित थे ही और वे इस बात पर सहमत थे कि देश मे एक ऐसी भाषा अवश्य होनी चाहिए जो भावात्मक एकता को मजबूत करने में सहायक सिद्ध हो और जो अन्तर्प्रान्तीय और केन्द्र सरकार के कार्य के लिए अंग्रेजी का स्थान ले सके। यह बात बिलकुल स्पष्ट थी कि अंग्रेजी के स्थान को लेने के मामले में भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी ही समर्थ थी। इसका यह कारण नही था कि साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी अन्य भारतीय भाषाओं से अधिक समृद्ध थी, परन्तु हिन्दी के पक्ष में सबसे बड़ा तर्क यह था कि वह देश में सबसे अधिक लोगों द्वारा समझी एवं बोली जाती थी और सदियों से वह अखिल भारतीय स्वरूप को प्राप्त कर चुकी थी।

जब संविधान सभा में राजभाषा के रूप में हिन्दी का मामला आया तब कुछ मतभेद अवश्य उठ खड़ा हुआ। हिन्दी के पक्ष और विपक्ष में अनेक बातें कही गईं। राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा को मानने वालों मे भाषा के प्रश्न पर वाद-विवाद शुरू हुआ। इस मतभेद का प्रमुख कारण 'राजभाषा' का नामकरण था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के संदर्भ मे 'हिन्दी' और 'हिन्दुस्तानी' के प्रश्न को लेकर राजनीतिक नेताओं के बीच में जो मतभेद था और वह अब इस रूप में प्रस्तुत हुआ कि देश की राजभाषा एवं संघभाषा को 'हिन्दी' नाम से अभिहित किया जाए या उसे 'हिन्दुस्तानी' नाम दिया जाए।

'हिन्दी' नाम का समर्थन करने वाले नेताओं का तर्क यह था कि भारत के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण के बाद 'उर्दू' भाषा का महत्त्व स्वतः कम हो गया है, इसलिए हिन्दी और उर्दू की मिश्रित शैली में 'हिन्दुस्तानी' शब्द की आवश्यकता अब नहीं रही। कुछ दूसरे नेता ऐसा भी सोचते थे कि गांधीजी द्वारा समर्पित और प्रचारित शब्द 'हिन्दुस्तानी' ही देश की राजभाषा के लिए अधिक उपयुक्त है। संविधान सभा में हिन्दी और हिन्दुस्तानी के प्रश्न को लेकर काफी वाद-विवाद हुआ। स्पष्ट रूप से राजनीतिक नेता दो दलो में बंटे हुए थे। देश के अनेक उच्चकोटि के नेता 'हिन्दुस्तानी' का समर्थन करने लगे।

'हिन्दी' के समर्थक भी कम नही थे। हिन्दुस्तानी के समर्थक ऐसी भाषा के पक्ष मे थे जो संस्कृत और फारसी के शब्दों से बोझिल न हो। अहिन्दीभाषी प्रदेशों के बहुत-से प्रतिनिधि 'हिन्दुस्तानी' के पक्ष में नहीं थे और देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को ही राजभाषा मानने के पक्ष में थे। बहुत-से अन्य नेता जो हिन्दुस्तानी के समर्थक थे, जो यह चाहते थे कि गांधीजी के द्वारा समर्थित हिन्दुस्तानी को रखना गांधीजी की स्मृति को स्थिर रखने के लिए भी वांछनीय है। हिन्दी के समर्थकों का यह भी दावा था कि हिन्दुस्तानी जैसी भाषा का देश मे अस्तित्व ही नहीं है। ऐसे विचारकों का यह तर्क था कि हिन्दुस्तानी तो हिन्दी

का आम बोलचाल का रूप है। इसलिए वह हमारे विधि-विधान की भाषा कभी नहीं बन सकती। हिन्दुस्तानी के समर्थक तो आम भाषा होने के कारण हिन्दुस्तानी को चाहते थे। हिन्दी और हिन्दुस्तानी के प्रश्न के साथ-साथ संविधान सभा में अंकों के सम्बन्ध में भी गहरा मतभेद हुआ। कुछ प्रतिनिधियों का यह विचार था कि विशुद्ध भारतीय नागरी अंक ही ग्रहण किया जाए, जबकि दूसरे कुछ नेता अरबी-रोमन अंकों का समर्थन करते थे। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा सेठ गोविन्ददास आदि नेता नागरी अंकों के प्रबल समर्थक थे तथा दूसरी ओर श्री जवाहरलाल नेहरू आदि कुछ अन्य नेता रोमन अंको का समर्थन करते थे। उनका विचार था कि रोमन अंक अंतर्राष्ट्रीय अंक हैं, इसलिए इन्हें ही देश की राजभाषा मे स्थान मिलना चाहिए।

संविधान सभा के बाहर हिन्दी का प्रबल समर्थन होने लगा था। कांग्रेस दल की एक बैठक मे हिन्दी के पक्ष में निर्णय किया गया। इस बीच में अगस्त, 1949 में राष्ट्रभाषा व्यवस्था परिषद् का एक विराट् सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ और इस सम्मेलन में अनेक अहिन्दीभाषी विद्वानों एवं नेताओं ने हिन्दी का समर्थन किया। अधिवेशन में यह प्रस्ताव पारित हुआ कि देवनागरी में लिखित हिन्दी को ही 'राजभाषा' के रूप में स्वीकार किया जाए। परिषद् के इस महत्वपूर्ण निर्णय का प्रभाव संविधान सभा पर भी पड़ा। संविधान सभा में 11, 12, 13 तथा 14 दिसम्बर, 1949 को इस प्रश्न पर बड़ा वाद-विवाद हुआ। सभा के समक्ष कई विकल्प प्रस्तुत थे। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा सेठ गोविन्ददास आदि ने हिन्दी तथा नागरी अंकों के समर्थन मे पूरा जोर लगाया तथा प्रारूप में कई संशोधन भी प्रस्तुत किए गए। अन्ततः पर्याप्त वाद-विवाद के बाद सभा ने इस प्रश्न को हल कर ही लिया।

संविधान सभा मे देवनागरी लिपि में लिखित 'हिन्दी' को राजभाषा स्वीकार किया गया। अंको के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय (रोमन) अंकों को स्वीकार किया गया। राजभाषा के रूप में 'हिन्दी' को स्वीकृति देने में तीन मुख्य बातें थीं—1. हिन्दी का राजभाषा के रूप में विकास किया जाए, 2. संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष तक अंग्रेजी ही राजभाषा रहे और 3. हिन्दी के विकास के कारण अन्य भारतीय भाषाओं के हितों की उपेक्षा न हो। संविधान सभा के निर्णय का सामान्य रूप से पूरे देश मे स्वागत हुआ। संविधान सभा द्वारा स्वीकृत भारतीय संविधान में राजभाषा से संबंधित अनुच्छेद इस प्रकार हैं :

संघ की राजभाषा

343 (1) संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अकों का रूप भारतीय अंकों का

अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा। (2) खण्ड (1) से किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के प्रारंभ से पन्द्रह वर्ष की कालावधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी, जिनके लिए ऐसे प्रारंभ के ठीक पहले यह प्रयोग की जाती थी, परन्तु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में, आदेश द्वारा संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसीके लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(2) इस अनुच्छेद मे किसी बात के होते हुए भी संसद उक्त पन्द्रह साल की कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा

(क) अंग्रेजी भाषा का, अथवा

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का, ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हो।

राजभाषा के लिए संसद का आयोग और समिति

344—(1) राष्ट्रपति इस संविधान के प्रारंभ में पांच वर्ष की समाप्ति पर तथा तत्पश्चात् ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर आदेश द्वारा एक आयोग गठित करेगा, जो एक सभापति और अष्टम अनुसूची मे उल्लिखित भिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले अन्य सदस्यो से मिलकर बनेगा, जैसे कि राष्ट्रपति नियुक्त करे, तथा आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया का आदेश परिभाषित करेगा।

(2) राष्ट्रपति को—

(क) संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी भाषा के लिए उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के,

(ख) संघ के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसीके लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बन्धनो के,

(ग) अनुच्छेद 348 में वर्णित प्रयोजनों में से सब या किसीके लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के,

(घ) संघ के किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के लिए किए जाने वाले अंकों के रूप के,

(ङ) संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच अथवा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच संचार की भाषा तथा उसके प्रयोग के बारे में राष्ट्रपति द्वारा आयोग से पृच्छा किए हुए किसी अन्य विषय के बारे मे सिफारिश करने का आयोग का कर्तव्य होगा।

(3) खंड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का तथा लोकसेवाओं के बारे में अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के लोगों के न्यायपूर्ण दावों और हितों का सम्यक् ध्यान रखेगा।

(4) तीस सदस्यों की एक समिति गठित की जाएगी, जिनमें से बीस लोकसभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्यसभा के सदस्य होंगे, जोकि क्रमशः लोकसभा के सदस्यों तथा राज्यसभा के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

(5) खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करना तथा उनपर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करना समिति का कर्तव्य होगा।

(6) अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुए भी राष्ट्रपति खण्ड (5) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् इस सारे प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश निकाल सकेगा।

राज्य की राजभाषा या राजभाषाएं

345—अनुच्छेद 346 और 347 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसीके लिए प्रयोग के अर्थ उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा, परन्तु जब तक राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी, जिनके लिए इस सविधान के प्रारंभ से ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में अथवा राज्य और संघ के बीच में संचार के लिए राज्यभाषा

346—संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिए तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच मे तथा किसी राज्य और संघ के बीच में संचार के लिए राजभाषा होगी, परन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच में संचार के लिए राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचार के लिए वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी।

347—तद्विषयक मांग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाए कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाए तो वह निदेश

दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए जैसा कि वह उल्लिखित करे, राजकीय अभिज्ञा दी जाए।

उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में तथा अधिनियमों, विधेयकों आदि में प्रयोग की जाने वाली भाषा

348 (1) —इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपलब्ध न करे, तब तक

क. उच्चतम न्यायालय में तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में सब कार्यवाहियां, जो

1. विधेयक अथवा उनपर प्रस्तावित किए जाने वाले जो संशोधन संसद के प्रत्येक सदन में पुनःस्थापित किए जाएं, उन सबके प्राधिकृत पाठ।
2. अधिनियम संसद द्वारा या राज्य के विधानमण्डल द्वारा पारित किए जाएं तथा जो अध्यादेश राष्ट्रपति या राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति की पूर्वसम्मति से हिन्दी भाषा का या उस राज्य में राजकीय प्रयोजन के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग उस राज्य में मुख्य स्थान रखने वाले उच्च न्यायालय में की कार्यवाहियों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा, परन्तु इस खंड की कोई बात वैसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश को लागू न होगी।
3. खण्ड (1) के उपखड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, वहां किसी राज्य के विधानमंडल ने, उस विधानमंडल में पुन.स्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों मे अथवा उस उपखंड की कंडिका (3) मे निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से अन्य किसी भाषा के प्रयोग को विहित किया है, वहां उस राज्य के राजकीय सूचना-पत्र में उस राज्य के राज्यपाल या राज-प्रमुख के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा मे उसका अनुवाद उस खण्ड के अभिप्रायों के लिए उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

भाषा संबंधी कुछ विधियों के अधिनियमिय करने के लिए विशेष प्रक्रिया

349—इस संविधान के प्रारंभ से 15 वर्षों की कालावधि तक अनुच्छेद 348 के खण्ड (1) में वर्णित प्रयोजनों में से किसीके लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपबन्ध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन ससद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना न तो पुरः स्थापित और न प्रस्तावित किया जाएगा तथा ऐसे किसी विधेयक के पुरःस्थापित अथवा ऐसे किसी संशोधन के प्रस्तावित किए जाने की मंजूरी अनुच्छेद 344 के खण्ड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर तथा उस अनुच्छेद के खण्ड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर, विचार करने के पश्चात् ही राष्ट्रपति देगा।

350—किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति संघ मे या राज्य मे प्रयोग होने वाली किसी भाषा मे अभिवेदन देने का प्रत्येक व्यक्ति को हक होगा।

हिन्दी भाषा के विकास के लिए निदेश

351—हिन्दी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप-शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उस शब्द-भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।[1]

संविधान के 343 अनुच्छेद के अनुसार संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी है। इससे देश के बहुमत की इच्छा ही प्रतिध्वनित होती है। इसी अनुच्छेद की दूसरी धारा के अनुसार संविधान के प्रारंभ से 15 वर्ष की कालावधि के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग की जो व्यवस्था की गई थी, उसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि हिन्दी सरकारी कामकाज के लिए सक्षम नहीं थी। अंग्रेजी के शासनकाल में सरकारी कामकाज की भाषा और उच्च शिक्षा की भाषा अंग्रेजी थी और देश के सभी कानून

1. राजभाषा संबंधी अनुच्छेद तथा धाराएं, भारत का संविधान, पृ० 200-205

अंग्रेजी में थे, इसलिए व्यावहारिक रूप से यह उचित समझा गया कि पन्द्रह वर्ष तक अर्थात् जनवरी, सन् 1965 तक अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जाए। इसके पीछे यह मंशा थी कि इस अवधि के अन्तर्गत सभी कानून विधि आदि हिन्दी में तैयार कर लिए जाएंगे ताकि नियत तारीख से राजभाषा में ही काम होने लगे। साथ ही राष्ट्रपति को यह भी अधिकार दिया गया था कि वे इस कालावधि में अंग्रेजी के साथ कुछ कार्यों के लिए हिन्दी के प्रयोग का भी आदेश दे सकते हैं। इस अनुच्छेद की तीसरी धारा के अन्तर्गत संसद को यह अधिकार प्रदान किया गया था कि वह पन्द्रह साल की अवधि के बाद भी विधि द्वारा अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को जारी रखने के लिए उपबन्ध कर सकती है।

अनुच्छेद 344 के अनुसार राष्ट्रपति संविधान के प्रथम पांच और दस वर्ष के बाद राजभाषा आयोग नियुक्त कर सकता है। इन आयोगों का मुख्य संविधानिक प्रयोजन यह था कि वे राष्ट्रपति को संघ के सरकारी कार्यों के लिए हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर एवं अधिक प्रयोग के संबंध मे और संघ के सरकारी प्रयोजनों में से सब या किसीके लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को कम करने या उसपर रोक लगाने के लिए सिफारिश करें। उस आयोग की सिफारिशों पर विचार करने और उनपर अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को पेश करने के लिए इसी अनुच्छेद में संसद के (20 लोकसभा के और 10 राज्यसभा के) सदस्यों की एक संसदीय समिति की स्थापना की भी व्यवस्था थी। अनुच्छेद 345 में यह व्यवस्था है कि राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा एक या अधिक प्रादेशिक भाषाओं या हिन्दी को सरकारी प्रयोजनों के लिए स्वीकार कर सकेगा।

अनुच्छेद 346 में यह स्पष्ट किया गया है कि एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच तथा किसी राज्य और संघ के बीच मे पत्र-व्यवहार के लिए संघ की राजभाषा का ही प्रयोग होगा।

अनुच्छेद 347 के अनुसार अगर किसी राज्य का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाए तो राष्ट्रपति उस भाषा को सरकारी अभिज्ञा दे सकता है। अनुच्छेद 348 मे उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों आदि की भाषा की व्यवस्था है। अनुच्छेद 349 में यह व्यवस्था है कि संविधान के प्रारंभ से पन्द्रह वर्षों की अवधि तक अंग्रेजी के स्थान पर कोई दूसरी भाषा प्राधिकृत पाठ के लिए स्वीकार्य नहीं हो सकती। अनुच्छेद 350 में भाषागत अल्पसंख्यकों के अधिकारों को सुरक्षित रखा गया है।

हिन्दी के भावी रूप की परिकल्पना

संविधान का अनुच्छेद 351 सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमे हिन्दी के भावी स्वरूप के विकास की परिकल्पना सन्निहित है। हिन्दी को विकसित करने की दिशाओं का इसमें संकेत है। इस अनुच्छेद के अनुसार संघ सरकार का यह कर्तव्य है कि वह हिन्दी भाषा के विकास और प्रसार के लिए समुचित प्रयास करेगा ताकि भारत में राजभाषा हिन्दी के ऐसे स्वरूप का विकास हो, जो समूचे देश में प्रयुक्त हो सके और जो भारत की मिली-जुली संस्कृति की अभिव्यक्ति की वाहिका बन सके। इसके लिए संविधान में इस बात का भी निर्देश दिया गया है कि हिन्दी में अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली और शैली को भी अपनाया जाए और मुख्यतः संस्कृत तथा गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण कर उसके शब्द-भण्डार को समृद्ध किया जाए। संविधान के निर्माताओं की यह प्रबल इच्छा थी कि हिन्दी भारत मे ऐसी सर्वसामान्य भाषा के स्वरूप को ग्रहण करे जो सब प्रान्तों के निवासियों को स्वीकार्य हो। संविधान के निर्माताओं को यह आशा थी कि हिन्दी अपने स्वाभाविक विकास में भारत की अन्य भाषाओं से घरिष्ठ सम्पर्क स्थापित करेगी और हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच में साहित्य का आदान-प्रदान भी होगा।

भारतीय संविधान मे हिन्दी का उल्लेख दो स्थानों पर किया गया है—पहला, संविधान के अनुच्छेद 343 में देवनागरी लिपि में लिखित संघ की राजभाषा हिन्दी और दूसरा, अनुच्छेद 351 में उल्लिखित अष्टम अनुसूची में बताई गई भारतीय भाषाओं में भी हिन्दी का समावेश किया गया है। इससे दो हिन्दी के उत्पन्न होने की गुंजाइश हो सकती है। इससे हिन्दी के दो भिन्न-भिन्न रूपों—संघीय और प्रादेशक—की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है। कुछ हिन्दी-भाषी विद्वानों ने हिन्दी के इन दोनों रूपों की कल्पना से भयभीत होकर यह साबित करने का प्रयास किया है कि संविधान-निर्माताओं का कभी भी हिन्दी के दो रूप को मानने का उद्देश्य नही था। दो जगहों पर हिन्दी का उल्लेख होने मे कोई आशंका भी नहीं है। संविधान के निर्माताओं ने उचित ढंग से ही यह आशा की थी कि राजभाषा हिन्दी अपने भावी रूप का विकास करने में अन्य भारतीय भाषाओं का सहारा लेगी। यह इसलिए था कि राजभाषा हिन्दी को सबके लिए सुलभ और ग्राह्य रूप धारण करना है और इस प्रक्रिया में वह सभी भारतीय भाषाओं से सरल से सरल शब्दों और शैलियों को अपना सकती है। इससे अष्टम अनुसूची में उल्लिखित हिन्दी की शैली से कोई टकराहट नहीं है। हिन्दी प्रादेशिक भाषा के रूप में भी अपना साहित्यिक स्वरूप बनाए रख सकती है। इस प्रकार हिन्दी की दो शैलियों—साहित्यिक और आमफहम—का विकास हो

सकता है। इस स्थिति से घबराने की कोई बात नहीं है। राजभाषा हिन्दी के विकास में सभी भारतीय भाषाओं का सहयोग अपेक्षित और वांछनीय है। हिन्दी के राष्ट्रीय स्वरूप का महत्त्व इसीमें है कि वह अन्य भारतीय भाषाओं को भी अपने में आत्मसात करे। अनुच्छेद 351 हिन्दी भाषा के निरन्तर विकास में ही यह कल्पना करता है। यह संविधान-विषयक भाषा-नीति का मुख्य अंग है। इसके आलोक में हमें हिन्दी के प्रगामी प्रयोग, अभिवृद्धि एवं विकास के विषय में दिशाएं निर्धारित करती हैं।

संविधान 26 जनवरी, 1950 में आया और संविधान में हिन्दी को 1965 तक राजभाषा के पद पर आसीन करने की व्यवस्था कर दी गई। यह आशा की गई कि संविधान के लागू होने के बाद पन्द्रह वर्षों में हिन्दी भारत की राजभाषा के रूप में सक्षम बन सकेगी। इसके बाद राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 343 के खण्ड 2 के प्रतिबन्धात्मक खण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करके एक आदेश जारी किया जिसका नाम था 'संविधान आदेश 1955'।

राष्ट्रपति द्वारा प्रसारित राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी भाषा-आदेश

इस आदेश के उपबन्धों के अन्तर्गत भारत सरकार के सभी मन्त्रालय तथा सम्बद्ध विभाग निम्न कार्यों के लिए अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी भाषा का भी प्रयोग कर सकेंगे :

1. जनता के सदस्यों के साथ पत्र-व्यवहार में।
2. प्रशासकीय रिपोर्ट सरकारी पत्रिकाओं तथा उन रिपोर्टों में जो संसद को दी जाने वाली हों।
3. सरकारी प्रस्तावों तथा संसदीय विधियों में।
4. उन राज्य शासनों के साथ पत्र-व्यवहार में जिन्होंने राजभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार कर लिया हो।
5. सन्धिपत्र तथा करारनामे में।
6. विदेशी राज्यों, उनके राजदूतों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ पत्र-व्यवहार में।
7. अन्तर्राजनैतिक तथा वाणिज्य—इनके अधिकारियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के भारतीय प्रतिनिधियों के लिए जारी किए जाने वाले लेखों में।

अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के प्रयोग को धीरे-धीरे बढ़ाने के लिए जो सुझाव दिए गए थे, उनपर भारत सरकार की एक अन्तर्विभागीय बैठक में चर्चा की गई और भारत सरकार के सभी मन्त्रालयों को अपने कुछ कामों में

उचित नहीं है।

2. यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से भारत की सभी भाषाएं समृद्ध हैं, फिर भी अधिक लोगों द्वारा बोली तथा समझी जाने के कारण हिन्दी समस्त भारत के लिए एक सुस्पष्ट भाषा-माध्यम है।

3. पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में स्पष्टता, अर्थ की शुद्धता, सरलता, पांडित्यपूर्ण भाषा का त्याग एवं अधिकाधिक देशज और लोकप्रिय शब्दों के प्रयोग पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली को भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार थोड़े हेर-फेर के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए। पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की गति तीव्र होनी चाहिए।

4. चौदह वर्ष की उम्र तक के प्रत्येक विद्यार्थी को हिन्दी का उचित ज्ञान प्राप्त कराया जाए ताकि प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक जीवन की गतिविधियों और सरकार की कार्यवाहियों को समझ सके।

5. सारे देश में माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर हिन्दी का शिक्षण अनिवार्य कर दिया जाए। हिन्दीभाषी क्षेत्रों के विद्यार्थियों के लिए दूसरी दक्षिण भारतीय भाषाओं का ज्ञान अनिवार्य किया जाना आयोग को मान्य नहीं है।

6. शिक्षा के माध्यम के रूप में विषय और शिक्षण की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए सभी विश्वविद्यालय आपस में परामर्श करके निर्णय करें कि भिन्न-भिन्न अभ्यास-क्रमों के लिए किस माध्यम को स्वीकार किया जाए। परन्तु फिर भी सभी विश्वविद्यालयों को चाहिए कि हिन्दी-माध्यम से जो विद्यार्थी परीक्षाओं में बैठना चाहें, उनके लिए वे उचित प्रबन्ध करें।

7. प्रशासनिक कर्मचारियों के लिए हिन्दी का निश्चित अवधि में आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए नियम लागू किया जाए और ऐसा न करने वालों को दण्डित किया जाए तथा निर्धारित स्तर से अधिक ज्ञान प्राप्त करने पर कर्मचारियों को पुरस्कार आदि देकर प्रोत्साहित किया जाए।

8 जनता से सीधा सम्पर्क रखनेवाले विभागों और संगठनों के आंतरिक कार्य में हिन्दी और जनता से व्यवहार हेतु क्षेत्रीय भाषा काम में लाई जाए। ऐसे विभागों में भर्ती के लिए क्षेत्रीय भाषा के ज्ञान के साथ-साथ हिन्दी की योग्यता का स्तर भी निर्धारित किया जाए और बाद में विभागीय प्रशिक्षण द्वारा हिन्दी की योग्यता बढ़ाई जाए।

9. भारत सरकार के संवैधानिक प्रकाशन अधिक से अधिक हिन्दी भाषा में प्रकाशित किए जाएं और हिन्दी की प्रगति के लिए सरकार द्वारा भरसक प्रयत्न किए जाएं।

10. राज्य और संघ सरकार के अधिकारियों के लिए किसी स्तर का हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य किया जाए और उसके लिए उन्हें अधिकाधिक पुरस्कार देकर

प्रोत्साहित किया जाए।

11. संसद और विधानमण्डलों की कार्यवाहियों की सफलता की दृष्टि से हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं दोनों का व्यवहार होना चाहिए। स्वीकृत सरकारी कानून हिन्दी में ही होने चाहिए, परन्तु जनता की सुविधा के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में उनके अनुवाद प्रकाशित किए जाने चाहिए और माध्यम के पूर्ण रूप से बदल जाने पर देश के सम्पूर्ण संवैधानिक ग्रन्थ हिन्दी भाषा में ही उपलब्ध होने चाहिए।

12. देश में न्याय देश की भाषा में किया जाए। इसके लिए यह जरूरी है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की समस्त कार्यवाही तथा अभिलेखों, निर्णयों और आदेशों के आवश्यकतानुसार क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद भी साथ में रखे जाएं। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को अंग्रेजी के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं में भी निर्णय देने का अधिकार होना चाहिए।

13. प्रतियोगिता परीक्षाओं का माध्यम सुसंगत होना चाहिए। अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाओं के हेतु कर्मचारियों के लिए हिन्दी की योग्यता रखना आवश्यक किया जाए। अतः परीक्षाओं में हिन्दी का अनिवार्य प्रश्नपत्र रखा जाए, परन्तु अहिन्दीभाषी विद्यार्थियों से इतर भाषाओं से सम्बन्धित विषयों पर वैकल्पिक प्रश्न पूछे जाने के लिए एक प्रश्नपत्र रखा जाए, जिससे समानता बनी रहे।

14. हिन्दी के विकास एवं प्रचार की दृष्टि से सरकार को ठोस कदम उठाने चाहिए। सरकार स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए भी आवश्यक कदम उठाए तथा उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करे।

15. भारत की सब भाषाओं के लिए यदि एक लिपि रखने का प्रश्न हो तो इसके लिए देवनागरी लिपि ही सर्वथा उपयुक्त होगी। रोमन लिपि को स्वीकार करने से कोई लाभ नहीं होगा। देवनागरी लिपि के सुधार के लिए भी सरकार को आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

16. हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं की शब्दावली तथा अभिव्यक्ति के मानकीकरण के लिए सरकार को चाहिए कि वह भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों को इस दृष्टि से सुविधाएं प्रदान करे और इसके लिए हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाओं में समाचार देने वाली संस्थाओं के निर्माण करने का प्रयत्न करे।

17. राजभाषा हिन्दी के सफल उन्नयन एवं विकास तथा उसके उचित अधीक्षण का उत्तरदायित्व विशेष रूप से केन्द्रीय सरकार की एक प्रशासकीय इकाई पर डालना चाहिए। संघभाषा हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के लिए 'भारतीय भाषाओं की राष्ट्रीय अकादमी' की यदि स्थापना की जाए तो अति हितकर होगा।

18. भारत के भाषागत एवं सांस्कृतिक ढांचे में गहरी समानता लाने तथा भारत की विभिन्न भाषाओं के बीच की दूरी को कम करने के लिए बहु-भाषिकता के सिद्धांत को प्रोत्साहित किया जाए तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय की शिक्षा पद्धति में समुचित व्यवस्था की जाए।

राजभाषा आयोग के उपर्युक्त प्रमुख सुझावों पर दृष्टि डालते हुए यह कहा जा सकता है कि आयोग ने हिन्दी के अधिकाधिक और प्रगामी प्रयोग पर बल दिया था। खेर आयोग ने जो ठोस सुझाव रखे थे, सरकार ने उन्हे औपचारिक मानते हुए राजभाषा हिन्दी के विकास के लिए कोई ठोस कदम नही उठाए। आयोग के सुझावों को अमल मे लाने के दुष्परिणाम आज राजभाषा हिन्दी को भोगने पड़ रहे हैं। अगर ठोस कदम उस वक्त उठाए होते तो राजभाषा हिन्दी का पक्ष काफी मजबूत होता और हिन्दी की वर्तमान स्थिति देखने की नौबत नहीं आई होती।

संसदीय राजभाषा समिति

राजभाषा आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 344 खण्ड (4) और (5) में दी गई व्यवस्था के अनुसार लोकसभा के 20 और राज्यसभा के 10 सदस्यों की एक संसदीय समिति का गठन किया गया और तत्कालीन केन्द्रीय गृहमंत्री श्री गोविन्दवल्लभ पंत इस समिति के अध्यक्ष चुने गए। इस समिति ने लगातार कई बैठकों के पश्चात् अपना अंतिम निर्णय लिया और 8 फरवरी, 1959 को अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत की। अप्रैल, 1959 में यही रिपोर्ट संसद मे चर्चा के लिए प्रस्तुत की गई। समिति के प्रमुख सुझाव इस प्रकार थे :

1. सरकारी पदों और नौकरियों के लिए इस समय जो अंग्रेजी की शिक्षा का स्तर निर्धारित है, संक्रमण की अवस्थाओ मे हिन्दी-ज्ञान का स्तर यदि कुछ कम भी हो तो चल सकता है।

2. निर्धारित समय मे कर्मचारियों द्वारा निर्धारित हिन्दी का ज्ञान प्राप्त न करने पर उनको दंडित किया जाना असगत होगा।

3. संघ सरकार के प्रशासन में जहा भारतीय पारिभाषिक शब्दावली के विकास की आवश्यकता न हो तथा विदेशों से सम्बन्ध बनाए रखने के लिए अनिश्चित काल तक अंग्रेजी का प्रयोग नही होना चाहिए।

4. 45 वर्ष से ऊपर की आयु वाले सरकारी कर्मचारियों को हिन्दी के प्रशिक्षण से छूट दी जानी चाहिए।

5. संघ सरकार द्वारा ऐसी योजना बनाई जाए, जिसमें हिन्दी का राजभाषा के रूप मे अधिकाधिक प्रयोग एवं विकास किया जा सके।

6. सरकार एवं मंत्रालयों के प्रकाशनों में रोमन अंकों के साथ-साथ देवनागरी अंकों को प्रयुक्त करने के बारे में संघ सरकार की मूलभूत समान नीति होनी चाहिए।

7. संसद तथा राज्यों के विधानमण्डलों में पारित होने वाले विधेयकों की भाषा अंग्रेजी का स्थान जब तक हिन्दी न ले ले, तब तक संसद में विधि-निर्माण का कार्य अंग्रेजी में होता रहे। कानूनों के हिन्दी में प्राधिकृत अनुवाद दिए जाएं तथा संभव हो तो विभिन्न राज्यों की राजभाषाओं में भी उनके अनुवाद की व्यवस्था की जाए।

8. राज्यों की विधानसभाओं, अपने राज्यों की राजभाषाओं में विधि निर्माण-कार्य कर सकती है, परन्तु संविधान के 348 अनुच्छेद के अनुसार कानूनों का प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में प्रकाशित करना आवश्यक है। यदि कानून का मूलपाठ अन्य भाषा में है तो साथ में हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

9. राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उच्च न्यायालयों में राज्य की राजभाषा अथवा हिन्दी का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु उनके द्वारा किए जाने वाले निर्णयों, अभिलेखों और आदेशों को अंग्रेजी में ही होना चाहिए तथा दूसरी भाषाओं में दिए जाने वाले निर्णयों, डिग्रियों एवं आदेशों का अंग्रेजी अनुवाद साथ में रहना चाहिए।

10. हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाओं का ज्ञान न्यायाधीशों के लिए उपयुक्त हो सकता है, परन्तु उनके लिए भाषा सम्बन्धी परीक्षाए निर्धारित करना उचित नहीं है।

11. सांविधिक ग्रन्थों के अनुवाद तथा कानूनी पारिभाषिक शब्दावली आदि के निर्माण की उचित योजना बनाने तथा संपूर्ण कार्य की व्यवस्था करने के लिए भारत के विभिन्न भाषा-भाषी विधि विशारदों के स्थायी आयोग की उच्चस्तरीय समिति का निर्माण किया जाना चाहिए।

12. अखिल भारतीय तथा उच्चस्तरीय केन्द्रीय सेवाओं की परीक्षाओं के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को चलने दिया जाए तथा कुछ समय बाद हिन्दी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाए। तदनन्तर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों को वैकल्पिक माध्यम के रूप में चलने दिया जाए।

13. सन् 1965 तक भारत सरकार के राजकाज की प्रधान भाषा अंग्रेजी रहे और इस अवधि में हिन्दी गौण राजभाषा रहे। सन् 1965 के बाद हिन्दी प्रधान राजभाषा रहे तथा अंग्रेजी को सह-राजभाषा का स्थान दिया जाए। संसद अपने अधिनियम द्वारा अंग्रेजी के प्रयोग के लिए जो सीमा एवं क्षेत्र निर्धारित करेगी तब तक आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग जारी रहे।

संसदीय राजभाषा समिति के पीछे दिए मुख्य सुझावों से राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन और सेठ गोविन्ददास असहमत और असंतुष्ट थे और उन्होंने यह आरोप लगाया कि सरकार ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में प्रस्थापित करने के लिए आवश्यक कदम नहीं उठाए हैं।

इन दोनों नेताओं ने समिति द्वारा अंग्रेजी को राजभाषा बनाए रखने का भी घोर विरोध किया। संसदीय समिति ने राजभाषा आयोग के अधिकांश सुझावों को स्वीकार करने की राय राष्ट्रपति को दी। इसके अनुसार राष्ट्रपति ने 27 अप्रैल, 1960 को संघ राजभाषा के सम्बन्ध में एक आदेश जारी किया।

संघ राजभाषा के सम्बन्ध में राष्ट्रपति का 1960 का आदेश

संसदीय समिति की रिपोर्ट पर संसद के दोनों सदनों में गंभीर चर्चा होने के बाद राष्ट्रपति ने संघीय राजभाषा के सम्बन्ध में 27 अप्रैल, 1960 को एक आदेश जारी किया। इस आदेश में दिए गए प्रमुख निर्देश इस प्रकार हैं :

1. अखिल भारतीय सेवाओं और उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती के लिए परीक्षा का माध्यम अभी अंग्रेजी बना रहे और कुछ समय बाद हिन्दी वैकल्पिक माध्यम के रूप में अपना ली जाए। बाद में किसी प्रकार की नियत कोटा प्रणाली अपनाए बिना परीक्षा के माध्यम के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग शुरू करने की व्यवस्था की जाए।

2. प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के लिए अंग्रेजी और हिन्दी दोनों ही, परीक्षा का माध्यम रहें।

3. निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के निर्माण एवं समन्वय का प्रयत्न किया जाए तथा इसके लिए शिक्षा मंत्रालय आवश्यक व्यवस्था करते हुए एक आयोग का निर्माण करे।

4. सभी प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद किया जाए तथा उसमें एकरूपता हो।

5. शिक्षा मंत्रालय हिन्दी-प्रचार की व्यवस्था को और इस कार्य में लगी गैर-सरकारी संस्थाओं की भी सहायता करे।

6. केन्द्रीय सरकार विभागों के स्थानीय कार्यालय अपने आंतरिक कार्यों के लिए हिन्दी का प्रयोग करें और जनता के व्यवहार में प्रादेशिक भाषा का प्रयोग किया जाए। कर्मचारियों की भर्ती तथा विकेन्द्रीकरण आदि में इस आवश्यकता को ध्यान में रखा जाए।

7. संसदीय अधिनियम और विधेयक अंग्रेजी में बनते रहें, किन्तु उनका प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद उपलब्ध कराया जाए।

8. उच्चतम न्यायालय की भाषा अंततः हिन्दी होनी चाहिए। उच्च न्यायालय के निर्णयों, आज्ञाप्तियों और आदेशों के प्रयोजनों के लिए हिन्दी और राज्यों की राजभाषाओं का प्रयोग विकल्पतः किया जा सकेगा। इस सम्बन्ध में विधि मंत्रालय को आवश्यक कार्यवाही करनी चाहिए।

9. तृतीय श्रेणी से नीचे के कर्मचारियों, औद्योगिक संस्थानों के कर्मचारियों और कार्यप्रभारित कर्मचारियों को छोड़कर उन सभी केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी का सेवाकालीन प्रशिक्षण अनिवार्य बना दिया जाए, जिनकी आयु 1 जनवरी, 61 को 45 वर्ष से कम हो। गृह मंत्रालय टंककों और आशुलिपिकों को हिन्दी टंकण तथा आशुलेखन में प्रशिक्षण देने के लिए भी प्रबन्ध करे।

10. एक मानक विधि शब्दकोश बनाने, हिन्दी में कानून बनाने और कानूनी शब्दावली के निर्माण के लिए विभिन्न राष्ट्रीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले कानून के विशेषज्ञों का एक स्थायी आयोग स्थापित किया जाए।

राजभाषा अधिनियम, 1963

संविधान के अनुसार पन्द्रह वर्ष के बाद सारा सरकारी कामकाज हिन्दी में शुरू होना था, परन्तु सरकार की ढुल-मुल नीति के कारण यह सम्भव नहीं हो सका। हिन्दी को सक्षम बनाने के लिए जो ठोस कदम केन्द्र सरकार को और हिन्दीभाषी क्षेत्रों को उठाने थे, उनमें परिलक्षित शिथिलता की पृष्ठभूमि में देश के राजनीतिक स्वार्थी खिलाड़ियों ने हिन्दी के पक्ष को दुर्बल बनाने के लिए जान-बूझकर साधारण जनता को भड़काना शुरू किया। अहिन्दी-क्षेत्र में खासकर तमिलनाडु में राजनीति के स्वार्थी खिलाड़ियों ने हिन्दी विरोध को भड़काकर राजनीतिक कोलाहल उत्पन्न किया। इसकी प्रतिक्रिया के क्षेत्र में हिन्दीभाषी क्षेत्र में आग भड़क उठी और हिन्दी के कट्टरपंथी समर्थकों ने भाषायी उन्माद को उभारा जिसके कारण हिन्दी की प्रगति के बदले हिन्दी को हानि पहुंची। हिन्दीभाषी क्षेत्रों में आयोजित आन्दोलनों ने वास्तव में हिन्दी को लाभ पहुंचाने के बदले भारी हानि पहुंचाई। सारे भारत में एकाएक भाषायी उन्माद का बवंडर उठा। हिन्दी-क्षेत्रों में हिन्दी के समर्थन में और अहिन्दी-क्षेत्रों में राजनीतिक कुचक्र में हिन्दी के विरोध में बुलन्द आवाजें उठीं। ऐसे भाषायी आन्दोलन के ज़हरीले राजनीतिक भाषायी उन्माद के बीच भारत सरकार ने एक नये मध्यम मार्ग का अनुसरण करने का निश्चय किया और उसके परिणामस्वरूप नया राजभाषा विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया। 13 अप्रैल, 1963 को लोकसभा में राष्ट्रपति की स्वीकृति से एक राजभाषा विधेयक तत्कालीन गृहमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने प्रस्तुत किया। राजभाषा विधेयक का उद्देश्य यह था कि

जहां राजकीय प्रयोजनों के लिए 15 वर्ष बाद हिन्दी का प्रयोग प्रारंभ होना चाहिए था वहां व्यवस्था को पूर्ण रूप से लागू न करके उस अवधि के बाद भी संघ के सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग बनाए रखा जाए। इस विधेयक पर लोकसभा में काफी गरमागरम चर्चाएं हुई। बहुत-से सदस्यों ने इस विधेयक को संविधान के विरुद्ध घोषित किया। अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के कुछ सदस्यों ने अंग्रेजी का समर्थन किया। इस प्रकार विधेयक के पक्ष और विपक्ष मे विचार प्रकट किए गए। अंत में विधेयक 25 अप्रैल, 1963 को पारित हो गया और राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने पर वह राजभाषा अधिनियम, 1963 के रूप मे लागू हुआ। जिस हिन्दी को 15 वर्ष में जो स्थान ग्रहण करना था उसे वह मिल नहीं सका और अंग्रेजी बराबर अपने स्थान में बैठी रही। शायद शास्त्रीजी की यह युक्ति कि "भारत में उत्पन्न विभाजकता की भावना को रोकने के लिए यह राजभाषा विधेयक आवश्यक था, वास्तव में सच ही था।"[1] क्योंकि इसके कुछ समय बाद हिन्दी-विरोधी आन्दोलन भड़ककर शान्त हो गया और दिन-प्रति-दिन सरकारी क्षेत्रों में मन्दगति से हिन्दी का प्रयोग बढ़ता गया।

द्विभाषिक स्थिति, 1965

इस नये राजभाषा अधिनियम, 1963 के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुरूप 26 जनवरी, 1965 से हिन्दी संघ की राजभाषा तो रहेगी ही, पर उस समय से हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भी संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए बराबर प्रयुक्त होती रहेगी, जिनके लिए वह उस तिथि के तुरन्त पहले प्रयुक्त की जा रही थी। इस प्रकार 26 जनवरी, 1965 से राजभाषा अधिनियम, 1963 के अनुसार द्विभाषिक अवधि की स्थिति प्रारम्भ हुई, जिसमें कि संघ के सरकारी प्रयोजनो के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाएं प्रयुक्त की जा सकती थी। इस अधिनियम के मुख्य उपबन्धों के अनुसार संसद तथा राज्यों की विधानसभाओं की सभी कार्यवाहियों की भाषा क्रमशः हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाएं होंगी और उनका प्राधिकृत अंग्रेजी अनुवाद देना होगा। इसकी धारा 5, उपधारा 2 के अनुसार सभी विधेयक दोनों भाषाओं में एकसाथ प्रस्तुत करने तथा दोनों को प्रामाणिक मानने की व्यवस्था की गई। धारा 4 में यह व्यवस्था रखी गई कि इसके लागू होने के दस वर्ष बाद तीस संसद सदस्यों की एक समिति हिन्दी की प्रगति की जाच करेगी। इसकी नियुक्ति संसद के द्वारा होगी। समिति के प्रतिवेदन पर राज्य सरकारों की राय ली जाएगी। पुनः वह रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत होगी। तदनुसार राष्ट्रपति आदेश जारी करेंगे। 1965 के बाद किसी

1. भारतीय राष्ट्रभाषा : सीमाएं तथा समस्याएं, डा० सत्यव्रत, पृ० 174

भी राज्य के राज्यपाल राष्ट्रपति की अनुमति से अंग्रेजी के साथ हिन्दी या राज्य की अन्य किसी भाषा को राजभाषा का स्थान दे सकते है।

इस तरह इस अधिनियम की धारा 3 के अनुसार संविधान के प्रारम्भ होने से 15 वर्ष की अवधि की समाप्ति के बाद हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का सभी राज्यों में सभी प्रयोजनों के लिए प्रयोग जारी रखने की व्यवस्था की गई।"[1]

राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967

समय-समय पर संसद में और बाहर पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा दिए गए आश्वासनों और श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा राजभाषा विधेयक, 1963 को प्रस्तुत करते समय अहिन्दीभाषियों को दिलाए गए विश्वास को मूर्त रूप प्रदान करने के उद्देश्य से 1967 में संसद ने एक नया राजभाषा संशोधन अधिनियम पारित किया, जिसमें राजभाषा विधेयक, 1965 की धारा 3 के स्थान पर नये उपबन्ध लागू हुए। यह विधेयक लोकसभा मे 17 नवम्बर, 1967 को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया और 16 दिसम्बर 1967 को लोकसभा ने उसे पारित कर दिया। 8 जनवरी, 1968 को इसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई।

विधेयक में मुख्य रूप से इस बात की व्यवस्था की गई थी कि अंग्रेजी सरकार के कामकाज मे सहभाषा के रूप मे तब तक बनी रहेगी जब तक अहिन्दी-भाषी राज्य हिन्दी को एकमात्र राजभाषा बनाने के लिए सहमत न हो जाएं। जिस राज्य ने हिन्दी को सरकारी कामकाज के लिए नहीं अपनाया है, उसके साथ केन्द्रीय सरकार अंग्रेजी में पत्र-व्यवहार करेगी। जब कोई ऐसा राज्य, जिसने हिन्दी को सरकारी कामकाज के लिए अपनाया है, उस राज्य से पत्र-व्यवहार हिन्दी मे होगा। जिस राज्य ने हिन्दी को सरकारी कामकाज के लिए नहीं अपनाया है, उसको अंग्रेजी पत्र के साथ हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा। लेकिन वह राज्य जिसने सरकारी कामकाज के लिए हिन्दी को नही अपनाया है, उसको अंग्रेजी पत्र के साथ हिन्दी अनुवाद भेजने के लिए बाध्य नहीं होगा। इन राज्यों को इस बात की छूट दी गई है कि वे हिन्दी राज्यों के साथ अथवा केन्द्र के साथ हिन्दी में पत्र-व्यवहार कर सकते है। केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों या कंपनियों, निगमों आदि के कार्यालयों के पारस्परिक पत्र-व्यवहार में हिन्दी पत्र के साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद और अंग्रेजी पत्र के साथ उसका हिन्दी अनुवाद भेजा जाएगा। सरकारी संकल्पों, सरकारी आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक रिपोर्टों, प्रेस विज्ञप्तियों आदि में हिन्दी और अंग्रेजी का साथ-साथ प्रयोग किया जाएगा। संसद में प्रस्तुत किए जाने

1. भारतीय राष्ट्रभाषा : सीमाएं तथा समस्याएं, डा० सत्यव्रत, पृ० 175

वाले कागज़-पत्र भी दोनों भाषाओं में रहेंगे और सरकार की ओर से किए गए संविदाओं, करारों आदि में तथा लाइसेंसों, परमिटों, टेंडर फार्मों आदि में भी दोनो भाषाओं का प्रयोग किया जाएगा।

दिसम्बर, 1967 में संसद ने भाषा-नीति-विषयक एक सरकारी संकल्प स्वीकार किया था जिसके अनुसार केन्द्रीय सरकार हिन्दी के प्रचार तथा विकास और संघ के विभिन्न सरकारी प्रयोजनों के लिए उसके क्रमिक प्रयोग में तेजी लाने के लिए एक अधिक गहन और व्यापक कार्यक्रम तैयार करेगी और उसे कार्यान्वित करेगी। केन्द्रीय सरकार इस सम्बन्ध में किए गए उपायों तथा उसमें हुई प्रगति का ब्यौरा देते हुए एक वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट भी संसद के दोनो सदनो के सभापटल पर प्रस्तुत करेगी।

इस तरह एक लम्बी द्विभाषिक स्थिति शुरू हुई है, जिसमें प्रत्येक सरकारी कर्मचारी सरकारी कामकाज में हिन्दी या अंग्रेजी मे किसी भी भाषा का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है। उसे हिन्दी या अंग्रेजी भाषा में तैयार किए हुए अपने नोट या ड्राफ्ट का स्वयं दूसरी भाषा में अनुवाद नहीं देना है। साथ ही, कुछ प्रयोजनों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया है। द्विभाषिक नीति की सफलता के लिए यह बहुत जरूरी है कि केन्द्रीय सरकार के हिन्दी न जानने वाले कर्मचारियों को हिन्दी सिखाई जाए, ताकि वे हिन्दी मे लिखे गए नोटों और मसौदों को पढ़ सकें।

हालांकि संशोधित राजभाषा अधिनियम के अनुसार केन्द्रीय सरकार के सभी कार्यालयों मे कागज हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में जारी होने चाहिए, लेकिन प्रशासनिक दिक्कतों के कारण 1968 मे ऐसा करना सम्भव नही था। इसलिए इस अधिनियम के कार्यान्वयन के सम्बन्ध मे 6 जुलाई, 1968 को जारी किए गए आदेश मे यह कहा गया कि हिन्दी भाषा, राज्यों मे स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालय इन कागज-पत्रों को दोनों ही भाषाओं मे अनिवार्यतः जारी करें और अहिन्दीभाषी राज्यों मे स्थित कार्यालय, इसके लिए तैयारी करें।

राजभाषा अधिनियम मे केन्द्रीय सरकार के उपक्रमों और निगमों का स्पष्ट उल्लेख है और इसकी ओर 6 जुलाई, 1968 के प्रशासनिक आदेश द्वारा मंत्रालयों का ध्यान दिलाया गया था। लेकिन 1971-72 के कार्यक्रम मे हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में स्थित उपक्रमों और निगमों से पहली बार कहा गया कि वे अधिनियम का अनुपालन करने के लिए टाइपराइटरों, हिन्दी अनुवाद के लिए स्टाफ और अहिन्दीभाषी कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त प्रबन्ध करें। जनवरी, 1973 से इन संस्थानों को हिन्दी के प्रयोग के बारे मे तिमाही प्रगति रिपोर्ट अपने प्रशासनिक मंत्रालयों को प्रस्तुत करनी होती है।

शुरू में हिन्दीभाषी क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों में राजभाषा नीति के कार्यान्वयन पर जोर दिया गया था। 6 जुलाई, 1968 के कार्यालय-ज्ञापन द्वारा अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों को राजभाषा नीति के कार्यान्वयन में कुछ समय के लिए छूट-सी दी गई थी, लेकिन उनसे कहा गया था कि वे अनुवाद आदि के लिए जल्द से जल्द प्रबन्ध करें। 1973-74 और 1974-75 के कार्यक्रम में इन कार्यालयों से कहा गया कि वे अनुवाद के लिए स्टाफ की नियुक्ति, फार्मों का हिन्दी में अनुवाद और उनकी छपाई आदि प्रारम्भिक कार्रवाइयां करें और संकल्प, नियम, नोटिस, करार आदि हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में जारी करने के बारे में कानूनी आवश्यकता के कम से कम 20 प्रतिशत का अनुपालन करें।

1975-76 के पहले अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में स्थित सरकारी उपक्रमों से राजभाषा नीति के उपर्युक्त उपबन्धों के अनुपालन के बारे में नहीं कहा गया था। 1975-76 के कार्यक्रम में पहली बार उनसे कहा गया कि ये उपक्रम अपने हिन्दी न जानने वाले कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने का प्रबन्ध करें। प्रत्येक दफ्तर के लिए कम से कम हिन्दी का एक टाइपराइटर खरीदें, एक अनुवादक रखें तथा अपने कर्मचारियों को हिन्दी का सहायक साहित्य भी उपलब्ध कराएं।

राजभाषा नियम, 1976

राजभाषा अधिनियम, 1963 में किए गए प्रावधान के अनुसार नियम बनाए गए। उन नियमों को राजभाषा नियम, 1976 नाम देकर 28 जून, 1976 को जारी किया गया। इन नियमों में किए गए प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं:

1. ये नियम केन्द्रीय सरकार के सभी कार्यालयों पर लागू होते हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त आयोग, समितियां, अभिकरण तथा केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व वाले या नियंत्रणाधीन निगम या कम्पनी के कार्यालय आदि भी केन्द्रीय सरकार के कार्यालय की परिभाषा में आते हैं।

2. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से पत्र आदि हिन्दीभाषी राज्यों को (जिन्हें 'क' क्षेत्र के राज्य कहा गया है) या ऐसे राज्यों में किसी अन्य कार्यालय या व्यक्ति को हिन्दी में भेजे जाएंगे। यदि किन्हीं असाधारण दशाओं में कोई पत्रादि इन्हें अंग्रेजी में भेजे जाते हैं, तो उनका हिन्दी अनुवाद भी साथ में भेजा जाएगा।

3. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से पत्रादि पंजाब, गुजरात और महाराष्ट्र के राज्यों तथा चंडीगढ़ और अण्डमान एवं निकोबार द्वीपसमूह के संघशासित क्षेत्रों के प्रशासनों को (जिन्हें 'ख' में शामिल किया गया है) सामान्यतः हिन्दी में भेजे जाते हैं तो उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ में भेजा जाएगा। लेकिन इन

राज्यों में किसी व्यक्ति को भेजे जाने वाले पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी दोनों में ऐसी किसी भाषा में भेजे जा सकते हैं।

4. अन्य अहिन्दीभाषी राज्यों (जिन्हें 'ग' क्षेत्र कहा गया है) के किसी कार्यालय या व्यक्ति को पत्रादि सामान्यतया अंग्रेजी में भेजे जाएंगे।

5. केन्द्रीय सरकार के 'ख' तथा 'ग' क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी अथवा अंग्रेजी में हो सकते हैं।

6. हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर हिन्दी में ही दिए जाएंगे। जब कभी कोई आवेदन, अपील या अभिवेदन हिन्दी में किया जाए या उसपर हिन्दी में हस्ताक्षर किए जाएं तो उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाए।

7. केन्द्रीय सरकार का कोई कर्मचारी, जिसे हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त है, तकनीकी और विविध दस्तावेजों को छोड़कर किसी हिन्दी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की मांग नहीं कर सकता।

8. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से सम्बन्धित सभी मैनुअल, संहिताएं और अन्य प्रक्रिया सम्बन्धी साहित्य हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में द्विभाषिक रूप में तैयार किए जाएंगे। सभी फार्मों और रजिस्टरों के शीर्ष, नामपट्ट, सूचनापट्ट तथा स्टेशनरी आदि की अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में होंगी।

9. प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह यह सुनिश्चित करे कि राजभाषा अधिनियम और इन नियमों का समुचित रूप से अनुपालन किया जाता है।

सभी कार्यालयों और विभागों में निम्नलिखित कार्यालयों के लिए भी अनुरोध किया गया है :

1. प्रदर्शनियों में जनता की सुविधा के लिए प्रचार-माध्यम के रूप में हिन्दी का पर्याप्त उपयोग किया जाए।

2. जब राज्य सरकारों से हिन्दी में पत्र प्राप्त हों तो वे उनसे ऐसे पत्रों का अंग्रेजी अनुवाद न मांगें। यदि आवश्यकता महसूस हो तो ऐसे पत्रों के अंग्रेजी अनुवाद की व्यवस्था मंत्रालय अथवा विभाग स्वयं करें।

3. ऐसे अधिकारी और कर्मचारी जो जनता के सम्पर्क में आते हैं और जिनको बिल्ला लगाना पड़ता है, यदि वे हिन्दीभाषी क्षेत्रों, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब और चण्डीगढ़ में काम कर रहे हों तो बिल्ले हिन्दी में भी लगाएं।

4. केन्द्रीय सरकार के वे सभी मंत्रालयों / विभागों और हिन्दीभाषी क्षेत्रों में स्थित उनके संबद्ध तथा अधीनस्थ कार्यालय, कम्पनियां और निगम, जिनका जनता से सीधा सम्बन्ध होता है, अपने यहां किसी प्रमुख स्थान पर इस आशय का सूचनापट्ट लगाएं कि वे हिन्दी में भरे गए फार्म आदि सहर्ष स्वीकार करते हैं।

5. राजस्थान में स्थित कार्यालयों को चाहिए कि वे राजस्थान सरकार के निर्णयानुसार अपने सभी वेतन-बिल आदि हिन्दी में ही तैयार करें। किन्हीं खास मामलों में बिल अंग्रेजी में तैयार किए जा सकते हैं, पर इसके लिए कार्यालय के अध्यक्ष की अनुमति आवश्यक है और इन बिलों को स्वीकार करने के लिए सम्बन्धित ज़िलाधीश से लिखित अनुरोध करना होगा।

राजभाषा अधिनियम में संसद के किसी सदन में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी विधेयकों अथवा उनके संशोधनों के अंग्रेजी के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनके प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद देने का उपबन्ध है। यह 1970 के बजट सत्र से अनौपचारिक रूप से लागू किया गया था। अब इसको 1 अक्तूबर, 1976 से औपचारिक रूप से लागू कर दिया गया है।

पंजाब, गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों तथा चंडीगढ़ और अण्डमान एवं निकोबार संघशासित क्षेत्रों में स्थित अधीनस्थ कार्यालयों और निगमों, कम्पनी तथा उद्यमों से हिन्दी के उपयोग सम्बन्धी तिमाही प्रगति रिपोर्ट मंगाने का निर्णय किया गया है।

दिल्ली से बाहर आयोजित की जाने वाली राजभाषा कार्यान्वयन समितियों की बैठकों में वहां के हिन्दी शिक्षण योजना के वरिष्ठ अधिकारियों को भी आमंत्रित करने के अनुदेश जारी किए गए हैं, क्योंकि वे राजभाषा नीति के कार्यान्वयन से सम्बन्धित हैं और इन बैठकों में लिए गए निर्णय उनके लिए भी उपयोगी होते हैं। साथ ही, ये अधिकारी राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के बारे में इन बैठकों में उपयोगी सलाह दे सकते हैं।

केन्द्रीय हिन्दी समिति के अनुमोदन से ऐसे आदेश जारी किए गए हैं कि केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व वाले या नियंत्रणाधीन निगमों, कम्पनियों, उद्यमों आदि द्वारा जो माल तैयार किया जाता है उस पर विवरण अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी दिया जाए। केन्द्रीय हिन्दी समिति के अनुमोदन से यह निर्णय किया गया है कि अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में स्टेशनों आदि के नामपट्टों और जनता की सूचना के लिए लगाए जाने वाले सूचना बोर्डों में सबसे ऊपर क्षेत्रीय भाषा की लिपि, उसके बाद देवनागरी लिपि और सबसे नीचे रोमन लिपि का प्रयोग किया जाए।

केन्द्रीय पुलिस दलों और रक्षा-सेवाओं के कर्मचारियों की नामपट्टियों में देवनागरी और रोमन लिपियों का प्रयोग करना होगा, लेकिन टोपियों और कंधों पर जो बिल्ले लगाए जाते हैं, उनमें केवल देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जा सकता है।

स्पष्ट है कि केन्द्रीय सरकार की बराबर हो यह नीति रही है कि हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए समुचित कार्यवाही की जाए;

किन्तु ऐसा करते समय इस बात का बराबर ध्यान रखा जाए कि संघ सरकार की द्विभाषिक नीति ध्यान में रहे और जो भी कदम उठाए जाएं, उनसे किसीका अहित न हो और साथ ही अंग्रेजी के प्रयोग के बारे में जो कानूनी व्यवस्थाएं हैं, उनका भी पूरा-पूरा अनुपालन हो ताकि अहिन्दीभाषी राज्यों को और हिन्दी न जानने वाले कर्मचारियों को किसी प्रकार की असुविधा न होने पाए।

7

राजभाषा हिन्दी : प्रगति के पथ पर
(1960 से 1980)

स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी की संवैधानिक स्थिति के अनुसार हिन्दी के विकास एवं प्रसार के लिए संघ सरकार भी उत्तरदायी है। हिन्दी की अभिवृद्धि में जो कुछ कार्य संघ सरकार के द्वारा संपन्न हुआ उसका परिचय देना भी आवश्यक है। हिन्दी की अभिवृद्धि, विकास, प्रचार-प्रसार और प्रगामी प्रयोग के सम्बन्ध में जहां तक केन्द्र सरकार के दायित्व का प्रश्न है, वह दायित्व विशेष रूप से भारत सरकार के शिक्षा, विधि, गृह और सूचना एवं प्रसारण मंत्रालयों को सौंपा गया है। इन मंत्रालयों के अलावा भारत सरकार के दूसरे मंत्रालयों में भी हिन्दी के प्रगामी प्रयोग के लिए आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं। विविध मंत्रालयों की अलग-अलग हिन्दी सलाहकार समितियां हैं जिनके अध्यक्ष उस मंत्रालय के मंत्री हैं। इन सलाहकार समितियों में संसद के सदस्य और गैर-सरकारी व्यक्ति भी सदस्य हैं, भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों द्वारा हिन्दी के प्रचार और विकास के सम्बन्ध में चालू कार्यक्रमों में समन्वय करने के उद्देश्य से 1967 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केन्द्रीय हिन्दी समिति का गठन किया गया। विभिन्न मंत्रालयों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार और प्रगामी प्रयोग से सम्बन्धित जो योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं, उनका संक्षिप्त परिचय यहां अपेक्षित है।

शिक्षा मंत्रालय

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय पर हिन्दी, संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के विकास और प्रसार करने का सर्वाधिक दायित्व है। इस दायित्व का पालन करने के लिए केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने समय-समय पर बहुत-से कार्यक्रम प्रस्तुत किए हैं। इन कार्यक्रमों में उल्लेखनीय कुछ कार्यक्रम इस प्रकार हैं—स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं को आर्थिक सहायता, हिंदी अध्यापकों के लिए अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थाओं का खर्च, विश्वविद्यालयों के स्तर की मानक पुस्तकों का हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद और प्रकाशन, सरकारी कार्यालयों में प्रयुक्त होने वाले साहित्य का अनुवाद, विश्वकोश, शब्दकोश, प्राइमर और रीडर आदि का निर्माण और प्रकाशन तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का हिन्दी में

विकास आदि। अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने के लिए भी शिक्षा मंत्रालय की अनेक योजनाएं हैं। इनमें से कुछ कार्यक्रमों का कार्यान्वयन शिक्षा मंत्रालय स्वयं करता है और कुछ उसके अधीनस्थ कार्यालयों द्वारा पूरे किए जाते हैं।

शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं को अहिन्दीभाषी राज्यं में हिन्दी शिक्षण तथा हिन्दी टंकन और आशुलिपि की कक्षाएं चलाने, हिन्दी-प्रचारकों के प्रशिक्षण और नियुक्ति, हिन्दी पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना, द्विभाषिक को तैयार करने और अहिन्दीभाषी राज्यों में हिन्दी-माध्यम वाले स्कूलों के खर्च की कमी को पूरा करने के लिए आर्थिक सहायता भी दी जाती है।

शिक्षा मंत्रालय अहिन्दीभाषी राज्यों की सरकारों को पर्याप्त संख्या में उचित योग्यता वाले हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय स्थापित करने के लिए शत-प्रतिशत आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

शिक्षा मंत्रालय अहिन्दीभाषी राज्यों को अपने स्कूलों में हिन्दी अध्यापकों की नियुक्ति के लिए भी आर्थिक सहायता देता है। अहिन्दीभाषी क्षेत्रों से हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में तथा हिन्दीभाषी क्षेत्रों से अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में विभिन्न लेखकों तथा विद्वानों की व्याख्यानमालाएं आदि भी यह मंत्रालय आयोजित करता है।

विदेशों मे हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए मंत्रालय ने अनेक योजनाओं को कार्यान्वित किया है। विदेशों की शिक्षण-संस्थाओं में हिन्दी के अध्ययन को सुगम बनाने के लिए पुस्तकें तथा अन्य सहायक सामग्री भेजी जाती है तथा समय-समय पर विदेशी विद्यालयों मे भारतीय हिन्दी विद्वान भी भेजे जाते हैं। विदेशी छात्रो को हिन्दी की शिक्षा देने के लिए भारत में सुविधाएं तथा व्यवस्था करना भी इस मंत्रालय का कार्य है।

अहिन्दीभाषी लोगों को हिन्दी पढ़ाने तथा शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं के बारे मे विशिष्ट जानकारी देने एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन के लिए इस मंत्रालय ने कुछ वर्ष पूर्व केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल नामक एक स्वायत्त निकाय स्थापित किया था, जो आगरा मे हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्था का संचालन कर रहा है। यह संस्था केवल अहिन्दीभाषी राज्यो के हिन्दी अध्यापको के लिए कई नियमित हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाती है। यह संस्था अहिन्दीभाषी राज्यों के लोगो के हिन्दी अध्यापन सम्बन्धी रीति-विधान-विषयक अनुसंधान करने और अहिन्दीभाषी राज्यों के हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण कालेजो के अध्यापको और उन प्रदेशों के हिन्दी अध्यापकों के लिए

पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का आयोजन करने का कार्य भी करती है।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

राजभाषा हिन्दी के महत्त्व को देखते हुए सन् 1951 में शिक्षा मंत्रालय में एक 'हिन्दी एकक' की स्थापना हुई। बाद में यही एकक 'प्रभाग' में परिवर्तित किया गया। राजभाषा आयोग तथा ससदीय राजभाषा समिति की सिफारिशों के आधार पर राजभाषा हिन्दी के विकास के लिए अनेकानेक योजनाएं बनीं। उसीके परिणामस्वरूप, भारत सरकार के निर्णय के अनुसार हिन्दी के प्रचार-प्रसार और विकास के लिए मार्च, 1960 को शिक्षा मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालय के रूप में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना की गई।

27 अप्रैल, 1960 के आदेशानुसार निदेशालय को केन्द्रीय सरकार के सभी असांविधिक मैनुअलों, फार्मों, नियमों एवं विनियमों आदि के हिन्दी अनुवाद का काम सौंपा गया। निदेशालय ने मैनुअलों, नियमों और फार्मों का अनुवाद-कार्य जारी रखा। निदेशालय द्वारा कई शब्दकोशों, द्विभाषिक शब्दकोशों और हिन्दी विश्वकोशों आदि का संकलन हो चुका है। हिन्दी निदेशालय ने अहिन्दी-भाषियों और विदेशियों के लिए कुछ हिन्दी-पाठ्यमालाएं भी तैयार की हैं।

निदेशालय अहिन्दीभाषी राज्यों के हिन्दी लेखकों को उनकी साहित्यिक कृतियों के लिए पुरस्कार भी प्रदान करके प्रोत्साहन देता है। हिन्दी क्षेत्र के विद्वानों को अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में भेजकर उनके भाषणों की भी व्यवस्था करता है। इसी प्रकार अहिन्दी प्रदेश के हिन्दी विद्वानों को हिन्दी प्रदेश के विश्वविद्यालयों में भेजकर उनके भाषणों की भी व्यवस्था करता है। एक दूसरी योजना के अन्तर्गत अहिन्दी क्षेत्र के चुने हुए हिन्दी विद्यार्थियों को हिन्दी प्रदेश में यात्रा करने के लिए आर्थिक सुविधाएं भी प्रदान करता है। अहिन्दी प्रदेश के हिन्दी के नवलेखकों को हिन्दी के साहित्य-सृजन में अभ्यास दिलाने के उद्देश्य से अहिन्दी प्रदेशों के प्रमुख क्षेत्रों में नवलेखक कार्यशिविरों का संचालन भी निदेशालय करता है। निदेशालय ने विभिन्न प्रयोजनों के लिए देवनागरी लिपि को मानक रूप देने की दृष्टि से कुछ प्रयास किए हैं। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप हिन्दी टाइपराइटर और हिन्दी टेलिप्रिंटर के कुंजीपटल को अन्तिम रूप दे दिया गया है। भारत सरकार के द्वारा स्थापित विशेषज्ञ समिति ने प्रादेशिक भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों की अभिव्यक्ति के लिए संकेत चिह्नों को अंतिम रूप दे दिया है। निदेशालय के द्वारा स्मारक देवनागरी और परिवर्तित देवनागरी नामक दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार और विकास के लिए देश-विदेश में किए जाने वाले

सरकारी और गैर-सरकारी कार्यों, प्रयत्नों, कार्यक्रमों, गतिविधियों आदि का नियमित समन्वित एवं आवधिक मूल्यांकन करने और इससे सम्बन्धित तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास की सूचना प्रस्तुत करने की दृष्टि से हिन्दी निदेशालय ने 'हिन्दी समाचार जगत्' नामक एक हिन्दी मासिक समाचार-पत्रक दिसम्बर, 1966 से आरम्भ किया। यह पत्रक सभी केन्द्रीय मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों, हिन्दी संस्थाओं, सार्वजनिक पुस्तकालयों, संसद सदस्यों तथा लेखकों आदि को निःशुल्क भेजा जाता था। इसके अतिरिक्त अगस्त, 1961 से भाषा और साहित्य के विभिन्न पक्षों और समस्याओं पर गंभीर लेख प्रस्तुत करने वाली त्रैमासिक पत्रिका 'भाषा' का प्रकाशन भी निदेशालय द्वारा नियमित रूप से किया जा रहा है। निजी प्रकाशकों तथा प्रकाशन संस्थाओं के सहयोग से अन्य भाषाओं की पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद तैयार करवाकर उन्हें प्रकाशित करने की भी एक योजना चल रही है।

निदेशालय ने अहिन्दीभाषी भारतीयों और विदेशियों को पत्राचार पाठ्यक्रम द्वारा भारतीय भाषाओं अथवा अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी शिक्षण की सुविधाएं देने के उद्देश्य से एक योजना शुरू की है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

राष्ट्रपति के तारीख 27 अप्रैल, 1960 के आदेश के अनुसार वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना अक्तूबर, 1961 में हुई। पहले यह आयोग शिक्षा मंत्रालय के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के अधीन कार्य करता था। बाद में 1 अक्तूबर, 1961 से यह स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगा। निम्नलिखित उद्देश्यों से इस संस्था की स्थापना की गई है :

(क) राष्ट्रपति के उपर्युक्त आदेश के पैरा 3 में दिए हुए निदेशों का अनुसरण करते हुए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के क्षेत्र में अब तक किए गए कार्य का पुनरीक्षण करना,

(ख) हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के निर्माण तथा समन्वय से संबंधित सिद्धांत निर्धारित करना,

(ग) वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के क्षेत्र में राज्यों में विभिन्न अभिकरणों द्वारा किए गए कार्य का समन्वय करना तथा

(घ) नवनिर्मित शब्दावली का प्रयोग करते हुए विज्ञान की मानक पाठ्य-पुस्तकें तैयार करना।

कृषि, चिकित्सा, मानविकी, इंजीनियरी तथा समाज-विज्ञान के विषयों पर डिग्री स्तर की शब्दावली का निर्माण करने के सम्बन्ध में काफी प्रगति हुई है। पिछले वर्षों में अनेक शब्दों का निर्माण किया गया और विभिन्न वैज्ञानिक तथा

मानवीय विषयों के तीन लाख शब्दों को अंतिम रूप दिया गया है। रेल, सूचना तथा प्रसारण, परिवहन, नौवहन, पर्यटन तथा रक्षा और डाक व तार आदि से संबंधित विभागीय शब्दावली भी तैयार की गई है।

भौतिकी, रसायन, गणित, वनस्पतिविज्ञान तथा कृषि आदि विषयों पर प्रारंभिक पारिभाषिक शब्दावलियां तैयार की जा चुकी हैं। प्राणिविज्ञान, सांख्यिकी, भौतिकी तथा वनस्पतिविज्ञान संबंधी शब्दकोशों के शीघ्र प्रकाशित होने की संभावना है। आयोग द्वारा रसायन, वनस्पतिविज्ञान चिकित्सा, शिक्षा, मनोविज्ञान तथा प्राणिविज्ञान से संबंधित मैनुअल आदि प्रकाशित किए जा चुके हैं। आयोग हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर के मानक ग्रन्थ निकालने का काम भी कर रहा है।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास और साहित्य अकादमी भी हिन्दी भाषा की समृद्धि के लिए हिन्दी में पुस्तकों का प्रकाशन कर रहे हैं। साहित्य अकादमी ने हिन्दी में बहुत-सी पुस्तकें निकाली हैं। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने भारतभूमि और उसके लोग, राष्ट्रीय जीवन-चरित्र तथा लोकप्रिय विज्ञान-पुस्तकें प्रकाशनमाला के अन्तर्गत हिन्दी में बड़ी संख्या में पुस्तकें निकाली हैं।

गृह मंत्रालय

केन्द्रीय सरकार के गृह मंत्रालय ने राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग के लिए अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए हैं। इसी मंत्रालय के द्वारा ही राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग और विकास से सम्बन्धित राजभाषा आयोग और संसदीय राजभाषा समिति की नियुक्ति और उनके प्रतिवेदनों के प्रकाशन और कार्यान्वयन के कार्य संपन्न हुए हैं। केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों को राजभाषा संबंधी विभिन्न आदेश और अनुदेश इसी मंत्रालय द्वारा जारी किए जाते हैं। राजभाषा सम्बन्धी संवैधानिक उपबन्धों के पूर्ण रूप से कार्यान्वयन की जिम्मेदारी भी इसी मंत्रालय पर है। गृह मंत्रालय ने जो कार्यक्रम अपनाए हैं उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने के लिए दफ्तर के समय में हिन्दी कक्षाएं चलाई जा रही हैं। इसके लिए एक-एक वर्ष की अवधि के प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ नाम के तीन पाठ्यक्रम निर्धारित किए गए हैं जिनका स्तर क्रमशः पांचवीं, आठवीं और दसवीं कक्षा के बराबर है। इस समय पूरे देश में 175 केंद्रों में हिन्दी का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

उपर्युक्त पाठ्यक्रमों को भाषा-वर्ग के अनुसार दो-तीन ... पढ़ाने लिए 1970 से एक गहन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी चला... अलावा, प्रथम श्रेणी के अधिकारियों तथा परिचालन ...

शिक्षण योजना के केंद्र नहीं हैं वहां के अधिकारियों और कर्मचारियों को निजी तौर पर परीक्षा की तैयारी के लिए 1968 से पत्राचार पाठ्यक्रम की भी व्यवस्था की गई है।

निर्धारित परीक्षाएं पास करने पर अधिकारियों और कर्मचारियों को एक अग्रिम वेतन-वृद्धि दी जाती है तथा अच्छे अंक प्राप्त करने पर 100 रुपये तथा 300 रुपये के नकद पुरस्कार भी दिए जाते हैं। जो कर्मचारी बिना किसी कक्षा में सम्मिलित हुए तैयारी करके परीक्षा पास करता है, उसे एकमुश्त रकम भी पुरस्कार के रूप में दी जाती है।

मार्च, 1965 से मार्च, 1975 की अवधि में उपर्युक्त परीक्षाओं में कुल 1,72,085 अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने हिन्दी की विभिन्न परीक्षाएं पास की हैं। इन्हें मिलाकर हिन्दी शिक्षण योजना के आरंभ से लेकर अब तक कुल 3,20,385 सरकारी कर्मचारी विभिन्न परीक्षाएं पास कर चुके हैं।

इनके अलावा केंद्रीय सरकार के प्रथम श्रेणी के अधिकारियों तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को हिन्दी का प्रशिक्षण देने के लिए लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी में व्यवस्था की गई है। अधिकारीगण अपने विभागीय प्रशिक्षण के साथ ही साथ हिन्दी का प्रशिक्षण भी यहां प्राप्त करते हैं। भारतीय लेखा सेवा, भारतीय राजस्व सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय वन सेवा, इंजीनियरी सेवा इत्यादि के अधिकारियों के लिए भी विभागीय तौर पर हिन्दी पढ़ाने का प्रबन्ध किया गया है।

हिन्दी कार्यशाला

हिन्दी में काम करने के इच्छुक कर्मचारियों तथा अधिकारियों की झिझक दूर करने के लिए और कार्यालयीन हिन्दी का अभ्यास कराने के उद्देश्य से अक्तूबर, 1973 में सभी मंत्रालयों और विभागों को हिन्दी कार्यशालाएं चलाने के लिए अनुदेश दिए गए थे। इन कार्यशालाओं में 1974-75 में 576 अधिकारियों और कर्मचारियों ने कार्यालयीन हिन्दी का प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

हिन्दी टाइपिंग एवं आशुलिपि का प्रशिक्षण

सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए यह भी आवश्यक है कि सभी टाइपिस्ट एवं आशुलिपिक क्रमशः हिन्दी टाइपिंग एवं आशुलिपि में प्रशिक्षित हों। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ प्रमुख शहरों में 1960 से हिन्दी टाइपिंग एवं आशुलिपि प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है। इस समय कलकत्ता, बंबई, मद्रास, दिल्ली, जबलपुर और कानपुर में हिन्दी टाइपिंग और हिन्दी आशुलिपि सिखाने के केन्द्र हैं। अब तक इन केन्द्रों पर तथा निजी प्रयत्नों से

परीक्षायें पास करने वालों की कुल संख्या क्रमशः 16,280 और 3,597 है।

हिन्दी शिक्षण योजना की पुनरीक्षण समिति

हिन्दी शिक्षण योजना के संबंध में सभी पहलुओं पर विचार करने तथा उसको और प्रभावी बनाने के लिए सन् 1973 मे हिन्दी शिक्षण योजना पुनरीक्षण समिति बनाई गई थी। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में योजना के लिए व्यावहारिक तथा प्रयोजनमूलक पाठ्यक्रम सुझाए हैं और योजना के प्रशासनिक ढांचे में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने की सिफारिशें की हैं। इनकी सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए कार्यवाही की जा रही है।

प्रशासनिक तथा सांविधिक साहित्य के अनुवाद की व्यवस्था

सांविधिक साहित्य अर्थात् केन्द्रीय नियमों, विनियमों और अधिनियमों आदि का हिन्दी अनुवाद विधि मंत्रालय के अधीन राजभाषा (विधायी) आयोग करता है। प्रशासनिक प्रकार के सभी मैनुअलों, फार्मों आदि का हिन्दी अनुवाद पहले शिक्षा मंत्रालय के अधीन केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय करता था, किन्तु मार्च, 1971 से यह काम गृह मंत्रालय के अधीन केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो कर रहा है।

राजभाषा आयोग द्वारा किया गया अनुवाद-कार्य

राजभाषा (विधायी) आयोग ने जनवरी, 1965 से सितंबर, 1975 तक लगभग 700 केन्द्रीय अधिनियमों का हिन्दी पाठ तैयार कर लिया है। इनमें से लगभग 500 अधिनियम राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 5 (1) के अधीन भारत के राजपत्र में राष्ट्रपति के प्राधिकार से प्रकाशित कर दिए गए हैं।

जिन केन्द्रीय अधिनियमों के हिन्दी पाठ की अधिक मांग होती है, उनके द्विभाषिक संस्करण भी प्रकाशित किए जाते हैं। इस दशक के दौरान लगभग 200 अधिनियमों के द्विभाषिक संस्करण छप चुके हैं। 1975 से अधिनियमों के हिन्दी में इतिहास भी छापे जा रहे हैं। राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 5 की उपधारा (2) के अनुसार संसद में पेश किए जाने वाले सभी विधेयकों के अंग्रेज़ी भाषा के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनका अनुवाद भी पेश करना चाहिए। सन् 1970 से यह धारा अनौपचारिक रूप से लागू कर दी गई है और अब सभी विधेयकों के अंग्रेज़ी पाठ के साथ-साथ हिन्दी पाठ भी संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं।

राजभाषा अधिनियम की धारा 5 (1) (ख) के अधीन नियमों, विनियमों

आदेशों आदि का प्राधिकृत हिन्दी पाठ प्रकाशित किया जाता है। 1965 से सितंबर, 1975 तक नियमों, विनियमों तथा आदेशों के 4,050 पृष्ठों के प्राधिकृत हिन्दी पाठ राजपत्र में प्रकाशित किए जा चुके हैं।

केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो

भारत सरकार हिन्दी को सरकारी कामकाज के लिए समर्थ बनाने के उद्देश्य से अनेक कार्यक्रम चलाती रही है। सरकारी कार्यालयों में काम आने वाले मैनुअलों, नियमों, विनियमों, फार्मों आदि का हिन्दी अनुवाद तैयार करना एक ऐसा ही कार्यक्रम है जिसपर पिछले 15 वर्षों से अमल किया जा रहा है। इस सिलसिले में 27 अप्रैल, 1960 को राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए आदेश के अनुसार गैर-विधिक नियमों, विनियमों और अन्य क्रियाविधि साहित्य के अनुवाद की जिम्मेदारी शिक्षा मंत्रालय को सौंपी गई थी। 1960 से फरवरी, 1971 तक यह काम शिक्षा-मंत्रालय की देख-रेख में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय में ही होता रहा। 1 मार्च, 1971 से इस काम के लिए गृह मंत्रालय में केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो की स्थापना की गई और उस समय से यह काम गृह मंत्रालय की देख-रेख में ही हो रहा है।

केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो ने स्थापना के बाद से ही ऐसे मैनुअलों के अनुवाद को प्राथमिकता दी है जो दफ्तरों के काम-काज में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार फार्मों के अनुवाद को भी अधिक महत्त्व दिया गया है। समय-समय पर केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो ने महत्त्वपूर्ण जांच आयोगों तथा संसद के समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्टों के अनुवाद में भी सहायता दी।

ब्यूरो सरकारी कार्यालयों के मैनुअलों आदि का अनुवाद करने के अलावा सरकारी उपक्रमों, प्रतिष्ठानों, कंपनियों और राष्ट्रीयकृत बैंकों की असांविधिक सामग्री भी अनुवाद करता है। इसके अतिरिक्त रक्षा मंत्रालय, रेल मंत्रालय और डाक-तार के अनुवादित मैनुअलों आदि के पुनरीक्षण का काम भी ब्यूरो में किया जाता है।

ब्यूरो को सौंपे गए कामों में दूसरा महत्त्वपूर्ण काम है अनुवादकों का प्रशिक्षण। प्रशिक्षण की योजना 1973 के पूर्वार्द्ध में बनी और 1 अगस्त, 1973 से प्रशिक्षण का पहला सत्र चालू किया गया। अनुवादकों के प्रशिक्षण के लिए अभी तीन पाठ्यक्रमों की योजना बनाई गई है, जिनमें से अब तक केवल एक ही पाठ्यक्रम चालू किया गया है। तीन महीने के वर्तमान पाठ्यक्रम में प्रशिक्षणार्थियों को अनुवाद के सामान्य सिद्धांतों का परिचय कराने के साथ अनुवाद के कार्य में उन सिद्धांतों का प्रयोग सिखाने के लिए प्रतिदिन दो घंटे अनुवाद का

अभ्यास कराया जाता है और प्रशिक्षणार्थियों की कठिनाइयों का निराकरण किया जाता है। प्रशिक्षणार्थी अपने कार्यालयों में जाकर राजभाषा कार्यान्वयन का काम भी करेंगे, अतः इन्हें राजभाषा-विषयक कानूनी स्थिति से पूरी तरह परिचित कराया जाता है।

ब्यूरो ही देश मे अनुवाद की सबसे बडी संस्था है, इसलिए अनुवाद से संबंधित सूचनाएं, शोध-कार्य, दिशा-निर्देश आदि की अपेक्षा ब्यूरो से ही की जाती है।

राजभाषा विभाग की स्थापना

संविधान के राजभाषा संबंधी उपबन्धों तथा यथासंशोधित राजभाषा अधिनियम, 1963 के उपबन्धों के कार्यान्वयन, हिन्दी शिक्षण योजना और असांविधिक साहित्य के अनुवाद का काम कुछ समय पहले तक गृह मंत्रालय का राजभाषा-प्रभाग देखता रहा है। इस काम के महत्त्व को देखते हुए 26 जून, 1975 को भारत सरकार ने दूसरे मंत्रालय या विभाग की तरह एक सचिव के अधीन स्वतंत्र राजभाषा विभाग की स्थापना की है। इस विभाग को निम्नलिखित कार्य सौंपे गए हैं :

1. संविधान के राजभाषा से सम्बन्धित उपबन्धों तथा राजभाषा अधिनियम, 1963 के उपबन्धों का कार्यान्वयन।

2. राज्य के उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में अंग्रेजी भाषा से भिन्न किसी भाषा का सीमित प्रयोग प्राधिकृत करने के लिए राष्ट्रपति का पूर्व अनुमोदन।

3. संघ के विभिन्न शासकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित सभी मामले।

4. संविधान, राष्ट्रपति के 27 अप्रैल, 1960 के आदेश, राजभाषा अधिनियम, 1963 और भाषा के बारे में सरकार के 18 जनवरी, 1968 के संकल्प के उपबन्धों के संदर्भ में विभिन्न मंत्रालयों/विभागों द्वारा किए जा रहे राजभाषा से संबंधित कार्यों का समन्वय।

5. केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए हिन्दी शिक्षण योजना।

6. केन्द्रीय हिन्दी समिति से संबंधित मामले।

7. विभिन्न मंत्रालयों/विभागों द्वारा स्थापित हिन्दी सलाहकार समितियों से संबंधित कार्य का समन्वय।

8. केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो से संबंधित मामले।

विधि मंत्रालय

विधि मंत्रालय के अधीन राजभाषा (विधायी) आयोग प्रथम राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए संसदीय राजभाषा समिति के सुझाव पर संविधियों के अनुवाद और विधि शब्दावली तथा कोशों से संबंधित संपूर्ण कार्यक्रम की समुचित योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने के लिए स्थापित किया गया था। यह 27 अप्रैल, 1960 को जारी किए गए राष्ट्रपति के एक आदेश के अनुसार निर्मित एक स्थायी आयोग है। आयोग ने भाषा से संबंधित सभी पहलुओं पर बड़ी गहराई में विचार किया और देश की आवश्यकताओं को सम्मुख रखते हुए राष्ट्रपति को भाषा के बारे में उचित नीति अपनाने के सम्बन्ध में सलाह दी।

आयोग ने प्रमुख कानूनों का हिन्दी पाठ तैयार किया है। उदाहरणार्थ, भारतीय दंड संहिता, दंड प्रक्रिया संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882, सिविल प्रक्रिया संहिता और भारतीय संविदा अधिनियम। ये भारतीय विधिशास्त्र के मूलभूत आधार एवं विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली विधि-शिक्षा के मुख्य अंग हैं।

राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3, 26 जनवरी, 1965 से लागू कर दी गई। इस धारा की उपधारा (3) के अधीन हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं का प्रयोग संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस-विज्ञप्तियों के लिए करना आवश्यक है। इसी प्रकार संसद के किसी भी सदन के समक्ष जो कागज-पत्र रखे जाते हैं वे भी हिन्दी-अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में होने चाहिए। केन्द्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या कम्पनी द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा इसी प्रकार के अन्य दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं का प्रयोग करना अनिवार्य है। इस उपधारा के अन्तर्गत हिन्दी पाठ तैयार करने का काम विधि मंत्रालय के राजभाषा (विधायी) आयोग को सौंपा गया है। भारत सरकार की कोई भी अधिसूचना अब केवल एक भाषा में नहीं छपती।

राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 5 की उपधारा (2) में यह उपबन्ध है कि नियत दिन से ही उन सब विधेयकों के जो संसद के किसी भी सदन में पुनः स्थापित किए जाते हों और उन सब संशोधनों का जो उनके सम्बन्ध में प्रस्तावित किए जाते हों, अंग्रेजी भाषा के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनका हिन्दी में अनुवाद भी होगा। भारत सरकार ने यह निर्णय ले लिया है कि इस धारा को

शीघ्र ही लागू किया जाएगा। सन् 1970 से ही विधि मंत्रालय यह मानकर कार्य कर रहा है कि यह धारा लागू हो गई है और सभी विधेयकों के अंग्रेजी पाठ के साथ-साथ हिन्दी पाठ भी दोनों सदनों मे प्रस्तुत किए जाते है। किसी भी सदन में ऐसा कोई विधेयक पेश नहीं होता जिसका प्राधिकृत अनुवाद उसके साथ न हो। हिन्दी के उपयुक्त प्रयोग मे विधि मंत्रालय की यह उल्लेखनीय सफलता है।

बहुत-से ऐसे दस्तावेज होते हैं जो कानूनी तो होते है किन्तु किसी अधिनियम के अन्तर्गत नहीं होते, जैसे निविदा की सूचनाएं, भारत सरकार द्वारा किए गए करार, बन्धपत्र, संविदा आदि। इन सभी दस्तावेजों का अनुवाद भी यह आयोग करता है। आयोग ने 30 अप्रैल, 1975 तक 655 अधिनियमो का हिन्दी में अनुवाद किया है। इनमें से 402 अधिनियम राष्ट्रपति द्वारा प्राधिकृत किए जा चुके हैं और भारत सरकार के राजपत्र मे प्रकाशित हो चुके है।

विधि मंत्रालय इस बात के प्रति सजग है कि वाद विधि (केस ला) हिन्दी में होना आवश्यक है। इस निमित्त अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिए विधि मंत्रालय ने उच्चतम न्यायालय के सभी प्रकाशन योग्य निर्णयों के प्रकाशन के लिए 'उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका' के नाम से एक निर्णय पत्रिका का अप्रैल, 1968 से प्रकाशन प्रारम्भ किया है। 1969 से 'उच्च न्यायालय निर्णय पत्रिका' का भी प्रकाशन शुरू किया गया। इसमें भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयो में से चुने हुए निर्णय प्रकाशित किए जाते हैं।

हिन्दी मे लिखे गए विधि के मौलिक ग्रंथों पर प्रत्येक विषय में दस हजार रुपये तक का पुरस्कार प्रत्येक वर्ष दिया जाता है। विधि मंत्रालय हिन्दी में मौलिक ग्रन्थ भी लिखवा रहा है और अंग्रेजी के गौरव ग्रन्थों का अनुवाद भी करवा रहा है। विभिन्न हिन्दीभाषी राज्यों मे विधि के क्षेत्र मे समन्वय स्थापित करने के लिए समन्वय समिति भी भारत सरकार ने गठित की है जिसके कारण विधि के क्षेत्र में एकरूपता लाने और मानक शब्दावली तैयार करने में उल्लेखनीय सफलता मिली है। विधि मंत्रालय के राजभाषा (विधायी) आयोग में ही केन्द्रीय अधिनियमों का राज्यों की राजभाषाओं में अनुवाद-कार्य हो रहा है।

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय

हिन्दी की अभिवृद्धि और प्रसार मे सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय का भी अपना महत्वपूर्ण योगदान है। इस मंत्रालय की प्रथम हिन्दी सलाहकार समिति का गठन 1950-51 मे हुआ था। इस मंत्रालय के प्रमुख प्रभाग पत्र-सूचना कार्यालय, फिल्म प्रभाग, संगीत-नाटक प्रभाग, प्रकाशन प्रभाग, आकाशवाणी और दूरदर्शन हिन्दी सम्बन्धी कार्य में विशेष सहायता पहुंचाते हैं।

पत्र-सूचना कार्यालय द्वारा समाचार-पत्रों को दी जाने वाली सूचनाएं तथा

समाचार आदि अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी दिए जाते हैं। इसके लिए अलग हिन्दी एकक भी स्थापित किया गया है। 'हिन्दी टेलिप्रिंटर' के तैयार हो जाने से इस कार्य में बड़ी प्रगति होने की आशा है।

फिल्म प्रभाग महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय पहलुओं पर समाचार चित्र तथा 'वृत्तचित्र' प्रायः सभी भारतीय भाषाओं तथा हिन्दी में तैयार करता है। इनमें हिन्दी चित्रों का प्रचलन लोकप्रियता की दृष्टि से बहुत अधिक होता है। इस प्रभाग ने कुछ चित्रों को मूल रूप में हिन्दी में भी बनाना शुरू कर दिया है।

संगीत नाटक प्रभाग प्रमुखतः देश के विभिन्न भागों में जाकर नाटक प्रस्तुत करता है। अहिन्दीभाषी प्रान्तों में भी इससे हिन्दी के नाटकों को लोकप्रिय बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है। यह प्रतिवर्ष दिल्ली में नाटक-समारोह का आयोजन करता है। इसमें देश के विभिन्न भागों से नाटक-मण्डलियाँ आकर नाटक प्रस्तुत करती हैं।

प्रकाशन प्रभाग द्वारा अनेक विषयों पर और भारत सरकार के विभिन्न कार्यों से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किए गए हैं। 'आजकल' और 'बाल भारती' नामक दो मासिक पत्रिकाएं भी इस प्रभाग द्वारा नियमित रूप से प्रकाशित की जाती हैं। प्रभाग के प्रमुख प्रकाशनों में अंग्रेजी के 'इण्डिया इयर बुक' का हिन्दी रूपान्तर 'भारत' (वर्ष पुस्तिका) है।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय का एक प्रमुख प्रभाग आकाशवाणी और दूरदर्शन है। भारत में प्रसारण का सर्वप्रथम कार्य एक गैर-सरकारी संस्था 'इंडियन ब्राडकास्टिंग कंपनी' द्वारा 1926 में प्रारंभ हुआ था। मार्च, 1930 को भारत सरकार ने प्रसारण-कार्य को सरकार के अधीन ले लिया। उस समय इसका नाम 'इंडियन स्टेट ब्राडकास्टिंग कंपनी' रखा गया। 8 जून, 1936 में यह कंपनी 'आल इंडिया रेडियो' के नाम से प्रसिद्ध हुई। सन् 1950 से 'आल इंडिया रेडियो' का 'आकाशवाणी' नाम रखा गया। आजादी के बाद आकाशवाणी के प्रसारण केन्द्रों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। पहले आल इंडिया रेडियो में 'हिन्दुस्तानी' में समाचार प्रसारित होते थे। हिन्दुस्तानी समाचार के स्थान पर 1949 से 'हिन्दी समाचार' का प्रारम्भ हुआ। 1949 से हिन्दी-प्रचार के लिए अहिन्दीभाषी केन्द्रों से हिन्दी प्रशिक्षण के कार्यक्रम शुरू किए गए। अब आकाशवाणी के अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में स्थित तीस केन्द्रों से हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान कराने के लिए हिन्दी के पाठ प्रसारित किए जाते हैं। इन पाठों का माध्यम प्रादेशिक भाषाएं होती है।

अखिल भारतीय स्तर के समाचार बुलेटिन अंग्रेजी के पूर्व हिन्दी में आकाशवाणी के सभी केन्द्रों से प्रसारित किए जाते हैं। हिन्दीभाषी प्रदेशों में स्थित केन्द्रों के अतिरिक्त अहिन्दीभाषी केन्द्रों से भी हिन्दी में कुछ वार्ताएं प्रसारित की जाती

हैं। अहिन्दी प्रदेश के हिन्दी के नव-लेखकों और साहित्यकारों को प्रोत्साहन देने के हेतु उनके द्वारा तैयार किया हुआ कार्यक्रम भी प्रसारित किया जाता है। प्रादेशिक भाषा के चुने हुए साहित्य का हिन्दी रूपान्तर भी इन केन्द्रों से प्रसारित किया जाता है। इस प्रकार हिन्दी में अनूदित साहित्य से हिन्दी के अखिल भारतीय स्वरूप के विकास की संभावनाएं हैं। हिन्दी रूपकों एवं गीतों का भी हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

3 अक्तूबर, 1957 से बंबई से 'विविध भारती' कार्यक्रमों का प्रसारण प्रारंभ हुआ। इससे भी हिन्दी के विकास की दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई है। आकाशवाणी द्वारा 'विविधा' नामक संकलन भी हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है। इसमें आकाशवाणी से प्रसारित महत्त्वपूर्ण वार्ताएं संकलित रहती हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी-माध्यम से 'सर्वभाषा कवि सम्मेलन' आकाशवाणी का हिन्दी की अभिवृद्धि में अति महत्त्वपूर्ण कार्य है। पिछले कुछ वर्षों में आकाशवाणी ने हिन्दी को सर्वप्रचलित भाषा बनाने की दिशा में सर्वाधिक प्रयास किए हैं।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय का एक प्रमुख प्रभाग 'दूरदर्शन' है जिसके माध्यम से हिन्दी के प्रचार और प्रसार में काफी मदद मिलती है। दूरदर्शन के विविध केन्द्रों से हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय की हिन्दी समिति की बैठकों में हिन्दी का उत्तरोत्तर प्रयोग बढ़ाने के बारे में विचार किया जाता है और समिति के सुझावों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया जाता है।

रेल मंत्रालय

रेल मंत्रालय ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में काफी योगदान दिया है। जिस प्रकार हिन्दी भारतीय एकता की कड़ी है उसी प्रकार भारतीय रेल भी इस एकता को संपूर्ण देश तक पहुंचाने वाला वाहन है। रेलवे का सीधा सम्बन्ध करोड़ों आदमियों से होता है। एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को जोड़ने वाली रेल विभिन्न भाषा-भाषियों को एक-दूसरे के करीब लाती है। इसलिए हिन्दी के प्रचार-प्रसार में एक सशक्त माध्यम भारतीय रेल है।

राजभाषा हिन्दी के प्रयोग के सम्बन्ध में रेलवे बोर्ड पर दोहरी जिम्मेदारी है—एक तो बोर्ड-कार्यालय में हिन्दी का प्रयोग-प्रसार करना और दूसरा, क्षेत्रीय और अधीनस्थ कार्यालयों में राजभाषा का प्रयोग बढ़ाना और रेल कर्मचारियों को संवैधानिक अपेक्षाओं से अवगत कराना तथा हिन्दी के प्रयोग-प्रसार के लिए प्रोत्साहित करना।

रेलवे बोर्ड में हिन्दी कक्ष की स्थापना सन् 1952 के मध्य हो चुकी थी जबकि विभिन्न प्रयोजनों के लिए अंग्रेज़ी के अतिरिक्त हिन्दी के प्रयोग के बारे में

राष्ट्रपति के आदेश 3 दिसम्बर, 1955 को प्रसारित किए गए थे। इससे रेलों पर हिन्दी के प्रयोग को और बढ़ावा मिला और बोर्ड-कार्यालय के अतिरिक्त क्षेत्रीय रेल प्रशासनों को भी पत्र-व्यवहार, निविदा और करार, रिपोर्टों आदि मे हिन्दी के प्रयोग के आदेश दिए गए। मंत्रालय की वार्षिक प्रशासनिक रिपोर्ट और रेलवे बजट प्रलेखो के हिन्दी में प्रकाशन की शुरुआत 1955 मे ही हो चुकी थी। रेलवे बजट के अवसर पर संसद में प्रतिवर्ष समस्त प्रलेख अंग्रेजी के अलावा हिन्दी मे भी पेश किए जाते हैं।

राजभाषा संशोधन अधिनियम के बाध्यकर उपबन्धो के अधीन सामान्य आदेश, परिपत्र, सकल्प, गजट अधिसूचनाएं, विज्ञप्तियां आदि हिन्दी-अंग्रेजी द्विभाषी रूप में जारी किया जाना सुनिश्चित करने के लिए अनेक उपाय किए गए है। रेल मन्त्रालय मे जनता, जन-प्रतिनिधियों और हिन्दीभाषी क्षेत्रों से पर्याप्त संख्या मे पत्र रेलमन्त्री और रेल राज्यमंत्री कक्ष में प्राप्त होते हैं जिनका उत्तर अनिवार्यतः हिन्दी मे भेजा जाता है। इसके फलस्वरूप हिन्दीभाषी क्षेत्रों और पंजाब, महाराष्ट्र और गुजरात आदि राज्यों को, जिन्होंने केन्द्रीय सरकार के साथ पत्र-व्यवहार मे हिन्दी अपना ली है, सभी पत्रादि हिन्दी मे ही भेजने के निरन्तर प्रयास किए जाते हैं।

रेलवे बोर्ड कार्यालय को इस वर्ष राजभाषा नियम के अन्तर्गत अधिसूचित कर दिया गया है, क्योकि इसके कुल 165 अनुभागों मे से 88 अनुभागों में 80 प्रतिशत या इससे अधिक कर्मचारियो को हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान है। जो कर्मचारी और अधिकारी हिन्दी शिक्षण योजना के अधीन विभिन्न परीक्षाएं पास करते हैं, लेकिन झिझक के कारण सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग नही कर पाते, उन्हें हिन्दी मे टिप्पण और आलेखन का अभ्यास कराने के लिए इन कार्यशालाओ का आयोजन किया जाता है। रेल मंत्रालय में ये कार्यशालाएं काफी लोकप्रिय हुई हैं।

रेलवे अत्यन्त तकनीकी विभाग है जिसकी संहिताओं, नियमावलियों आदि के हिन्दीकरण के लिए रेलों से सम्बन्धित विभागों की व्यापक जानकारी आवश्यक है। केन्द्रीय संहिताओ और नियमावलियो का हिन्दीकरण रेल मंत्रालय द्वारा किया जा रहा है। रेलवे बोर्ड की कुल 61 संहिताओं और नियमावलियों में से 16 नियम पुस्तकें हिन्दी-अंग्रेजी द्विभाषी रूप मे मुद्रित अथवा परिपत्रित की जा चुकी हैं और 11 पुस्तकें मुद्रण के लिए तैयार हैं। साथ ही विविध नियमावलियों और संहिताओं का अनुवाद किया जा चुका है। नियम पुस्तको का हिन्दी अनुवाद, मुद्रण तथा सहायक साहित्य के वितरण के अतिरिक्त एक तकनीकी शब्दावली 'रेलवे शब्दावली यान्त्रिक इंजीनियरी' की पुस्तक भी प्रकाशित की गई है।

रेलों के दैनिक कार्य में हजारों फार्मों का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाता है। रेलों पर प्रयुक्त कुल 2,071 मानक फार्मों में से अधिकांश फार्मों का अनुवाद हो चुका है।

रेलवे बोर्ड के विभिन्न निदेशालयों में हिन्दी के काम का दायित्व सम्बन्धित निदेशालय के संयुक्त निदेशक स्तर के अधिकारी को सौंपा गया है। ये अधिकारी हिन्दी के काम के लिए सम्बन्धित निदेशालय के संपर्क अधिकारी के रूप में काम करते हैं। हिन्दी के बारे में रेल मन्त्रालय का सर्वोच्च परामर्शदात्री संगठन रेलवे हिन्दी सलाहकार समिति अपनी संस्तुतियां बोर्ड के माध्यम से ही कार्यान्वित करती है।

रेलवे बोर्ड का राजभाषा निदेशालय प्रयत्नशील है कि विभिन्न निदेशालयों में हिन्दी में काम करने के इच्छुक कर्मचारियों की हर प्रकार से सहायता की जाए। इस बात पर विशेष रूप से जोर दिया जाता है कि हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारी रुचि लें और हिन्दी में काम करें, तभी हिन्दी का व्यापक प्रयोग-प्रसार बढ़ सकता है।

8

हिन्दी की अग्नि-परीक्षा

भारत को पराधीनता के एक लम्बे दौर से गुजरना पड़ा। इस शापित जीवन-काल के दौरान उसे सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं वैचारिक घातों-प्रतिघातों को भी सहन करना पड़ा। इन आघातों से समाज को उबारने के लिए देश ने कई मनीषियों को जन्म दिया, जिन्होंने सम्पूर्ण देश का भ्रमण कर धार्मिक और सामाजिक चेतना का संदेश जन-जन तक पहुंचाया। कबीर, गुरु नानक, स्वामी दयानन्द इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय हैं। इन मनीषियों ने फारसी या अरबी या संस्कृत को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बनाया, बल्कि उस भाषा को अपनाया जिसे प्रत्येक क्षेत्र की जनता समझ सकती थी, बोल सकती थी, जो उनके अन्तःकरण से मुखरित होती थी, चाहे उस भाषा का नाम उस समय कुछ भी था, परन्तु वह भाषा थी हिन्दी। इसके बाद देश में महात्मा गांधी के मार्गदर्शन में एक राष्ट्रीय चेतना का झंझावात आया, जिसने शिक्षित, अशिक्षित, शहरी, ग्रामीण, अमीर, गरीब और सभी धर्मावलम्बियों—हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, बौद्ध आदि के तन-मन को झकझोर दिया और स्वतन्त्रता-आन्दोलन को एक भयंकर आंधी का रूप प्रदान किया। इस स्वतन्त्रता-आन्दोलन को कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक पहुंचाने के काम के लिए स्वतन्त्रता-संग्राम के विभूतियों को, जनता को और राष्ट्रीय नेताओं को एक ऐसी सशक्त, लोकप्रिय भाषा की आवश्यकता थी जिसमें ये सभी गुण विद्यमान थे और उनकी भाषा भी थी, हिन्दी।

इसलिए हिन्दी हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आन्दोलनों की ही नहीं अपितु राष्ट्रीय चेतना एवं स्वतन्त्रता-आन्दोलन की अभिव्यक्ति की भाषा भी रही है। भारत का जन-जन इसका प्रयोग करने में आत्मसम्मान एवं आत्म-गौरव की अनुभूति करता था। सच्ची एवं शुद्ध भारतीयता की यही परख समझी जाती थी। इसलिए महात्मा गांधी ने इसे राष्ट्रभाषा के पद से विभूषित किया था। देश के जिन क्षेत्रों में इसके प्रचार की आवश्यकता थी, वहां स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से इसके पठन-पाठन की व्यवस्था की गई। परन्तु जिस घड़ी यह विश्वास हो गया कि अब देश की पराधीनता की बेड़ियां ध्वस्त होने वाली हैं और भारतीय ही इसके शासन की बागडोर ग्रहण करने वाले हैं, उसी घड़ी से भारतीय तनधारी-अंग्रेजियत मनधारी, पाश्चात्य संस्कृति के उपासकों तथा

अंग्रेज़ीदां साहबों ने प्रच्छन्न रूप से हिन्दी के विरोध की एक सशक्त ध्वनि-तरंग छोड़ दी। परिणामस्वरूप संविधान में हिन्दी को राजभाषा घोषित तो किया गया, परन्तु काफी गरमागरमी के बाद, अनेक प्रतिबन्धों के बाद। प्रशासन के उच्च स्तर पर दबी-दबी ज़बान से यह तर्क दिया जाने लगा कि हिन्दी में वह शक्ति व क्षमता नहीं है जो इतने बड़े देश के शासन को संभाल सके और विरासत में मिले ब्रिटिश शासन-तंत्र के शासन को संभाल सके तथा तंत्र की बारीकियों की अभिव्यक्ति के लिए हिन्दी का शब्द-भंडार पूर्णतः कंगाल है। अतः हिन्दी को दरिद्रता समाप्त करने के बहाने स्वतन्त्रता-संग्राम की स्वरवाहिनी भाषा पन्द्रह वर्ष के लिए निष्कासित की गई।

1956 में भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्गठन से हिन्दी को बहुत भारी धक्का लगा। इससे पहले सभी अपने को भारतीय मानते थे। भारतीय जन-मानस के राष्ट्रीय स्वर की भाषा हिन्दी थी, परन्तु अब व्यापक राष्ट्रीय भावना के बदले क्षेत्रीय भाषायी भावना को बढ़ावा मिला और इसे स्वार्थी तत्त्वों ने और भी मुखरित किया। फलतः भाषायी दृष्टि से प्रादेशिक भावना और राष्ट्रीय भावना के बीच एक टकराव की स्थिति उभरने लगी। दिन-प्रतिदिन यह स्थिति उग्र से उग्रतर होती गई।

संविधान में राजभाषा के रूप में स्वीकृत हो जाने पर भी व्यावहारिक रूप में हिन्दी के विकास में बाधाएं आने लगीं। हिन्दी के प्रश्न को लेकर कुछ राजनीतिक नेता अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए जनमानस में गलतफहमी पैदा करने में ही अपनी भलाई समझने लगे। हिन्दी की स्थिति को कमज़ोर करने के लिए कुछ राजनीतिक शक्तियां भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से काम करने लगीं।

हिन्दी के विरोध में कुछ क्षेत्रों में शक्तिशाली आन्दोलन भी चला। तमिलनाडु में जो हिन्दी-विरोधी आन्दोलन चला, उसके पीछे स्वार्थी राजनीतिज्ञों का हाथ था। भाषा को ही चुनाव लड़ने का सबसे बड़ा अस्त्र अपनाया गया। 27 नवम्बर, 1967 को राजभाषा विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया गया जिसकी अहिन्दी-हिन्दी प्रदेश में बड़ी ही प्रतिक्रिया हुई और एक लम्बे अर्से तक हिन्दी-विरोधी आन्दोलन चलता रहा। दूसरी ओर तमिलनाडु में भी व्यापक पैमाने पर छात्रों का हिन्दी-विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जो विधेयक द्वारा हिन्दी की निर्मम हत्या करने के बावजूद अंग्रेजी को और अधिक महत्त्व देने की आकांक्षा से अनुप्राणित था। तमिलनाडु का यह आन्दोलन दिनोंदिन ज़ोर पकड़ता जा रहा था और इसकी उग्रता बढ़ती जा रही थी। इतना ही नहीं, 'तनाव को बनाए रखना राजनीति की पहली शर्त' में विश्वास रखने वाले तमिलनाडु के तत्कालीन मुख्यमन्त्री ने भाषा के तनाव को और अधिक बढ़ाने की कामना से राजभाषा विधेयक का तीव्र विरोध प्रकट करना आरम्भ किया। सन् 1967 में राजभाषा

विधेयक के पारित होने के बाद तमिलनाडु सरकार की यह प्रतिक्रिया हुई कि उसने भाषा-नीति के संदर्भ में त्रिभाषा फार्मूले के स्थान पर अपने राज्य मे द्विभाषा फार्मूला लागू कर दिया और हिन्दी को तमिलनाडु से निर्वासित कर दिया । द्विभाषी प्रणाली की घोषणा के परिणामस्वरूप पूरे तमिलनाडु में हिन्दी, संस्कृत और उर्दू की पढ़ाई तक समाप्त कर दी गई। तमिलनाडु के हिन्दी-विरोधी आन्दोलन का प्रभाव दक्षिण के पड़ोसी राज्यों पर भी थोड़ा-बहुत पड़ा।

तमिलनाडु में हिन्दी का जो विरोध हुआ, उसके पीछे राजनीतिज्ञों का षड्यन्त्र है । तमिलनाडु मे हिन्दी के विरोध मे निम्नलिखित तर्क दिए जा रहे हैं। देखें कि इनमें कितना सत्य है, कितना झूठ है :

1. अगर केन्द्र की राजभाषा केवल हिन्दी बन जाएगी तो हिन्दीभाषी प्रथम श्रेणी के नागरिक होंगे और अहिन्दीभाषी दूसरी श्रेणी के नागरिकों के दर्जे में गिरा दिए जाएंगे। केन्द्र में हिन्दी को राजभाषा के रूप में न चाहने वाले व्यक्ति अंग्रेज़ी का तो समर्थन करते हैं परन्तु वे इस तथ्य को नज़रअन्दाज़ कर जाते हैं कि हिन्दी देश की अधिकांश जनता के द्वारा बोली और समझी जाती है, इसलिए उसको वह स्थान प्राप्त है । इस देश में अंग्रेज़ी जानने वालों की संख्या बहुत ही कम है । अब भी तमिलनाडु मे जो हिन्दी के राजभाषा बनने से अपने को दूसरी श्रेणी के नागरिक मानने और उस स्थिति को सहन नही कर रहे हैं, वे अंग्रेज़ी के राजभाषा होने पर दूसरी श्रेणी के नागरिक होने के लिए तैयार हैं। यह बहुत ही विचित्र बात है।

2. चूंकि हिन्दी केन्द्र की राजभाषा है और अंग्रेज़ी सह-राजभाषा है, अतः केन्द्र सरकार की नौकरियों और विविध प्रतियोगिताओं में हिन्दीभाषियों के लिए बहुत ही अनुकूल स्थिति मौजूद है और इस कारण से अहिन्दी भाषा-भाषी घाटे मे रहेंगे।

इस तर्क मे एक आशंका ध्वनित है, जिसको दूर करने की आवश्यकता है। हिन्दी के राजभाषा होने से जिनको असुविधा होगी, वैसे ठीक उसी तरह अंग्रेज़ी के राजभाषा होने से और दूसरे लोगों को असुविधा होगी। अतः अखिल भारतीय सेवाओं की प्रतियोगिता परीक्षाओं में हिन्दी के समान अन्य भारतीय भाषाओं को स्थान देने से इस आशंका का समाधान हो सकता है।

तमिलनाडु मे यह प्रचार किया जाता है कि हिन्दी केन्द्र की राजभाषा बनेगी तो तमिल भाषा पर आफत आ जाएगी। तमिल मे हिन्दी के शब्द मिलकर तमिल भाषा का पतन कर देंगे।

वास्तव में भोली-भाली जनता को भ्रम में डालने के लिए यह तर्क एक षड्यंत्र है । जो यह तर्क देते हैं, वह सुविधा के लिए भूल जाते हैं कि पिछले दो सौ वर्षों में अंग्रेज़ी के प्रचलन मे तमिलनाडु में क्या तमिल समाप्त हो गई ? तमिलभाषियों

में अपनी भाषा के प्रति जो मोह है और भाषाई प्रेम है, उसका शोषण करके राजनीतिक नेता तमिलभाषियों के मन में हिन्दी के प्रति विरोध पैदा करने के लिए यह प्रचार करते हैं कि हिन्दी के राजभाषा बनने से तमिल पर आफत आ जाएगी।

4. तमिलनाडु में हिन्दी का विरोध करने वाले तमिल भाषा और साहित्य की समृद्धि के लिए कुछ करने के बदले अंग्रेजी का समर्थन करने में अधिक लगे हुए हैं। यही लोग अंग्रेजी की स्तुति करते हुए यह गलत प्रचार करते हैं कि अंग्रेजी के जरिये ही विज्ञान और अन्य तकनीकी क्षेत्रों में प्रगति के लिए गुंजाइश है। उनका कहना है कि अंग्रेजी के बराबर हिन्दी समृद्ध भाषा नहीं है। जो हिन्दी भाषा और साहित्य के बारे में कुछ भी नहीं जानते, ऐसे लोग हिन्दी के संबंध में कुछ कहने लगें तो यह केवल गुस्ताखी ही होगी। इसमें राजनीतिज्ञों के निहित स्वार्थ की ही गंध है।

सामान्य रूप से हिन्दी का विरोध करने वाले अधिकांशतः अंग्रेजी का समर्थन करने वाले राजनीतिक नेता और ब्यूरोक्रेसी के भक्त होते हैं। इन लोगों का यह आरोप है कि अभी हिन्दी को राजभाषा बनाना अवांछनीय है, क्योंकि हिन्दी उसके लिए योग्य नहीं। अभी हिन्दी निर्माणावस्था में है और अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में उसमें अनेक कमियां हैं। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य नाम-मात्र का है। हिन्दी का सांस्कृतिक एवं बौद्धिक महत्त्व इतर भाषा-भाषियों के लिए नगण्य है। हिन्दी सूचना और शक्ति की भाषा के रूप में अंग्रेजी के सामने नहीं टिक सकती।

अंग्रेजी के समर्थकों के द्वारा उठाए गए तर्कों में कोई विशेष बल नहीं है। भारत की राजभाषा बनने की योग्यता हिन्दी में है और इसलिए तो उसका चयन करने वालों ने काफी सोच-विचारकर और ठोक-बजाकर उसे चुना। राष्ट्र की राज-भाषा के लिए जो आवश्यक गुण हैं, हिन्दी में उपलब्ध हैं। हिन्दी में पारिभाषिक और वैज्ञानिक शब्दों के अभाव की पूर्ति हो रही है। यह अभाव हिन्दी या भारत की किसी अन्य भाषा की अन्तर्निहित स्वाभाविक निर्बलता के कारण नहीं, बल्कि अंग्रेजी के अनुचित तनाव से उत्पन्न हुआ था। पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में अब प्रगति हो रही है। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की कमी की जो बात कही जा रही है, वह भी पूर्णतः सही नहीं है। चूंकि हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की मांग नहीं हुई, इसलिए वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण नहीं हुआ। अब यह मांग होने लगी है और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण भी जोर पकड़ने लगा है। हिन्दी के सांस्कृतिक और बौद्धिक महत्त्व को इतर भाषा-भाषियों के लिए नगण्य मानने वालों का दृष्टिकोण बड़ा ही संकुचित दिखाई देता है। हिन्दी का किसी भी युग का साहित्य किसी दूसरी भाषा के किसी भी युग के साहित्य

से किसी भी अंश में हीन नहीं है। इसका प्रमाण विगत एक हजार वर्षों का हिन्दी साहित्य है। हिन्दी भाषा में उच्चकोटि के कवियों का साहित्य है जिसका सांस्कृतिक और बौद्धिक महत्व कम नहीं है। हिन्दी का प्राचीन साहित्य ही नहीं, आधुनिक साहित्य भी भारत की किसी भी भाषा के साहित्य से न्यून नहीं है। हिन्दी भाषा और साहित्य की लंबी परंपरा पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होगा कि सांस्कृतिक और बौद्धिक महत्व के धरातल पर वह अन्य किसी भी भारतीय भाषा से कम नहीं है।

कुछ राजनीतिक नेता जनमानस में भ्रम पैदा करने के लिए हिन्दी के विरुद्ध यह आरोप लगाते हैं कि हिन्दीभाषी प्रधानतः अपने लाभ के लिए ही भारतीय संघ की भाषा के पद पर हिन्दी को प्रतिष्ठित करने में उत्सुक हैं। उनका कहना है कि हिन्दी संविधान सभा के द्वारा राजभाषा के रूप में स्वीकृत हुई है, निर्वाचित संसद द्वारा नहीं, अतः उसका औचित्य अमान्य है। कुछ राजनीतिक नेता यह भी कहते हुए पाए जाते हैं कि हिन्दी संविधान सभा में भी केवल एक मत की अधिकता से ही राष्ट्रभाषा स्वीकृत हुई है, सर्वसम्मति से संविधान सभा निर्वाचित संसद न होने के आधार पर उसके निर्णय को न मानने में तो कोई सार ही नहीं है। यदि ऐसा ही है तो सारे कानून अवैध बन जाएंगे, सारा संविधान ही व्यर्थ हो जाएगा। फिर निर्वाचित संसद ने भी उसे स्वीकार कर मान्यता प्रदान कर दी। अतः आरोप भी सर्वथा निराधार है।

आज तक बड़े-बड़े नेता हिन्दीभाषी क्षेत्रों में इसे बार-बार दुहराते रहते हैं। संविधान सभा में हिन्दी का एक दस्तावेज प्रस्तुत हुआ था, जिसपर श्री गोपाल स्वामी आयंगर, पट्टाभिसीतारामय्या, अनन्त शयनम आयंगर, काला वेंकटेश्वर राव, लक्ष्मीकान्त मैत्र, मजूमदार, अरुणचन्द्र गुह, सुरेन्द्र मोहन घोष, विश्वनाथ दास, लक्ष्मीनारायण साहू, रोहिणी कुमार चौधरी आदि के हस्ताक्षर थे। इस दस्तावेज पर लिखा था कि हम इस मत का समर्थन करते हैं कि संघीय संविधान हिन्दी तथा देवनागरी को क्रमशः राष्ट्रभाषा तथा लिपि के रूप में मान्यता दे। प्रस्तावक श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने बताया कि पूरे देश के लिए और केन्द्रीय प्रशासन के लिए एक भारतीय भाषा का चुनाव सर्वसम्मत है। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। फिर तीन दिन के लिए चर्चा जारी रही, इस प्रश्न को लेकर कि राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दी रखा जाए या हिन्दुस्तानी। कुछ लोगों ने हिन्दी का समर्थन किया और कुछ लोगों ने 'हिन्दुस्तानी' का समर्थन किया। मतदान लेने पर एक मत की अधिकता से 'हिन्दी' नाम स्वीकृत हो गया। अतः एक मत की अधिकता से ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद मिला, यह कथन छलपूर्ण है।

कुछ लोगों का यह आरोप कि हिन्दी का राजभाषा बनने से सभी प्रादेशिक

भाषाओं का विकास रुक जाएगा और वे अपने ही प्रदेश में गौण बन जाएगी, हास्यास्पद लगता है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनने पर प्रादेशिक भाषाओं का विकास रुक जाने का संदेह सर्वथा निराधार है, क्योंकि प्रादेशिक भाषाओं को अपने-अपने प्रदेश की राजभाषा के साथ-साथ उच्च से उच्चतम शिक्षा का माध्यम भी घोषित किया जा चुका है। वास्तव में प्रादेशिक भाषाओं का तो विकास अंग्रेजी ने रोक रखा है, हिन्दी के आ जाने पर ही तो उन्हें विकास का अवसर मिलेगा। प्रत्येक प्रदेश में प्रशासन का शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा ही होने के कारण अपने प्रदेश में उसकी स्थिति गौण होने की संभावना भी कदापि नहीं हो सकती।

कहीं-कहीं यह तर्क उठाया जाता है कि हिन्दी को अनिवार्य बनाना एक प्रकार का साम्राज्यवाद है। हिन्दी पर साम्राज्यवाद का आरोप केवल प्रलाप मात्र माना जा सकता है, क्योंकि यह सर्वविदित है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सरकार द्वारा या अन्य किसीके द्वारा जबरदस्ती थोपे जाने का कभी प्रयास नहीं हुआ। हिन्दी भाषा को इस राष्ट्र के नागरिकों ने सरल और आवश्यक समझकर अपनी स्वेच्छा से स्वीकार किया है। अगर हिन्दी का प्रचार हुआ है तो वह राजाश्रय की अपेक्षा जनाश्रय से अधिक हुआ है। सदियों से हिन्दी इस देश में सन्तों की वाणी रही है। हिन्दी की भाषागत विशिष्टता और हिन्दी साहित्य के विषयों का सामान्य जीवन से घनिष्ठ संबंध होने के कारण हिन्दी राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी स्वाभाविक रूप में बनी। आज भी अहिन्दी-प्रदेशों में हजारों-लाखों विद्यार्थी हिन्दी की परीक्षाओं में स्वेच्छा से सम्मिलित होते हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी पर साम्राज्यवादिता का आरोप सर्वथा अनुचित है।

हमारे देश में एक पूरा वर्ग ऐसा है जो राष्ट्रभाषा और राजभाषा के पद पर अंग्रेजी को प्रतिष्ठित रखना चाहता है। यह वर्ग किसी प्रदेश-विशेष में सीमित नहीं है वरन् सारे देश में फैला हुआ है, अमर बेल की तरह वह विशाल हिन्दी-भाषी प्रदेश में भी फैला है। आए दिन अपने प्रदेश के शिक्षित जनों के व्यवहार में हम अंग्रेजी का यह महत्त्व देख सकते हैं। हिन्दीभाषी प्रदेश में इस वर्ग के लोग उतने मुखर नहीं हैं जितने उनके सहयोगी अन्य प्रदेशों में हैं। फिर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सभी प्रदेशों में अंग्रेजी-प्रेमी एक-दूसरे की हैं।[1] यही वर्ग हिन्दी की प्रगति के पथ पर रोड़ा अटकाता है।

हमारे देश में सामाजिक श्रेष्ठता का आधार भी यद्यपि देश को स्वाधीन हुए तीन दशक से अधिक समय का वह प्रभाव मिटा नहीं है और अंग्रेजी न जानने वाले

1. भारत की भाषा-समस्या, डा० रामविलास शर्मा, पृ० 169

को सभ्य, श्रेष्ठ और सुसंस्कृत समझना है। सामाजिक श्रेष्ठता का लोभ मनुष्य की स्वाभाविक निर्भरता है जिसे प्रत्येक व्यक्ति चाहता है और उसे प्राप्त करने के लिए अन्यथा अधिकार की आवश्यकता पड़ती है। अंग्रेज़ी बोलते समय व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह सर्व-साधारण से ऊपर है और वह इस अंतर को कायम रखने का प्रयास करता है। अंग्रेज़ी शासकों की भाषा रही है, इसलिए इसमें रोब और आतंक का भी थोड़ा अंश रहा है और यह परंपरा इतनी बद्धमूल रही है कि उसके मिटने मे अभी कई दशक लगेंगे।[1]

कुछ लोग अपनी नेतागिरी कायम रखने के लिए भी अंग्रेज़ी का समर्थन और हिन्दी का विरोध कर रहे हैं तो कुछ लोग जो कभी हिन्दी के कट्टर समर्थक रहे हैं, वे भी अपनी नेतागिरी कायम रखने के लिए हिन्दी का विरोध करते दिखाई देते हैं।

हिन्दी के विकास-पथ पर रोड़ा अटकाने वाले और भी तत्त्व हैं जिनमें हिन्दीभाषियों का सबसे बड़ा हाथ है। हिन्दीभाषी राज्यों में हिन्दी का सम्यक् प्रचार व प्रसार नहीं हो रहा है और सरकारी कामकाज मे भी जिस गति से हिन्दी का प्रयोग होना चाहिए, वह नही हो रहा है। हिन्दी के प्रति उनकी उदासीनता हिन्दी के लिए घातक सिद्ध हो रही है। जबकि कई राज्यो ने हिन्दी को अपनी राजभाषा घोषित किया है, परन्तु भाषागत विवाद जितने यहां हैं, उतने किसी अन्य प्रदेश में नही हैं। दूसरी जगह विवाद है तो बंगला-असमिया या गुजराती-मराठी जैसी दो भिन्न भाषाओं को लेकर है। यहा के विवाद एक भाषा-क्षेत्र के अंतर्गत हैं।

मिथिला के कुछ राजनीतिज्ञ हिन्दी को अपनी प्रादेशिक भाषा नही मानते। पिछले चुनाव में उन्होंने अपने राजनीतिक प्रचार के पर्चे मैथिल और उर्दू में निकाले और हिन्दी का बहिष्कार किया। भोजपुरी क्षेत्र में जन्म लेने वाले कुछ हिन्दी के आचार्य भाषा-विज्ञान पर ग्रन्थ लिखकर यह सिद्ध करते हैं कि भोजपुरी हिन्दी से भिन्न तथा स्वतंत्र भाषा है। आज तक सभी भाषायी और साहित्यकार इन्हें हिन्दी की बोलियां मानते आए हैं। इसलिए ऐसे क्षेत्रों मे वास्तविकता का प्रचार आवश्यक है, जिससे वहां के शिक्षित जनों का वह भाग, जो अपनी बोली को स्वतन्त्र भाषा मानता है, प्रादेशिक भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करे। जब तक साधारण जनता के सामने यह स्पष्ट नही हो जाता कि हिन्दी-प्रदेश की सीमाएं कौन-सी है, तब तक समूचे देश में तथा अपने ही प्रदेश में हिन्दी को उसका उचित स्थान दिलाने के लिए यह विशाल जनता सक्रिय नही हो सकती।

प्रादेशिक भाषा और राष्ट्रभाषा मे अन्तर है। महाराष्ट्र, बंगाल या

1. राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएं और समाधान, डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ० 158

तमिलनाडु के लोगों की प्रादेशिक भाषा मराठी, बंगला या तमिल है जो पारस्परिक आदान-प्रदान का माध्यम बनती है। हिन्दीभाषियों के लिए हिन्दी जातीय भाषा है, जैसे महाराष्ट्र के लोगों के लिए मराठी जातीय भाषा है। जातीय भाषा होने के साथ-साथ हिन्दीभाषियों के लिए हिन्दी राष्ट्रभाषा भी है। मिथिला के कुछ शिक्षित जन हिन्दी को राष्ट्रभाषा तो मानते हैं किन्तु अपनी जातीय भाषा नहीं मानते। मराठी के समान वे मैथिली को हिन्दी से स्वतंत्र भाषा मानते हैं। मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी आदि को अलग स्वतंत्र भाषा मानने की दिशा में हिन्दीभाषियों की जो मांग है, उसमे केवल स्वार्थपरक दृष्टि-कोण ही नजर आता है। इससे हिन्दी के विरोधियों को भी यह कहने के लिए मौका मिल जाता है कि हिन्दी वालों के अनुसार ही हिन्दी एक विशाल जनसमूह की भाषा न होकर एक संकुचित प्रदेश की अल्पसंख्यक भाषा है।

अनेक अंग्रेज़ी-प्रेमी विद्वान इसी तर्क का आश्रय लेते हैं और कहते भी हैं कि हिन्दी अपने ही क्षेत्र में दूसरों पर लादी गई भाषा है। वे प्रचार करते हैं कि व्रज, अवधी, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी आदि सब स्वतंत्र भाषाएं हैं जिनपर कृत्रिम साहित्यिक हिन्दी जबरदस्ती लादी गई है। ये लोग भूल जाते हैं कि इंग्लैंड, रूस, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में अंग्रेज़ी, रूसी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि भाषाओं की वैसी ही बोलियां हैं जैसी हिन्दी की। इन सभी भ्रांतियों के निवारण के लिए हिन्दीभाषी प्रदेशों में हिन्दी के विषय मे सही स्थिति का प्रचार आवश्यक है।

हिन्दी के विकास-मार्ग में एक और तत्व ने रोड़ा अटकाया है। बीच में हिन्दी के पंडितों ने हिन्दी की शैली को संस्कृत के कठिन शब्दों से बोझिल बनाने की चेष्टा की। उनकी धारणा यह थी कि हिन्दी के 'संस्कृतीकरण' से हिन्दी की शोभा बढ़ेगी और वह उर्दू के प्रभाव से मुक्त हो जाएगी और शुद्ध रूप में व्यवहृत होगी। हिन्दी के 'संस्कृतीकरण' के दुराग्रह ने हिन्दी का अनर्थ कर दिया। हिन्दी के कुछ कोशकारों ने पारिभाषिक शब्द के बहाने ऐसे बोझिल शब्द हिन्दी मे गढ़ दिये हैं जिनको सामान्य हिन्दी के जन के लिए भी समझना मुश्किल है। ऐसे संस्कृतनिष्ठ शब्द हिन्दी मे प्रचलित नहीं हो सकते।

हिन्दी के इस 'संस्कृतीकरण' से हिन्दी का राष्ट्रभाषा बनना तो दूर, उसको प्रादेशिक भाषा के रूप में भी लोकप्रिय रहना कठिन हो जाएगा। यह हिन्दी की सेवा करना नहीं, उसका गला घोंटना है। हर हिन्दी-प्रेमी को इसका विरोध करना चाहिए।[1]

यह बात नहीं है कि संस्कृत से शब्द लेना एकदम बन्द कर देना चाहिए; लेकिन शब्द लेना एक बात है, भाषा को संस्कृतमय बना देना दूसरी बात। इन

1. भारत की भाषा-समस्या, डा० रामविलास शर्मा, पृ० 46

कोशकारों की नजर में हिन्दी का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। कोश-प्रेमियों का कहना है कि सरल शब्दावली पारिभाषिक बना दी गई। इस तरह हिन्दी को इतना पारिभाषिक बनाया जाएगा कि वह 'भाषा' न रहकर केवल 'परिभाषा' रह जाएगी।[1]

हिन्दी का 'संस्कृतीकरण' पारिभाषिक शब्दों को लेकर ही नहीं है, साधारण साहित्य में, दैनिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं आदि में भी तत्सम शब्दों को इसलिए भरा जाता है कि इससे हिन्दी सुबोध हो जाएगी—शुद्ध हिन्दी बोलने वालों के लिए नहीं बल्कि दूसरी भाषाओं के बोलने वालों के लिए भी। पारिभाषिक शब्दों की समस्या बोलचाल की भाषा के नियमों को तोड़कर हल नहीं की जा सकती। बोलचाल की भाषा में अंग्रेज़ी और फारसी के शब्द भी आते हैं और संस्कृत से भी आते हैं। लेकिन कुछ संस्कृत के जोश में शुद्धतावादी केवल संस्कृत के तत्सम शब्दों को लेने पर तुले हुए हैं। वे ये भूल जाते हैं कि स्वयं संस्कृत दूसरी भाषाओं से शब्द लेकर समृद्ध होती रही थी।[2]

हिन्दी के सरलीकरण को लेकर कभी-कभी प्रश्न उठाया जाता है। हिन्दी के संस्कृतीकरण से सामान्य जन के लिए हिन्दी के प्रयोग में कठिनाई महसूस की जाती है। उसके कारण भी हिन्दी के प्रगामी प्रयोग में बाधा पड़ती है और उस कारण से 'सरलीकरण' की मांग की जाती है। वास्तव में इस संबंध में हिन्दी भाषा को बोझिल बनाने की अपेक्षा उसकी शैली को विकसित होने का अवसर देना है। आकाशवाणी में प्रयुक्त हिन्दी की शैली को लेकर कभी-कभी वाद-विवाद उठ खड़ा होता है। हिन्दी को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से सभी माध्यमों से सरल जनभाषा के ही प्रयोग को अवसर देना चाहिए।

हिन्दी की संस्कृतनिष्ठ शैली को लेकर कुछ क्षेत्रों में कुछ गलत अर्थ भी लिया जाता है और हिन्दी भाषा को हिन्दू धर्म के साथ जोड़ने का भी आरोप लगाया जाता है। हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसे सभी धर्मावलंबी लोगों का सहयोग प्राप्त हुआ है और वह किसी एक धर्म या जाति की बपौती नहीं रही है। कभी-कभी हिन्दीभाषी पंडित यह प्रदर्शित करने की चेष्टा करते हैं कि वह किसी एक विशिष्ट धर्म और जाति की भाषा है। इस प्रदर्शन से हिन्दी की हानि ही संभव है। वास्तव में हिन्दी किसी एक धर्म या जाति की भाषा नहीं है और उसपर सबका अधिकार है। जब तक हिन्दी वालों का यह संकुचित दृष्टिकोण बदलेगा नहीं तब तक हिन्दी का स्वागत सभी क्षेत्रों में होना कठिन है। संविधान में हिन्दी के भावी विकास की जो परिकल्पना है

1. भारत की भाषा-समस्या, डा० रामविलास शर्मा, पृ० 47
2. वही पृ० 48

और हिन्दी को भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति की सक्षम वाहिका बनाने की जो मांग है, उसको साकार बनाने के लिए हिन्दी के विकास में सभी धर्म और जाति, हिन्दीतरभाषी सबको समान रूप से हिन्दी के विकास मे योग देने का अवसर देना चाहिए।

हिन्दीभाषी राज्यों की सरकारों की तरफ से भी अपने प्रदेशों मे हिन्दी को पूर्ण रूप से राजभाषा बनाने के विषय मे कोई खास गंभीरता नही दिखाई जा रही है। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी जैसे हिन्दी के कर्मठ सेवक को भी एक बार निराश होकर कहना पड़ा कि "हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा कभी बन नहीं सकती क्योंकि सरकार सच्चे दिल से ऐसा नही चाहती। कथनी और करनी में बहुत फर्क होता है'''खुद हिन्दी वाले क्या कर रहे हैं? हिन्दी के नाम पर हिन्दी वाले दुकानदारी कर रहे है।"[1] इस दुकानदारी को छोड़कर जब तक हिन्दीभाषी पूरी ईमानदारी के साथ हिन्दी की सेवा मे नही लगेंगे तब तक दूसरे लोगों पर यह विश्वास पैदा करना कठिन है कि हिन्दी की प्रगति करने मे हिन्दीभाषियों का निःस्वार्थ और स्वच्छ दृष्टिकोण है।

जहां तक अहिन्दीभाषी क्षेत्र मे हिन्दी के प्रचार-प्रसार का प्रश्न है, स्वार्थी राजनीतिज्ञो के हिन्दी-विरोधी रवैये के बावजूद भी जनता में हिन्दी के प्रति रुचि है। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय मे हिन्दी के लिए जो राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित समर्पण-भावना थी, वह तो अब नही है, परन्तु राष्ट्रीय आवश्यकता को महसूस करते हुए और नौकरी की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए अहिन्दी-प्रदेशो मे विभिन्न संस्थाओं के द्वारा हिन्दी के प्रचार-प्रसार मे पर्याप्त योगदान हो रहा है। राष्ट्र की राष्ट्रभाषा के रूप में अहिन्दी-प्रांतों मे हिन्दी को प्रतिष्ठित करने के मामले मे अहिन्दीभाषी जनता के मन में जो आशंकाएं हैं, उनको दूर करने की आवश्यकता है। राजनीतिक नेताओं के द्वारा हिन्दी के विरोध में जो षड्यंत्र रचा जाता है, उसका सामना करने के लिए भी अहिन्दीभाषियों के मन में हिन्दी के प्रति जो आशंकाएं हैं, उन्हें दूर करने की आवश्यकता है। अहिन्दी-प्रदेशों में जनता के मन में यह आशंका है कि राजभाषा के रूप में हिन्दी के व्यापक प्रयोग होने से हिन्दीभाषी समुचित लाभ उठाएंगे और अहिन्दीभाषियों को हिन्दी सीखने पर भी हिन्दीभाषियों के बराबर का लाभ प्राप्त नहीं होगा। इस आशंका के लिए पहले हिन्दीभाषी विद्वानों ने और हिन्दी के समर्थक नेताओं ने यह आश्वासन दिया था कि ऐसा नहीं होगा। परन्तु इतने सालों के अनुभव के बाद अहिन्दीभाषी हिन्दी-प्रेमियों के मन मे वह आशंका ज्यों की त्यों बनी

1. 'हिन्दी भाषा कभी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती'—शीर्षक लेख आचार्य किशोरीदास वाजपेयी—साप्ताहिक हिन्दुस्तान—1979

हुई है और कहीं दृढ़ भी हो गई है कि हिन्दी के राजभाषा बनने से हिन्दीभाषी विशेष लाभ उठा रहे हैं। इस आशंका को जब तक व्यावहारिक रूप में दूर करके दृढ़ विश्वास नहीं पैदा किया जा सकेगा, तब तक हिन्दी की प्रगति में तेज़ी आ नहीं सकती। सरकार की तरफ से और हिन्दी-समर्थक नेताओं की ओर से अहिन्दीभाषी हिन्दी-प्रेमियों के मन की स्वाभाविक आशंका को दूर करने के लिए कार्यक्रम अपनाना पड़ेगा।

केन्द्र के मन्त्रिगण और राष्ट्रीय नेता अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के दौरे के संदर्भ में खास करके चुनाव के संदर्भों में यह घोषणा करने में अपनी भलाई समझते हैं कि अहिन्दीभाषियों पर हिन्दी 'लादी' नहीं जाएगी। ऐसे मौक़ों पर भाषा के प्रश्न को उठाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती; परन्तु 'हिन्दी लादी नहीं जाएगी' कहते हुए नेताओं को यह आत्मसंतोष प्राप्त होता है कि अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में आने पर वहां के लोगों को खुश करने के लिए यही एक मंत्र है। राष्ट्रीय नेताओं के द्वारा अहिन्दी-प्रदेश के भ्रमण के समय मौके-बेमौके 'हिन्दी लादी नहीं जाएगी' कहना 'फैशन'-सा हो गया है। खेद की बात है कि ऐसे अनावश्यक प्रलाप से अहिन्दी-प्रांतों में हिन्दी के लिए उपलब्ध अनुकूल स्थिति को हानि पहुंचती है।

राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग में धीमी गति

केन्द्र सरकार के विभिन्न कार्यालयों में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की जो वर्तमान स्थिति है, उसमें वांछनीय गति नहीं आई है। इसके कई कारण ढूंढे जा सकते हैं। सरकारी कामकाज में प्रयोग में लाई जाने वाली हिन्दी के स्वरूप के विषय में कर्मचारियों के बीच कोई निश्चित धारणा नहीं है। शुरू में एकदम संस्कृतनिष्ठ शैली और अंग्रेज़ी से अनुवाद की प्रक्रिया के कारण हिन्दी की जिस शैली का प्रयोग होता था, वह एकदम दुरूह था। अब भी शिकायत की जाती है कि सघ शासन में जिस हिन्दी का प्रयोग किया जाता है, वह दुरूह होती है। उसको समझने में कठिनाई होती है। इस शिकायत में न केवल अहिन्दीभाषी ही बल्कि हिन्दीभाषी लोग भी शामिल हैं। अहिन्दीभाषी लोगों की यह शिकायत अस्वाभाविक नहीं है। लेकिन जब हिन्दीभाषी लोग भी यह शिकायत करते हैं तो यह विषय विशेष रूप से विचारणीय हो जाता है।

इन शिकायतों को करने वालों का एक सुझाव यह है कि जैसे हिन्दी आम व्यवहार में लाई जाती है, वैसे ही हिन्दी सरकारी कामकाज में भी होनी चाहिए। इसमें कोई शक नहीं है कि हिन्दी फिल्मों ने हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में बड़ी भूमिका अदा की है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि मद्रास जैसे अहिन्दीभाषी शहर में भी करीब पचास फीसदी सिनेमाघरों में हिन्दी फिल्में

दिखलाई जाती हैं और ये सिनेमाघर आमतौर पर दर्शकों से खचाखच भरे रहते हैं।

फिल्मों की भाषा बोलचाल और मनोरंजन की भाषा होती है, लेकिन बोलचाल और मनोरंजन की भाषा सरकारी कामकाज की भाषा नहीं बन सकी। बोलचाल और प्रशासनिक भाषा का अंतर अंग्रेजी भाषा में भी बहुत स्पष्ट रूप से मौजूद है। बोलचाल की भाषा स्थान, पात्र और कामचलाऊपन से बनती है, लेकिन प्रशासनिक भाषा को मानकता और विधायी बाध्यता की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ती है।

यह इन्कार नहीं किया जा सकता कि सरकारी आदेशों के बावजूद राज-भाषा के रूप में जिस हिन्दी का प्रयोग हो रहा है, उसमें काफी दुरूहता रहती है। इसके दो प्रधान कारण हैं।

पहला कारण यह है कि राजभाषा के रूप में जिस तरह की हिन्दी लिखी जा रही है, वह प्रधानतः अनुवादी हिन्दी है। आमतौर पर मूल पाठ अंग्रेजी में होता है, फिर उसका जैसे का तैसा हिन्दी रूपान्तर कर दिया जाता है। ऐसा करने से हिन्दी भाषा की स्वाभाविकता और सहजता नष्ट हो जाती है। इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि मूल पाठ हिन्दी में तैयार किया जाए, लेकिन हिन्दी में मूल पाठ ऐसे अधिकारी कैसे तैयार कर सकते हैं, जिनकी शिक्षा, प्रतियोगिता-परीक्षा और प्रशिक्षण का माध्यम अंग्रेजी रही है और जो संघ सरकार की सेवा में नियुक्त हो जाने के बाद से 15-20 वर्षों तक अंग्रेजी में ही सरकारी काम-काज करते आए हैं? इस तरह हम देखते हैं कि राजभाषा के रूप में सुबोध हिन्दी के प्रयोग करने के प्रश्न के साथ हमारी शिक्षा, प्रतियोगिता-परीक्षा और अभ्यास के प्रश्न जुड़े हुए हैं। जब तक हमारी शिक्षा और प्रतियोगिता-परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहेगी और इसके फलस्वरूप हमारे अधिकारी अंग्रेजी में ही मूल पाठ तैयार करने के अभ्यस्त रहेंगे तब तक राजभाषा के रूप में सुबोध हिन्दी के प्रयोग की बात तो दूर रही, किसी भी प्रकार की हिन्दी की यथेष्ट प्रगति नहीं हो सकती। तसल्ली इस बात से नहीं हो सकती है कि शिक्षा, प्रतियोगिता-परीक्षा और अभ्यास के क्षेत्रों में भी अंग्रेजी का एकाधिकार समाप्त हो रहा है तथा हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाएं प्रगति कर रही हैं, क्योंकि संघ सरकार की प्रतियोगिता-परीक्षा में अंग्रेजी प्रश्न-पत्र की अनिवार्यता ज्यों-की-त्यों बनी हुई है और चयन के बाद प्रशिक्षण केवल अंग्रेजी में ही हो रहा है। यदि दो-चार हिन्दी-माध्यम से पढ़े सेवा में छूट भी जाते हैं तो प्रशिक्षण काल में उनकी दुर्दशा ही होती है, क्योंकि अंग्रेजी-माध्यम के प्रशिक्षण की कड़वी घूट उन्हें जबरदस्त पिलाई जाती है। सार्वजनिक उपक्रमों, बैंकों में तो हिन्दी का प्रवेश अभी निषेध है।

9

हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र

हिन्दी भाषा का व्यवहार केवल भारत में ही नहीं, विश्व के अनेक राष्ट्रों में हो रहा है। भारत की आजादी के बाद हिन्दी का महत्त्व विदेशों में काफी अधिक बढ़ गया है। विदेशों में हिन्दी के पठन-पाठन और प्रचार-प्रसार का कार्य दो धाराओं में विभाजित है। एक धारा तो वह है जिसके अन्तर्गत विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। दूसरी धारा है, उन देशों में जहां प्रवासी भारतीय या भारतवंशी बड़ी संख्या में विद्यमान हैं जो गत शताब्दी में और वर्तमान शताब्दी में अपनी जीविका की तलाश में मजदूर और व्यापारी बनकर भारत से बाहर गए। ये भोले-भाले भारतीय अपने साथ अपने देश की संस्कृति और धर्म को भी ले गए, जिसे संकट और संघर्ष के दौरान भी अपनी भाषा के साथ सुरक्षित रखा। इनके धार्मिक ग्रन्थों के माध्यम से हिन्दी इनके साथ बनी रही। फिजी, सूरीनाम, ट्रिनीडाड, गुयाना, मारिशस आदि में प्रवासित भारतीयों की यही धारा है। वस्तुतः विदेशों में हिन्दी की यही धारा सर्वशक्तिमान और प्रवाहमान है। वैसे ब्रिटेन, थाइलैण्ड, मलेशिया, सिंगापुर आदि देशों में भी प्रवासी भारतीयों की बड़ी संख्या होने के कारण हिन्दी की धारा किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है।

हिन्दी का विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार आकस्मिक अथवा अप्रत्याशित नहीं है। इसका बहुत बड़ा श्रेय उन प्रवासी भारतीयों को है जिन्होंने अपनी हिन्दी भाषा को संरक्षण प्रदान किया। हम उन धर्म-प्रचारकों को भी नहीं भुला सकते जिन्होंने हिन्दी के माध्यम से अपने-अपने मतों का प्रचार किया। इसी प्रकार उन व्यवसायियों-व्यापारियों की हिन्दी-सेवा का मूल्य भी हम कभी नहीं आंक सकते जिन्होंने व्यापार-व्यवसाय का माध्यम हिन्दी को बनाए रखा।

जिस प्रकार भारत में स्वभाषा का प्रश्न राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-संग्राम के साथ जुड़ा और हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरव-पद प्राप्त हुआ, उसी प्रकार उन देशों में भी जहां भारतीय बड़ी संख्या में पहुंचे थे, हिन्दी का प्रश्न सुदूर भारतीय स्वतन्त्रता की लड़ाई के साथ जुड़ गया था। प्रवासी भारतीयों ने भी राष्ट्रीय संग्राम में सहयोग दिया। महात्मा गांधी राष्ट्रभाषा की शक्ति के साथ-साथ प्रवासी भारतीयों की शक्ति से भी परिचित थे। इसलिए उन्होंने कांग्रेस के अन्दर अन्य मोर्चों के साथ प्रवासी भारतीयों का भी एक मोर्चा कायम किया तथा अपने

व्यापारियों का व्यापार-सम्बन्ध यद्यपि दक्षिण भारत से भी अधिक था तथापि उन्होंने हिन्दी का परिचय प्राप्त करना आवश्यक समझा।

फलस्वरूप सन् 1715 ईस्वी में उक्त व्यापारियों की प्रेरणा से जे० जे० केटेलियर ने डच भाषा में हिंदुस्तानी का एक व्याकरण तैयार किया। यह हिंदुस्तानी का कदाचित् पहला व्याकरण था जिसका लैटिन अनुवाद लायडेन ने सन् 1743 ईस्वी में प्रस्तुत किया। ए० हेमिल्टन ने सन् 1727 ईस्वी मे हिन्दुस्तानी को अपने एक यात्रा-विवरण में मुगल सुल्तान की एक सामान्य भाषा सूचित किया। सन् 1852 ईस्वी में फ्रांस में दिए गए अपने एक भाषण में गार्सा-द-तासी ने 'हिन्दुई-हिन्दुस्तानी' को भारतीय लोकभाषा ठहराया। इसी प्रकार सन् 1886 ई० मे लन्दन से प्रकाशित 'हाब्सन जाब्सन' कोश मे हिन्दुस्तानी (हिन्दी) को भारतीयों की राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विदेशी विद्वान भी हिन्दी की वास्तविक स्थिति से परिचित होकर हिन्दी सीखने के इच्छुक भी थे। अनेक विदेशी राष्ट्रों मे वहां के विद्वानों ने हिन्दी सीखने-सिखाने की दिशा मे काफी उत्साह दिखाया है। इस उत्साह के परिणामस्वरूप अनेक राष्ट्रों मे हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था भी हो गई है।

विदेशों में हिन्दी-प्रचार को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से सरकार की तरफ से भी कुछ प्रयत्न किए जा रहे है। हिन्दी-प्रचार की योजना को सफल बनाने की दृष्टि से फिजी, मारिशस, ट्रिनीडाड स्थित हमारे दूतावासों मे हिन्दी अधिकारी नियुक्त किए गए हैं और हिन्दी के प्रचार-प्रसार मे इनका योगदान उपयोगी सिद्ध हुआ है। इन हिन्दी अधिकारियो की सहायता से वहां हिन्दी पाठ्यक्रम के निर्माण, पाठ्य-पुस्तकों के लेखन, हिन्दी समाचार-पत्रों के प्रकाशन, रेडियो और टेलीविजन के प्रसारण, मानस चतुःशती जैसे अवसरों पर सांस्कृतिक आयोजन किया जाता रहा है तथा भारत की प्रसिद्ध संस्थाओ द्वारा संचालित परीक्षाओं के आयोजन मे ये अधिकारी स्थानीय संस्थाओ को यथासम्भव सहायता प्रदान करते है। इस सन्दर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि अकेले मारिशस में प्रायः पांच-छ. हजार व्यक्ति हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विभिन्न परीक्षाओं में भाग लेते हैं। परीक्षाओं के सचालन मे विदेश मंत्रालय और विदेश स्थित हमारे दूतावास सम्पर्क-सूत्र का कार्य करते है।

इसके अतिरिक्त भारतीय सास्कृतिक सम्बन्ध परिषद् ने भी हिन्दी और भारतीय भाषाओं के पठन-पाठन को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से बुखारेस्ट और सोफिया मे प्राध्यापक भेज रखे है। त्रिनीडाड, सूरीनाम और गुयाना मे भी हिन्दी प्राध्यापक कार्य कर रहे हैं। एक प्राध्यापक ढाका में भी कार्यरत हैं। विदेशों मे निवास करने वाले भारतवासियों की आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् ने 'गगनाचल' नामक एक हिन्दी

त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया है। परिषद् हिन्दी की पुस्तकें भी विदेशों में उपहार के रूप में भेजती है।

विदेश स्थित भारत के राजदूतावासों में भी राजभाषा नियमों के कार्यान्वयन का प्रयत्न हो रहा है। वास्तव में इन राजदूतावासों के द्वारा विदेशों में भारतीय संस्कृति और भारत की राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत कुछ किया जा सकता था और किया जा सकता है। दूतावासों में कार्यरत अधिकारियों से यह अनुरोध किया जाता है कि हिन्दी जानने वाले सभी लोगों के साथ वे अपनी बातचीत में यथासंभव हिन्दी का ही प्रयोग करें और औपचारिक अवसरों पर हिन्दी में भाषण दें। राजदूतों से यह भी अनुरोध किया गया है कि राजाध्यक्षों के सम्मुख अपने परिचय-पत्र प्रस्तुत करते समय वे यथासंभव हिन्दी में भाषण देने का प्रयास करें और हमारे कुछ राजदूतों ने अपने परिचय-पत्र प्रस्तुत करते समय हिन्दी में अपना संक्षिप्त भाषण भी दिया है। दूतावासों को यह भी बताया गया है कि वे मंत्रालय के साथ अपने पत्र-व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग करें और कुछ दूतावास अपने पत्र-व्यवहार में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा दे रहे हैं।

दूतावासों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए हिन्दी टाइपराइटर दिए जाते हैं। विदेश मंत्रालय द्वारा समाचार सम्बन्धी सभी प्रलेख मूल रूप से हिन्दी में भेजे जाते हैं तथा इन प्रलेखों के साथ अंग्रेज़ी अनुवाद संलग्न रहता है।

स्थानीय हिन्दी लेखन को प्रोत्साहन, विभिन्न देशों के नागरिकों को स्थानीय ढंग से हिन्दी का प्रशिक्षण, पुस्तकालय की सुविधाएं, संसार के विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाने वाली भारतीय भाषाओं का हिन्दी के संदर्भ में अध्ययन, हिन्दी और हिन्दी-शिक्षण की पद्धति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भारत में वृत्ति आदि देकर और इन उद्देश्यों की पूर्ति द्वारा विश्व में हिन्दी को मान्यता प्रदान कराने की दृष्टि से 'विदेशों में हिन्दी-प्रचार की योजना' विदेश मंत्रालय और शिक्षा-मंत्रालय ने तैयार की है। विदेशी हिन्दी लेखकों को पुरस्कार देने की योजना भी विदेश मंत्रालय की है। इस योजना के अन्तर्गत कुछ लेखक पुरस्कृत भी हो चुके हैं।

विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में हिन्दी के पठन-पाठन की व्यवस्था हो चुकी है। अनेक राष्ट्रों में हिन्दी भाषा और साहित्य में रुचि रखने वाले विद्वान हिन्दी के प्रचार-प्रसार में रुचि ले रहे हैं। जिन राष्ट्रों में हिन्दी के पठन-पाठन की व्यवस्था है, उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है :

मारिशस

मारिशस में हिन्दी प्रचार का इतिहास बहुत पुराना है। 1857 में जब बिहार तथा उत्तर भारत के अन्य प्रान्तों से श्रमिक मारिशस में जाने लगे, वे

अपने साथ हिन्दी भाषा और रामचरितमानस को भी ले गए। मारिशस में जो भारतीय पाठशालाएं खुलीं उनमें हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था भी थी। मारिशस में कई पत्रिकाएं निकलीं, जिनमें 'हिन्दुस्तानी', 'आर्यपत्रिका' आदि मुख्य थी। मारिशस की जनता की भाषा क्रिओल है जिसमें अनेक भारतीय भाषाओं के शब्द भी सम्मिलित हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आर्यसमाज के प्रचार के साथ-साथ हिन्दी के प्रचार का कार्य भी प्रारम्भ हुआ। मारिशस में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में अनेक विद्वानों का योगदान रहा है जिनमें पंडित आत्माराम, विष्णुदयाल, रामावध, काशीनाथ आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने हिन्दी में पुस्तकें लिखकर हिन्दी की सेवा की है। लगभग दो सौ विद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई होती है।

प्रो० विष्णुदयाल ने मारिशस में हिन्दी तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उन्होंने 1941 में हिन्दी प्रचारिणी सभा का सहयोग पाकर एक हिन्दी सम्मेलन का आयोजन भी किया था। प्रो० विष्णुदयाल ने हिन्दी के माध्यम से धार्मिक भाषण देने प्रारम्भ किए, जिससे प्रेरित होकर अनेक लोगों ने हिन्दी सीखी। उन्होंने 40-50 पुस्तकें हिन्दी में लिखी हैं और कई ग्रन्थों का अनुवाद भी हिन्दी में किया है। उन्होंने जो सरल हिन्दी व्याकरण की रचना की, वह घर-घर में पहुंचाया गया। प्रो० विष्णुदयाल के लेख भारत की पत्रिकाओं में भी छपते रहे। 1967 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने प्रो० विष्णुदयालजी को 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से अलंकृत किया। हिन्दी की सेवा करने वाले दूसरे विद्वानों में श्री सोमदत्त बखोरी, जयनारायण राय, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, ब्रजेन्द्रकुमार मधुकर, डा० रामप्रकाश, अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरंधर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाएं हिन्दी की पत्रिकाओं में निकलती रहती हैं। 1976 में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन भी मारिशस में हुआ। द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के संदर्भ में मारिशस में हिन्दी के प्रति नवीन जागृति उत्पन्न हुई है। इसी अवसर पर 'गांधी प्रतिष्ठान' की स्थापना भी हुई। गांधी प्रतिष्ठान से 'वसन्त' नामक एक हिन्दी पत्रिका निकलती है जिसमें मारिशस के हिन्दी लेखकों की रचनाएं प्रकाशित होती हैं।

फिजी

फिजी में हिन्दी का प्रवेश 1879 में हुआ जब भारतीय मजदूर फिजी में गन्ने के खेतों में काम करने के लिए लाए गए थे। जो मजदूर फिजी में लाए गए वे अधिकतर पूर्वी उत्तरप्रदेश और बिहार के थे। मद्रास दक्षिण भारत के अनेक प्रदेशों से और पंजाब और गुजरात से

कुछ लोग आए। लेकिन हिन्दीभाषी लोगों की संख्या अधिक थी। ये लोग आपस मे विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक ऐसी भाषा का प्रयोग करने लगे जो हिन्दुस्तानी की एक सामान्य शैली के निकट थी। इनके बीच में रामलीला और कृष्णलीला का खूब प्रचार था। रामायण-मंडलियों और भजन-मंडलियों की भाषा हिन्दी ही थी। प्रथम भारतीय पाठशाला 1926 मे खुली। इसके बाद मे कई पाठशालाएं खोली गई जिनमें हिन्दी का पठन-पाठन नियमित रूप से हो गया। आगे चलकर शिक्षा विभाग ने भी हिन्दी को पाठ्यक्रम का एक विषय माना। फिजी जूनियर और सीनियर कैंब्रिज परीक्षा तक हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था की गई। अब फिजी सरकार ने हिन्दी को प्रमुख भाषा और द्वितीय भाषा के रूप में पढाने की व्यवस्था की है।

अब फिजी मे हिन्दी की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। हिन्दी में प्रकाशित पत्रिकाओं मे 'फिजी समाचार', 'शान्ति दूत', 'जागृति', 'जयफिजी' और 'सन्देश' प्रमुख हैं। इन पत्रों ने हिन्दी मे स्वतंत्र लेखन को काफी प्रोत्साहन दिया है। हिन्दी को प्रोत्साहन देने में फिजी रेडियो का भी योगदान महत्वपूर्ण है। फिजी रेडियो से हिन्दी के भजन और फिल्मी गाने प्रसारित होते हैं, साथ ही हिन्दी रूपक, वार्ताएं, कविताएं तथा कहानियां भी प्रसारित की जाती हैं। फिजी रेडियो और कुछ स्थानीय पत्र साहित्यिक प्रतियोगिताएं भी आयोजित करते हैं। इससे हिन्दी के नये लेखकों को काफी प्रोत्साहन मिलता है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार को बढावा देने के लिए, रामायण-मंडलियों, सनातन धर्म सभा जैसी पारस्परिक संस्थाओं के अलावा, पिछले वर्षों से कई स्वैच्छिक संस्थाएं अपना योगदान दे रही हैं। महापरिषद् हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक योजनाएं और कार्यक्रम संचालित करती है। उसके पास हिन्दी की पुस्तकों का एक अच्छा पुस्तकालय और वाचनालय है। इसमें अधिकांश पुस्तकें भारत सरकार की ओर से भेंट की गई हैं। परिषद् बड़े पैमाने पर हिन्दी के पठन-पाठन और प्रकाशन के कार्यक्रम को भी हाथ मे लेने का विचार कर रही है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार और लेखन को बढावा देने के लिए और हिन्दी के लेखकों को संगठित करने के उद्देश्य से अभी गत वर्ष फिजी मे हिन्दी पत्रकार संघ की स्थापना हुई है। इसके मंच से नवोदित लेखकों और कवियों की रचनाओं को प्रकाश में लाया जा रहा है।

जब से फिजी स्वतन्त्र हुआ है, यहां हिन्दी को उचित महत्त्व मिलने लगा है। स्वतन्त्र फिजी के संविधान में हिन्दी (हिन्दुस्तानी) को मान्यता प्राप्त है। संविधान की धारा 56 के अनुसार संसद की राजभाषा अंग्रेजी है परन्तु संसद के किसी भी सदन का सदस्य सदन में फिजियन या हिन्दुस्तानी मे बोल सकता है। इसी प्रकार जिन सरकारी विभागों का सीधा सम्बन्ध जनता से है, उनमे भी

हिन्दी का प्रयोग होता है। ऐसे विभागों में हिन्दी के टाइपराइटरों का भी प्रयोग होता है। आम जनता के लिए प्रसारित की जाने वाली प्रेस विज्ञप्तियां आम तौर पर तीनों भाषाओं (अंग्रेजी, काईवीती और हिन्दुस्तानी) में होती हैं। सार्वजनिक स्थानों पर सामान्य जानकारी देने के लिए एकसाथ तीनों भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार सड़कों पर भी साइन बोर्ड तीनों भाषाओं में मिलते हैं। फिजी में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में वहां के भारतीय हाई कमीशन का योगदान भी उल्लेखनीय रहा है। 1948 में अपनी स्थापना से लेकर अब तक हाई कमीशन इस दिशा में प्रयत्नशील रहा है। हाई कमीशन हिन्दी के पठन-पाठन को भी बढ़ावा देता है। हाई कमीशन के जरिये प्रतिवर्ष भारत में हिन्दी पढ़ने के लिए कई छात्र भेजे जाते हैं और भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा संचालित पत्राचार पाठ्यक्रम को भी यहां बढ़ावा दिया गया है।

बर्मा

रंगून स्थित ब्राह्मण सभा का ऊंचा भवन 'ब्रह्मनिकेतन' बर्मा के हिन्दी-प्रसार के इतिहास का साक्षी है। इस संस्था के द्वारा पंडित हरिवदन शर्मा ने हिन्दी का आन्दोलन चलाया और फलस्वरूप अंग्रेजों के रेलवे प्लेटफार्मों पर भी हिन्दी को स्थान देना पड़ा। इन्होंने अनेक हिन्दी स्कूल खुलवाए और हिन्दी अध्यापकों और उनके प्रशिक्षण केन्द्रों की व्यवस्था भी की। डा० ओमप्रकाशजी और श्री सत्यनारायणजी गोयन्का ने भी हिन्दी के लिए पर्याप्त श्रम किया। ब्रह्म-देशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना के पश्चात् हिन्दी के प्रचार में तीव्र गति आई। 1935 से बर्मा में 'प्राचीप्रकाश' नामक एक दैनिक पत्र निकला करता था, जो बाद में बन्द हो गया। सम्मेलन तथा वर्धा की परीक्षाओं के केन्द्र यहां पर सफलतापूर्वक चलते हैं। यहां राहुल सांकृत्यायन, टैगोर, प्रेमचन्द आदि लेखकों की उत्कृष्ट रचनाओं का बर्मी भाषा में अनुवाद होता रहता है
रंगून विश्वविद्यालय में हिन्दी-शिक्षण की उत्तम व्यवस्था [illegible] के स
जिलों में हिन्दी पढ़ाने वाले स्कूल हैं। यहां हिन्दी [illegible]
हिन्दी प्रचार सभा तथा महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार [illegible]
केन्द्र हैं जिनमें सैकड़ों विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं। [illegible]
तथा गुजरातियों के स्कूलों में भी हिन्दी पढ़ाने की [illegible]
मिशन, मारवाड़ी तथा आर्यसमाज के हिन्दी पु[illegible]

दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका के तट पर भारतीयों का [illegible]

हुआ। ये भारतवासी यहां पर गन्ने की खेती करने के लिए बुलाए गए थे। स्वभावत: ये ग्रामवासी और अशिक्षित थे। इन भारतीयों मे करीब एक-तिहाई संख्या हिन्दीभाषियों की थी। इनमें हिन्दी शिक्षा का कार्य 40-50 वर्षों के बाद शुरू हुआ। प्रारम्भिक दिनों में ब्याह-शादियों के समय और धार्मिक उत्सवों पर हिन्दी भजनों और संगीत की धूम मच जाती थी। हिन्दी का प्रचार-कार्य सर्वप्रथम आर्यसमाज के प्रसिद्ध प्रचारक स्वामी शंकरानन्दजी के द्वारा हुआ। यहां उनका आगमन सन् 1908 में हुआ। उनसे प्रेरणा पाकर नाताल प्रान्त मे हिन्दी की प्राथमिक पाठशालाए चालू हुई।

दक्षिण अफ्रीका मे हिन्दी की जड़ जमाने वाले स्वामी भवानीदयाल संन्यासी हैं। प्रारम्भ से ही श्री भवानीदयालजी ने सारे नाताल में हिन्दी-प्रचार का आन्दोलन चालू कर दिया। हिन्दी के कार्य को गति देने के लिए भवानीदयाल जी ने सन् 1916 मे सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन लेडी स्मिथ नगर में बुलाया। भवानीदयालजी के प्रशस्त कार्यों में 'हिन्दी' नामक साप्ताहिक का प्रकाशन भी रहा है।

दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी-प्रचार का कार्य करने में सबसे प्रधान स्थान आर्यसमाज की संस्थाओ का रहा है। इस सदी के प्रारम्भिक 40 वर्षों मे हिन्दी-प्रचार करने वाली 80 प्रतिशत संस्थाएं आर्यसमाज की रही हैं। पंडित नरदेव वेदालंकार ने यहां आकर हिन्दी-प्रचार की स्थिति का अध्ययन किया और आर्य प्रतिनिधि सभा के अन्तर्गत एक हिन्दी सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन मे पंडितजी के प्रस्ताव के अनुसार 25 अप्रैल, 1948 को हिन्दी शिक्षा संघ की स्थापना की गई। इस संस्था की स्थापना के पीछे निम्नलिखित उद्देश्य थे, हिन्दी भाषा का व्यापक प्रचार, हिन्दी पाठशालाओं का संगठन और पाठशालाओ के लिए एक प्रकार की पाठ्य-प्रणाली और परीक्षा-पद्धति प्रस्तुत करना। संघ की स्थापना के बाद हिन्दी-प्रचार-कार्य की गति बहुत बढ गई। इन विगत वर्षों में संघ ने अनेक विध प्रवृत्तियो को अपनाया और अनेक प्रकार से हिन्दी-आन्दोलन को बढाया है।

हिन्दी का प्रचार करने वाली प्राय. सभी संस्थाए संघ से संबद्ध हैं। संघ में इन 25 वर्षों मे 100 से अधिक हिन्दी की संस्थाएं स्थापित हुई हैं। संघ का सम्बन्ध प्रारम्भ से ही राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा से रहा है। प्रारम्भिक वर्षों में संघ को इस समिति से आर्थिक सहायता भी मिलती रही है। हिन्दी की उच्च पढ़ाई के लिए वर्धा समिति के पाठ्यक्रम के अनुसार विभिन्न नगरों मे वर्ग चलाए जाते हैं। इनमें नवयुवक भाई-बहन हिन्दी की शिक्षा प्राप्त करने आते हैं।

हिन्दी भाषा को जनता में और विद्यार्थियों में लोकप्रिय बनाने के लिए तथा

उसे एक जीवित-जाग्रत् व्यावहारिक भाषा बनाने के लिए संघ ने हिन्दी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया है, जो भारतीय जनता में अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं। इनके द्वारा वर्ष मे दो बार सप्ताह-भर के लिए हिन्दी का मेला-सा लग जाता है और सहस्रों नर-नारी इसमें रसपूर्वक भाग लेते हैं। संघ के हिन्दी प्रचार का यह प्रभाव हुआ है कि यहां की सरकार ने हिन्दी को अब शिक्षा-विभाग के स्तर पर स्वीकृत कर लिया है। हिन्दी-क्षेत्र मे पच्चीस वर्षों तक सफलतापूर्वक कार्य करने के बाद हिन्दी शिक्षा संघ इस वर्ष अपनी रजत जयन्ती मना चुका है। इस वर्ष के लिए अनेक योजनाएं बनाई गई हैं जिससे हिन्दी-प्रचार को पूर्ण वेग मिले।

ट्रिनीडाड

1845 से 1917 के बीच जो लगभग डेढ़ लाख भारतीय प्रवासी ट्रिनीडाड आए, उनमें सबसे ज्यादा लोग पूर्वी उत्तरप्रदेश और पश्चिमी बिहार के थे जिनकी मातृभाषा भोजपुरी थी। कुछ मिथिला के मैथिलीभाषी, पटना-गया के मगहीभाषी, उत्तरप्रदेश के ब्रज क्षेत्र के ब्रजभाषी और मद्रास के तमिल, आन्ध्रप्रदेश के तेलुगु, केरल के मलयालम और पंजाब के पंजाबी तथा दक्षिण बिहार और मध्यप्रदेश के आदिवासी। ये अपनी 'मुण्डारी' और दूसरी कई भाषाएं भी ले आए, लेकिन कुछ ही दिनों में पुरानी हिन्दी या उसकी शाखाओं के आगे सभी अन्य भाषाएं और बोलियां तिरोहित हो गईं। इसलिए आज भी ऐसे लोग ट्रिनीडाड में मिल जाते हैं जिनकी मातृभाषा तमिल या तेलुगु है, लेकिन वे पुरानी हिन्दी 'पवड़ा' बोलते हैं। 19वीं सदी से ही हिन्दी दुभाषिये ट्रिनीडाड सरकार द्वारा रखे जाते थे। ईसाई पादरी लोग हिन्दी पुस्तकों के द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार करते थे।

20वीं सदी के द्वितीय और तृतीय दशक में हिन्दी की पढ़ाई स्कूलों में शुरू कराने का प्रयास होने लगा, लेकिन हिन्दी को शिक्षा का माध्यम तो किसी भी स्कूल में नहीं बनाया जा सकता था। 1928 में भारत के हिन्दू प्रचारक प० जैमिनी ने भारतीयों को हिन्दी बनाए रखने की सलाह दी, 1929 में गांधीजी के अनन्य सहयोगी देशबन्धु चार्ल्स एण्ड्रूज ने तो ट्रिनीडाड के भारतीय मूल के लोगों के बीच हिन्दी में भी भाषण किया और प्राथमिक पाठशालाओं में हिन्दी और उर्दू की पढ़ाई शुरू करने का सुझाव दिया।

1935 में ट्रिनीडाड की सनातन धर्म एसोसिएशन ने हिन्दी की पढ़ाई शुरू करने का आन्दोलन चलाया। कुछ स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई शुरू हुई। 1952 से सनातन धर्म महासभा के प्रधान स्व० भदेन मगन महाराज के प्रयास से कोई 42 ऐसे स्कूल खोले गए जहां हिन्दी की पढ़ाई का प्रयास हुआ। ऐसे प्रयास कबीर-

पंथ और शिवनारायण-पंथ के 7 या 8 स्कूलों द्वारा भी हुए हैं। विश्वविद्यालय के सेंट अगस्टिन केन्द्र में भी कभी-कभी विद्यार्थियों और व्याख्याताओं द्वारा हिन्दी की पढ़ाई का प्रयास हुआ है। हिन्दी की पढ़ाई के लिए सबसे ज़ोरदार प्रयास *गत छः-सात वर्षों में भारतीय विचार संस्थान द्वारा हुए हैं।* लेकिन अभी तक ट्रिनीडाड में हिन्दी की ऐसी स्थिति नहीं है जैसी सूरीनाम में है जहां शहरों में भी हिन्दीभाषी नागरिक देखे जा सकते हैं।

जापान

जापान में हिन्दी के प्रवेश का इतिहास 1911 से प्रारम्भ होता है। इस वर्ष जापान में 'तोक्यो स्कूल आफ फारेन लैंग्वेज' की स्थापना की गई थी। इसमें हिन्दुस्तानी की पढ़ाई होती थी। इसमें देवीलाल सिंह, के० आर० सावरकर, हैनरी ड्रूमोण्ड और हसन साहब अध्यापन करते थे। द्वितीय महायुद्ध के समय हिन्दुस्तानी विभाग 'भारतीय भाषा विभाग' बन गया। 1945 में क्यूमा दोई नामक एक भूतपूर्व सैनिक जो इसी स्कूल के स्नातक थे, की सेवा प्राप्त करके इस स्कूल में हिन्दी का स्वतन्त्र विभाग खोल दिया गया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय दूतावास की सहायता से श्री दोई ने हिन्दी के अध्ययन की अधिक उत्तम व्यवस्थाएं कीं। श्रीमती रत्नम्, कृपालसिंह, सखावत, श्रीमती खन्ना आदि के सहयोग से हिन्दी अध्यापन कार्य प्रगति करता रहा। 'तोक्यो स्कूल आफ फारेन लैंग्वेज' अब 'तोक्यो यूनिवर्सिटी आफ फारेन स्टडीज़' बन चुका है। प्रो० दोई ने 1953 से 1955 तक हिन्दी भाषा व साहित्य का इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। प्रो० दोई ने एक हिन्दी-जापानी और जापानी-हिन्दी कोश तैयार किया है। नागरी लिपि के माध्यम से जापानी सिखाने के उद्देश्य से प्रो० दोई ने एक पुस्तक लिखी है। बाद में पश्चिमी जापान के ओसाका नगर के 'ओसाका यूनिवर्सिटी आफ फारेन स्टडीज़' में भी हिन्दी विभाग की स्थापना हुई। इसमें विभिन्न पुस्तकों के अंश टेप करके भी सुनवाए जाते हैं। तोक्यो के हिन्दी विभाग में प्रो० दोई के अतिरिक्त श्रीमती तोशिओतानाका और कुमारी काजुको यामादा तथा श्री शान्ति जावेरी अध्यापन-कार्य करते हैं।

इसके अतिरिक्त तोक्यो और क्योतो विश्वविद्यालय में हिन्दी ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। एशियन-अफ्रीकन लिंग्विस्टिक इंस्टीट्यूट में कुछ विद्यार्थी हिन्दी पढ़ते हैं। एशियन इकनोमिक इंस्टीट्यूट द्वारा ग्रीष्म ऋतु में आयोजित हिन्दी पाठ्यक्रम में भी अनेक छात्र भाग लेते हैं। अनेक जापानी विद्यार्थी भारत आकर हिन्दी का अध्ययन करते हैं। क्योटो नगर में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के केन्द्र में हिन्दी परीक्षाओं का आयोजन होता है। गांधी इंस्टीट्यूट भी हिन्दी-प्रचार का कार्य करता है। जापान में हिन्दी इतनी लोक-

प्रिय है कि हिन्दी स्नातक को तुरन्त नौकरी मिल जाती है। जापान प्रसारण निगम का विदेशी प्रसारण विभाग हिन्दी के कार्यक्रम को 30 मिनट का समय देता है।

प्रेमचन्द का गोदान, पंत का स्वर्णकिरण आदि जापानी में अनूदित हो चुके हैं। अनेक हिन्दी लेखकों की कहानियां जापानी पत्र-पत्रिकाओं में अनूदित होकर छपती हैं।

फ्रांस

आधुनिक भाषाओं के अध्ययन की प्रगति के लिए 1795 ई० में पेरिस में आधुनिक विश्व पूर्वी भाषाओं का संस्थान स्थापित हुआ। फ्रेंच विद्वान गार्सां द तासी ने हिन्दुस्तानी पढ़ी और बहुत-सी रचनाएं प्रकाशित कीं। उनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक हिन्दुई साहित्य का इतिहास 1953 ई० में इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। इन दिनों हिन्दी शिक्षण की प्रवृत्ति साहित्य की ओर थी। प्रमुख स्थान पर व्याकरण का शिक्षण और अनुवाद करना सीखना जरूरी था। इसी सिलसिले में गार्सां द तासी और उनके शिष्यों ने हिन्दुस्तानी खड़ी बोली और ब्रज से फ्रांसीसी में कई भारतीय रचनाओं का अनुवाद किया—बागोबहार, प्रेम सागर, राजनीति आदि। पचास साल तक गार्सां द तासी पढ़ाते रहे। उनके देहान्त के बाद 1878 में हिन्दी-शिक्षण की प्रमुखता पेरिस के संस्थान में कुछ कम हो गई। 1921 ई० में श्री ज्युल ब्लाक प्रोफेसर नियुक्त हुए। 1964 में सोरबोन (पेरिस विश्वविद्यालय) में हिन्दी साहित्य में अनुसंधान करने वालों को पढ़ाने के लिए श्रीमती डा० वौदवील ने एक मध्यकालीन हिन्दी का पाठ्यक्रम शुरू किया। इन्होंने सूरसागर, तुलसीदास कृत रामचरितमानस, कबीरदास की रचनाएं, जायसी का पद्मावत, आदि ग्रन्थों की व्याख्या की।

1968 ई० में राष्ट्रीय उथल-पुथल के पश्चात् फ्रांसीसी शिक्षा पद्धति में परि-वर्तन हुए और विश्वविद्यालय तथा उच्चतर शिक्षण संबंधी संविधान बदले। परिणाम यह हुआ कि 1975 ई० में स्थापित पेरिस का विश्व की आधुनि[illegible] भाषाओं का संस्थान 'एस्तित्यु नस्योनल दे लांग ए सीविलीजास्यों [illegible] कहलाया। इस समय इस संस्थान में भारतीय भाषा के शिक्षण विभाग हैं—हिन्दी, उर्दू, तमिल और बंगला विभाग। हिन्दी [illegible] भाषा है, इसलिए इस विभाग में हिन्दी विद्यार्थियों की संख्या [illegible] आजकल आधुनिक भाषा विज्ञान की मदद लेकर हिन्दी सिखा[illegible] करने का प्रयत्न हो रहा है। कम समय के अन्दर विद्यार्थियों [illegible] पहुंचा देना है जिससे कि वे बोलचाल की हिन्दी समझें [illegible] हिन्दी साहित्य और समाचार-पत्र पढ़ सकें।

सोवियत रूस

सोवियत संघ मे भारतीय लेखकों की रचनाओं के अनुवाद और प्रकाशन के साथ-साथ भारतीय साहित्य, खास तौर पर हिन्दी साहित्य के अनुशीलन के क्षेत्र मे भी व्यापक कार्य हो रहा है। सोवियत पाठक हिन्दी के सभी प्रमुख साहित्यकारों से सुपरिचित हैं। कबीर, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, प्रेमचन्द, यशपाल, जैनेन्द्रकुमार, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, इलाचन्द्र जोशी, जयशंकरप्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, हरिवंशराय बच्चन, रामधारीसिंह दिनकर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, अज्ञेय, धर्मवीर भारती जैसे हिन्दी साहित्यकार सोवियत रूस में बहुत ही लोकप्रिय हैं। इनकी रचनाओं का अनुवाद भी हो चुका है। बेरैन्निकोव ने तुलसी-रामायण का अनुवाद अत्यन्त सावधानी के साथ किया है, ताकि मूल दोहा-चौपाई तक सुरक्षित रहे। उनकी पत्नी ने कामताप्रसाद गुरु के हिन्दी व्याकरण का अनुवाद किया है। अन्य हिन्दी पद तथा गद्य के अनुवादकों मे वा० बालिन, वी० चेरनीशोव, वी० क्रैसकोविन, एन० राबिनविच आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री इ० चेलीशेव हिन्दी साहित्य के प्रमुख अध्येता तथा सफल अनुवादक हैं।

विगत 20 वर्षों से सोवियत रूस का पर्याप्त साहित्य हिन्दी मे प्रकाशित होकर भारत मे वितरित हो रहा है। उपन्यास, काव्य, बाल-साहित्य, प्रौढ़-साहित्य, पत्र-पत्रिकाएं, नेताओं के भाषण, राजनैतिक गतिविधियां, सोवियत दृष्टिकोण, वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति आदि भिन्न-भिन्न रूपों मे सोवियत विचार हिन्दी मे प्रस्तुत किए जाते है। सोवियत भाषाशास्त्री व्याकरण का वैज्ञानिक विवरण, भाषा का इतिहास और भारतीय भाषाओ का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। भाषा और समाज की जातीय समस्या के महत्वपूर्ण पहलुओं, भाषागत विन्यास, भाषाओं और बोलियों की अन्योन्य क्रिया का भी अध्ययन किया गया है। मूल भारतीय भाषाओं की पाठ्य-पुस्तकों मे भारतीय भाषा विज्ञान का स्तर उच्चतर है जो महत्त्वपूर्ण है। इससे भारत विद्या के विद्यार्थियों के भाषा-वैज्ञानिक प्रशिक्षण का स्तर भी उच्चतर है। हिन्दी साहित्य की पाठ्य-पुस्तक के रचयिता एस० दिमशित्ज, वी० गोर्युनोव और ओ० ओल्सिफेरोव को नेहरू पुरस्कार मिल चुका है।

सोवियत रूस के विश्वविद्यालयो मे हिन्दी का अध्ययन करने वालों की संख्या हजारों तक पहुंच गई है। अनेक स्थानो पर तो माध्यमिक स्तर पर भी हिन्दी-शिक्षण दिया जाता है। लेनिनग्राड के एक हिन्दी स्कूल मे प्राथमिक कक्षा से ही सभी विषय हिन्दी-माध्यम के द्वारा पढ़ाए जाते हैं। आठवीं कक्षा में प्रेमचन्द, यशपाल, अश्क, विष्णु प्रभाकर आदि की कहानियां तथा पन्त, बच्चन,

दिनकर आदि को कविताएं पढ़ाई जाती हैं। ताशकन्द, मास्को, कीएव आदि मे भी ऐसे स्कूल है। नवीं, दसवीं और ग्यारहवी कक्षाओं मे हिन्दी बातचीत तथा हिन्दी साहित्य के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है। बच्चों के लिए भी हिन्दी पुस्तकें तैयार करवाई गई हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की राष्ट्रभाषा का जितना सम्मान सोवियत संघ ने किया है उतना किसी अन्य देश ने नहीं। डा० दीमशित्स कृत हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा किसी भी भारतीय हिन्दी व्याकरण की पुस्तक से कम महत्त्व की नहीं है। आंकडों के अनुसार छ.-सात वर्ष पूर्व तक सोवियत संघ की 34 भाषाओं मे 67 भारतीय लेखकों की 460 पुस्तकों की एक करोड़ 90 लाख प्रतियों का वितरण हो चुका था।

सोवियत रूस में लेनिनग्राड विश्वविद्यालय, ताशकन्द-विश्वविद्यालय, इंस्टीट्यूट आफ पीपुल्स आफ एशिया, एकेडमी आफ साइन्सेस, मास्को तथा लुमुम्बा मैत्री विश्वविद्यालय मास्को मे हिन्दी अध्ययन की विशेष व्यवस्था है। अनेक अध्यापकों को भारत सरकार भेजती है। वहां के लोगों मे हिन्दी के गीत बहुत लोकप्रिय हैं। हिन्दी सिनेमाओं के प्रति भी लोगों की बहुत रुचि है।

अमेरिका

अमेरिका में हिन्दी के अध्ययन की प्रवृत्ति प्रधानतः द्वितीय महायुद्ध के बाद दिखाई पड़ती है। इससे पूर्व हिन्दी के अध्ययन में जिन अमेरिकियो ने दिलचस्पी दिखाई उनमे श्री सैम्युल केलाग का नाम स्मरणीय है। वह प्रथम अमेरिकी थे जिन्होंने दीर्घकाल तक अध्ययन करने के उपरान्त 1875 मे हिन्दी भाषा का व्याकरण तैयार किया। इसका नाम था—'ए ग्रामर आफ हिन्दी लैंग्वेज'। इस पुस्तक में उन्होंने हिन्दी के अलावा खड़ी बोली, मगधी, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, कुमांयुनी और अवधी बोलियों पर भी विचार किया। मध्यकाल में रचित हिन्दी साहित्य, विशेष रूप से तुलसीकृत रामायण के समय प्रयुक्त होने वाले व्याकरण-नियमों पर भी उन्होंने इस पुस्तक मे प्रकाश डाला।

1947 मे भारत के स्वतंत्र होने के बाद से ही अमेरिकी विश्वविद्यालयों में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाने लगा। अमेरिकी सरकार के अलावा राकफेलर प्रतिष्ठान, फोर्ड प्रतिष्ठान तथा कार्नेगी प्रतिष्ठान जैसी परोपकारी संस्थाओ ने भी इस कार्य मे अमेरिकी विश्वविद्यालयो की भरसक सहायता की। सर्वप्रथम 1947 में पेन्सलवेनिया विश्वविद्यालय मे हिंदी के अध्ययन की व्यवस्था की गई। इसके बाद अमेरिका के अन्य विश्वविद्यालयो ने भी हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ के अध्यापन की ओर ध्यान दिया। इस समय लगभग 30-35 विश्वविद्यालयों मे हिन्दी पढाई जा रही है जिनमें मुख्य हैं—अमेरिकन यूनिवर्सिटी, वाशिंगटन (डी० सी०), एरिजोना यूनिवर्सिटी,

हवाई यूनिवर्सिटी, कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, शिकागो यूनिवर्सिटी, कार्नेल यूनिवर्सिटी, ड्यूक यूनिवर्सिटी, जानहापकिन्स यूनिवर्सिटी, मिशिगन यूनिवर्सिटी, मिनेसोटा यूनिवर्सिटी, सिराक्यूज यूनिवर्सिटी, टैक्सास यूनिवर्सिटी, विस्कौंसिन यूनिवर्सिटी आदि। यहां के कई विश्वविद्यालयों और कालेजों में हिन्दी के अध्ययन के लिए व्यापक पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। वे भारत से हिन्दी में विशेष योग्यता रखने वाले विद्वानों को भी हिन्दी सम्बन्धी विशेष अध्ययन-क्रमों का संचालन करने के लिए निमंत्रित करते हैं। भारत के अनेक प्रसिद्ध विद्वान, जिनमें साहित्यकार और लेखक भी हैं, इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अमेरिकी कालेजों मे अध्यापन कर चुके हैं।

छात्रों के हिन्दी-ज्ञान मे वृद्धि करने के लिए अनेक अमेरिकी विश्वविद्यालय छात्रों को विशेष छात्रवृत्तियां देकर भारत भी भेजते हैं ताकि वे हिन्दीभाषी लोगों तथा विद्वानों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर अपने हिन्दी-ज्ञान में वृद्धि कर सकें।

भारत में प्रकाशित होनेवाला हिन्दी साहित्य भी अमेरिकी शिक्षण-संस्थाओं द्वारा नियमित रूप से मंगाया जाता है ताकि हिन्दी का अध्ययन करने वाले अमेरिकी छात्र-छात्राएं तथा हिन्दी के विद्वान हिन्दी साहित्य में उभरने वाली नवीन प्रवृत्तियों और विचारधाराओं से जानकारी प्राप्त करते रहें। अमेरिकी विश्वविद्यालयों को इस प्रकार का साहित्य सुलभ करने में अमेरिकी कांग्रेस पुस्तकालय की भारत-स्थित शाखा प्रमुख भूमिका अदा कर रही है। अमेरिका के सभी प्रमुख पुस्तकालयों मे हिन्दीभाषा में प्रकाशित होने वाले प्रमुख पत्र—'नव-भारत टाइम्स', 'हिन्दुस्तान', 'आज', 'आर्यावर्त' भी नियमित रूप से मंगाए जाते हैं। ऐसे ही अन्य कार्यक्रम भी जिनसे हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन में सहायता मिल सके, अमेरिकी कालेजों और विश्वविद्यालयों में चलाए जा रहे हैं।

ब्रिटेन

1921 मे ब्रिटेन मे भारतीय भाषाओं और साहित्य के अध्ययन के लिए 'इंस्टीट्यूट आफ ओरिएण्टल स्टडीज' लन्दन, की स्थापना हुई। 1938 में इस संस्था का नाम 'लन्दन स्कूल आफ ओरिएण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज' कर दिया। इसका उद्देश्य भारत में पश्चिमी शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान का प्रसार करने के लिए पाश्चात्य लोगों को भारतीय इतिहास व साहित्य का ज्ञान देना मात्र था। लन्दन स्कूल मे हिन्दी-शिक्षण 'डिपार्टमेंट आफ दि लेंग्वेज एण्ड कल्चर्स आफ इंडिया, पाकिस्तान एण्ड सिलोन' के एक संयुक्त विभाग के अन्तर्गत होता है।

वास्तविक रूप से हिन्दी के अध्ययन का विस्तार कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापन की व्यवस्था के प्रारंभ होने पर हुआ। यहां पर हिन्दी-शिक्षण

ओरिएण्टल फैकल्टी के क्षेत्र में होता है। यहां भी हिन्दी का त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम बी० एड० परीक्षा के लिए रखा गया है। स्लाइड्स तथा टेप के सहारे छात्रों की उच्चारण सम्बन्धी समस्याएं सुलझाई जाती हैं। उपर्युक्त दोनों स्थानों पर प्रथम वर्ष में व्याकरण और भाषा के मौखिक रूप पर बल दिया जाता है। इसके पाठ्यक्रम में प्रेमचन्द, 'अश्क', अज्ञेय आदि की कहानियां होती हैं। बाद के वर्षों के पाठ्यक्रम मे मध्यकालीन काव्य, गद्य, निबन्ध आदि रखे जाते हैं।

हिन्दी में शोधकार्य को भी यहां महत्त्व दिया जाता है। एम० ए० के छात्रों के लिए शोध-प्रबन्ध आवश्यक होता है। ब्रिटिश म्यूज़ियम, इंडिया आफिस लाइब्रेरी में मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की पाण्डुलिपियों का संग्रह है। लन्दन में हिन्दी-प्रसार परिषद् नामक एक संस्था स्थापित है जो भारत की राष्ट्रभाषा के प्रचार में संलग्न है। यह संस्था हिन्दी की कक्षाएं नियमित रूप से चलाती है तथा साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित करती है। 'प्रवासिनी' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी इस संस्था के द्वारा होता है।

चेकोस्लोवाकिया

चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में विदेशी भाषाओं के विद्यालय में तथा चार्ल्स विश्वविद्यालय मे हिन्दी पढ़ाई जाती है। सरकारी कर्मचारी, वाणिज्य अधिकारी, श्रमिक, इंजीनियर आदि विभिन्न वर्गों के लोग सप्ताह में दो बार शाम को विदेशी भाषाओं के विद्यालय में हिन्दी पढ़ते हैं। यहां पर पढ़ाई जाने वाली हिन्दी संस्कृतनिष्ठ होती है। हिन्दी छात्र को संस्कृत के व्याकरण व इतिहास के साथ-साथ किसी एक आधुनिक भारतीय भाषा का कामचलाऊ ज्ञान आवश्यक होता है। चेक-हिन्दी शब्दकोश भी बन गया है। चार्ल्स विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हिन्दी पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। प्रो० ओडोलोन स्मेकल विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाते हैं। उन्होंने अनेक हिन्दी कहानियों एवं कविताओं का चेक भाषा में अनुवाद भी किया है। 'गोदान' का अनुवाद भी चेक भाषा में प्रस्तुत किया है। विश्वविद्यालय में प्रतिवर्ष लगभग पन्द्रह छात्र हिन्दी पढ़ते हैं। यहां सामाजिक भाषा-शास्त्र के क्षेत्र मे राष्ट्रीय एकता और हिन्दी की भूमिका के प्रश्न को लेकर चेकोस्लोवाक विद्वान शोध-कार्य भी कर रहे हैं।

पश्चिम जर्मनी और पूर्वी जर्मनी

पश्चिम जर्मनी के स्टुटगार्ट के भारत भवन में हिन्दी की कक्षाएं चलाई जाती हैं। अमस्टरडम विश्वविद्यालय, बर्लिन विश्वविद्यालय, विल्हेल्स विश्वविद्यालय बोन, जोहान-वोलफगांग गोएटे विश्वविद्यालय, जार्ज आगस्ट विश्वविद्यालय, हेम्बर्ग विश्वविद्यालय, कौल्स विश्वविद्यालय, लुडविग विश्वविद्यालय

आदि विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था है। हैडेलबर्ग विश्वविद्यालय में डा० लोथार लुत्से हिन्दी पढ़ाते हैं।

पूर्वी जर्मनी में बर्लिन के हुम्बोल्ट विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था है। लाइपजिग विश्वविद्यालय में श्रीमती मारगाट गात्सलाफ हिन्दी पढ़ाती हैं। बर्लिन की 'इंस्टीट्यूट आफ इंडियन स्टडीज' में डा० हेलमुट नेस्पिताल हिन्दी पढ़ाते हैं।

अन्य देशों में हिन्दी

उपर्युक्त देशों के अतिरिक्त श्रीलंका, हालैण्ड, पोलैंड, फिलीपाइन, वियतनाम, डेनमार्क, चीन, इजरायल, हांगकांग, दक्षिण रोडेशिया, सूडान, आस्ट्रेलिया, वेस्टइंडीज, गुयाना, जमैका आदि राष्ट्रों में भी हिन्दी पठन-पाठन की व्यवस्था है। श्रीलंका के अनेक नगरों में राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, वर्धा के परीक्षा-केन्द्र सफलतापूर्वक चल रहे हैं। यहां के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में हिन्दी पीठ स्थापित है, जिसके प्रथम अध्यक्ष श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन थे। लंका विश्वविद्यालय में भी हिन्दी विभाग है। हालैण्ड के कर्न इंस्टीट्यूट में हिन्दी-अध्यापन की व्यवस्था है। प्रो० ग्रोगेल ने प्रेमचन्द की 'सप्तसरोज' का अनुवाद डच भाषा में प्रस्तुत किया है। इजरायल में जेरूसलम के हिब्रू विश्वविद्यालय में प्रो० सी० रोबिन की देखरेख में हिन्दी का वैज्ञानिक तथा साहित्यिक अध्ययन होता है। पोलैण्ड में डा० तातियाना रुतकोवस्का के नेतृत्व में हिन्दी का अध्ययन हो रहा है। इसी तरह इंडोनेशिया, थाइलेंड, फारस, अफगानिस्तान आदि विभिन्न देशों में स्वतंत्र संगठनों द्वारा हिन्दी-शिक्षण के केन्द्र चलाए जाते हैं। पड़ोसी राष्ट्र पाकिस्तान में भी हिन्दी की पढ़ाई होती है।

इस तरह विश्व के विविध राष्ट्रों में हिन्दी के पठन-पाठन की व्यवस्था हो गई है। भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी पढ़ने की रुचि इन राष्ट्रों के नागरिकों को भी है। इसमें संदेह नहीं है कि अब विश्व के राष्ट्रों में भारतीय संस्कृति और हिन्दी की जानकारी प्राप्त करने के लिए एक नवीन जागृति पैदा हो गई है और इस प्रकार हिन्दी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर आरूढ़ हो गई है। आवश्यकता इस बात की है कि विविध राष्ट्रों में स्थित हमारे दूतावास अंग्रेजी के मोह को छोड़कर उन राष्ट्रों में भारतीय संस्कृति और हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए सक्रिय सहयोग दें। वास्तव में हमारे दूतावासों में नियुक्त अधिकारियों के अंग्रेजी-मोह के कारण अनेक राष्ट्रों में भारत की संस्कृति और राजभाषा हिन्दी के संबंध में गलत चित्र उपस्थित किया गया है। अब इधर कुछ सालों से दूतावासों की तरफ से हिन्दी के प्रचार के लिए कुछ प्रयत्न किया जा रहा है।

विश्व के एक विशाल जनसमूह की भाषा होने के कारण हिन्दी संयुक्त

राष्ट्रसंघ की भाषा बन सकती है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा मानने के संबंध में किसी भी भाषा में जो योग्यताएं होनी चाहिए, वे सब हिन्दी में मौजूद हैं। हिन्दी किसी भी क्षेत्र में विश्व की किसी अन्य भाषा से पीछे नहीं है। बोलने-वालों की संख्या लगभग 24 करोड़ है। भारत में अन्य भारतीय भाषा-भाषी भी हिन्दी जानते हैं। भारत के अलावा मारिशस, फिजी, ट्रिनीडाड, गुयाना, सूरीनाम आदि देशों में भी, जहां भारत-मूल के व्यक्ति बसे हुए हैं, हिन्दी बोली जाती है और हिन्दी का इस्तेमाल होता है। नेपाल, भूटान और सिक्किम में भी हिन्दी समझी जाती है। भारत के सभी विश्वविद्यालयों के अलावा विश्व के लगभग 93 विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी पढ़ाई जाती है। हिन्दी की परंपरा और इतिहास काफी प्राचीन है। साहित्यिक और भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी उन्नत और विकसित भाषा है और आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी वह प्रतिष्ठित हुई है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि हिन्दी विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की राजभाषा है। इस प्रकार जनसंख्या, समृद्धि और अंतर्राष्ट्रीय संपर्क की दृष्टि से हिन्दी का स्थान विश्व की अन्य भाषाओं की तुलना मे कम महत्वपूर्ण नही है।

यद्यपि हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में मान्यता मिलने का प्रश्न सैद्धांतिक, भावनात्मक तथा तथ्यात्मक दृष्टि से काफी तर्कसंगत और उपयुक्त है, तथापि इसको इस रूप में प्रतिष्ठित कराने मे कुछ व्यावहारिक समस्याएं तथा कठि-नाइयां हैं। इसके विरुद्ध एक तर्क यह दिया जा सकता है कि हिन्दी केवल एक देश की भाषा है और संयुक्त राष्ट्रसंघ में मान्यता के लिए जो अनेक देशों का समर्थन मिलना चाहिए, वह शायद हिन्दी को नहीं मिल सकेगा। इसका उत्तर यह है कि चीनी भी केवल एक ही देश की भाषा है और यदि उसे संयुक्त राष्ट्र-संघ मे प्रवेश मिल सकता है, तो हिन्दी को क्यों नही मिलना चाहिए !

संयुक्त राष्ट्रसंघ में किसी भी और भाषा के स्वीकार किए जाने से प्रलेखन, सपादन, अनुवाद, भाषान्तरण, प्रकाशन आदि के लिए बहुत अधिक अतिरिक्त व्यय करना होगा और वर्तमान आर्थिक स्थिति में अन्य सदस्य देश, विशेषकर पश्चिमी यूरोप के देश, इसके लिए राजी नही होंगे। परन्तु इन सब दिक्कतों के होते हुए भी हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश दिलाने के लिए हमें निष्ठा-पूर्वक प्रयत्न करना होगा। कमियों या दिक्कतों से हमारे उद्देश्य की महत्ता कम नही होती और न ही हमें इससे चिंतित होने की आवश्यकता है। वैसे संयुक्त राष्ट्रसंघ की संस्थाओं में हिन्दी का प्रवेश हो चुका है। यह यूनेस्को की आधि-कारिक भाषा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषाओं में हिन्दी को भी स्थान देने के लिए निरन्तर प्रयत्न होना चाहिए।

विश्व हिन्दी सम्मेलन

हिन्दी ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद प्रचार-प्रसार और साहित्य-निर्माण आदि के क्षेत्रों मे अनेक बाधाओं के बावजूद आश्चर्यजनक प्रगति की है। शासन की भाषा के रूप मे तथा विभिन्न विषयों की शिक्षा के माध्यम के रूप में सीमित किन्तु उत्तरोत्तर प्रयोग के कारण हिन्दी मे शब्द और वाङ्मय के एक विशाल भंडार का निर्माण हुआ और उसमे समस्त विश्व के ज्ञान-विज्ञान को आत्मसात करने की क्षमता का विकास होने लगा। इसके अतिरिक्त विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र की राष्ट्रभाषा होने के कारण भी उसके प्रति अनेक देशों के विद्वानों की रुचि बढ़ी और परिणामस्वरूप विश्व के 32 राष्ट्रों मे फैले हुए लगभग 100 विश्वविद्यालयों और अध्ययन-केन्द्रों मे हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन का कार्य होने लगा। उधर स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं तथा अनेक धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा कई देशों में, विशेषकर जहां भारतीय मूल के लोग बड़ी संख्या में रहते थे, हिन्दी के प्रचार-प्रसार का काम बड़े पैमाने पर किया जा रहा था। इन सारे प्रयत्नों के फलस्वरूप हिन्दी का राष्ट्रभाषा से अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की ओर एक स्वाभाविक प्रक्रिया से विस्तार हो रहा था।

हिन्दी के इन समस्त कार्यों का मूल्यांकन करने और भविष्य के कार्य की दिशा निर्धारित करने के उद्देश्य से देश-विदेश के समस्त हिन्दी-सेवियों, विद्वानों और लेखको के सम्मेलन की आवश्यकता कुछ समय से सर्वत्र अनुभव की गई।

विश्व हिन्दी सम्मेलन के उद्देश्य के सम्बन्ध में यह लक्ष्य था कि इसके द्वारा राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ मे हिन्दी की उपलब्धियो एवं सम्भावनाओं पर विचार-विमर्श हो कि कैसे वह आज की वैश्विक परिस्थिति में, सेवा का उपयोगी साधन बन सकती है।

10 जनवरी, 1975 को प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर में सम्पन्न हुआ, जिसमें भारत के ही नही, विश्व के हिंदी विद्वान बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। बड़े पैमाने पर आयोजित इस विश्व हिन्दी सम्मेलन ने हिन्दी विद्वानों के बीच एक नवीन जागृति पैदा की। इसके आयोजन मे राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, वर्धा का बड़ा योगदान रहा। इसमें मारिशस, फिजी, रूस, प० जर्मनी, ट्रिनीडाड, अमेरिका, थाइलैंड, जापान, कनाडा, चेकोस्लोवाकिया, श्रीलंका, गुयाना, सूरीनाम आदि राष्ट्रों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। विश्व हिन्दी सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिन्दी की मान्यता के प्रस्ताव पर इन सभी विदेशी प्रतिनिधियों ने बड़े ज़ोर से हिन्दी का समर्थन किया। विश्व हिन्दी सम्मेलन ने भारत सरकार से अनुरोध किया कि हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक और कार्यचालन भाषा बनाने के लिए कदम उठाना चाहिए। विश्व हिन्दी सम्मेलन में जो महत्त्व-

पूर्ण विचार उभरकर आए वे इस प्रकार हैं :

हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक और कार्यचालन की भाषा बनाने के लिए भारत सरकार को कदम उठाने चाहिए।

लगभग सभी देश हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा मानते हैं और चाहते हैं कि भारत से बाहर जाने वाले सभी भारतीय हिन्दी में बातचीत कर सकें। दूतावासों के कर्मचारियों को विशेष रूप से हिन्दी का पर्याप्त ज्ञान अनिवार्य रूप से दिया जाना चाहिए।

भारत में अंग्रेजी का जो वर्चस्व है, उसके कारण विश्व में भ्रान्ति फैलती है कि भारत को समझने के लिए भारतीय भाषाओं का जानना आवश्यक नहीं है, पर यह भ्रांति दूर की जानी चाहिए और शिक्षा, शासन और दैनिक व्यवहार में भारतीय भाषाओं का अधिकाधिक प्रयोग होना चाहिए।

हिन्दी को अपने विकास में व्यापकता और सर्वमान्यता की दृष्टि से अन्य भाषाओं के शब्दों को सहज रूप से आत्मसात करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

विदेशियों के उपयोग के लिए, उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अच्छी पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराकर विदेशों के अध्ययन-केन्द्रों में भेजी जानी चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों में भाषा का ज्ञान देने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति और जन-जीवन की झलक भी मिलनी चाहिए।

हिन्दी के विविध पक्षों की जानकारी, शब्दों की व्युत्पत्ति, उच्चारण आदि के सम्बन्ध में प्रामाणिक सूचना उपलब्ध कराने के लिए सूचना-केन्द्र जैसी व्यवस्था होनी चाहिए। विदेश स्थित दूतावासों में भी इस प्रकार की सूचना-व्यवस्था ज़रूरी है।

प्रवासी भारतीयों का हिन्दी तथा भारत के प्रति भावनात्मक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को सांस्कृतिक आदान-प्रदान द्वारा अन्य सभी सम्भव उपायों द्वारा अधिक दृढ़ किया जाना चाहिए।

विदेश-स्थित हिन्दी अध्ययन केन्द्रों को और मजबूत करने के लिए एक सुविचारित योजना तैयार की जानी चाहिए तथा जहां शिक्षकों की कमी हो वहां योग्य शिक्षकों की व्यवस्था की जानी चाहिए। इन केन्द्रों में पाठ्य-पुस्तकें और अन्य प्रकार का साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराने के लिए और अच्छी व्यवस्था की जानी चाहिए।

भारत में हिन्दी को राज-काज, शिक्षा और दैनिक व्यवहार के क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रयोग में लाया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा किए बिना विदेश में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन और प्रचार-प्रसार के लिए उचित वातावरण नहीं बनता।

विश्व हिन्दी सम्मेलन की मूल भावना को कायम रखते हुए विदेशों की हिन्दी संस्थाओं तथा हिन्दी अध्ययन केन्द्रों से सम्पर्क बनाए रखने के लिए तथा विभिन्न देशों से सांस्कृतिक सम्बन्धों को दृढ़ बनाने की दृष्टि से एक स्थायी *संस्था का निर्माण किया जाना चाहिए।*

पांच दिनों के प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी के प्रेमी और समर्थक केवल भारत में ही नहीं, भारत के बाहर भी हैं और उनके मन में हिन्दी के प्रति अपार श्रद्धा और मान के भाव हैं। वे सब चाहते हैं कि हिन्दी का चतुर्दिक विकास हो।

प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन से जो प्रेरणा हुई उसका यह परिणाम हुआ कि उसके दूसरे वर्ष ही, 1976 में, मारिशस में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में भी बहुत बड़ी तादाद में विश्व के अनेक राष्ट्रों से हिन्दी के विद्वान पधारे थे। हिन्दी का यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भारत से बाहर आयोजित पहला सम्मेलन था। मारिशस सम्मेलन में हिन्दी के विश्वव्यापी स्वरूप और उसकी समस्याओं पर विचार-विमर्श हुआ और उसके अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता और आवश्यकता पर भी बल दिया गया। यह आशा की गई कि विश्व-भाषा के रूप में हिन्दी की जो सम्भावनाएं हैं उनको कार्यान्वित करने की दिशा में भारत सरकार और हिन्दी-प्रेमियों की ओर से प्रयत्न होंगे।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ-सूची

आधुनिक हिन्दी साहित्य	डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
आर्यसमाज का इतिहास	डॉ० इन्द्र विद्यावाचस्पति
खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास	ब्रजरत्नदास
खड़ी बोली का आन्दोलन	डॉ० शितिकण्ठ मिश्र
दक्खिनी हिन्दी	डॉ० बाबूराम सक्सेना
दक्षिण भारत के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास	पं० के० केशवन नायर
पुरानी हिन्दी	पं० चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'
ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली	डॉ० कपिलदेव सिंह
भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा	डॉ० ज्ञानवती दरबार
भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी	डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन और संविधान	सत्यकेतु विद्यालंकार
भारत की भाषाएं और भाषा सम्बन्धी समस्याएं	डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास	इन्द्र विद्यावाचस्पति
राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएं और समाधान	डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा
राष्ट्रभाषा की समस्या	डॉ० रामविलास शर्मा
राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गांधीजी	डॉ० रामधारीसिंह दिनकर
स्वतन्त्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास	रामगोपाल
भारत की राष्ट्रभाषा और लिपि	महापण्डित राहुल सांकृत्यायन
भारत की राष्ट्रीय संस्कृति	डॉ० आबिद हुसैन
हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास	डॉ० शिवराज वर्मा
भारतीय राष्ट्रभाषा : सीमाएं तथा समस्याएं	डॉ० सत्यव्रत
भाषा-विज्ञान	भोलानाथ तिवारी
मुसलमानों की हिन्दी सेवा	कमलधारीसिंह कमलेश
राष्ट्रभाषा का सवाल	जवाहरलाल नेहरू
राष्ट्रभाषा हिन्दी	क्षेमचन्द्र 'सुमन' (सम्पादक)
राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त